‘HINDI DALIT KAVITA KA ALOCHNA PAKSH’

A Thesis submitted in Partial Fulfilment of the Requirement
For the Degree of Doctor of Philosophy in Hindi

2021

Researcher

SANDEEP KUMAR

15HHPH13

Supervisor

PROF. SACHIDANANDA CHATURVEDI

Department of Hindi, School of Humanities

University of Hyderabad

Hyderabad - 500046

Telangana

India

'हिंदी दलित कविता का आलोचना पक्ष'

हैदराबाद विश्वविद्यालय की पीएच.डी. (हिंदी) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध

2021

शोधार्थी

सन्दीप कुमार

15HHPH13

शोध-निर्देशक

प्रो. सच्चिदानन्द चतुर्वेदी

हिंदी विभाग, मानविकी संकाय

हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद- 500046

तेलंगाना

भारत

DECLARATION

I **SANDEEP KUMAR** (Registration no. **15HHPH13**) hereby declare that the thesis entitled **'HINDI DALIT KAVITA KA ALOCHNA PAKSH' (हिंदी दलित कविता का आलोचना पक्ष)** submitted by me under the guidance and supervision of Professor **SACHIDANANDA CHATURVEDI** is a bonafide plagiarism free research work. I also declare that it has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or institution for the award of any degree or diploma. I hereby agree that my thesis can be deposited in shodhganga / Inflibnet.

Signature of Supervisor

(Prof. SACHIDANANADA CHATURVEDI)

Signature of Student

SANDEEP KUMAR

Regd. No. 15HHPH13

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **'HINDI DALIT KAVITA KA ALOCHNA PAKSH' (हिंदी दलित कविता का आलोचना पक्ष)** submitted by **SANDEEP KUMAR** bearing Regd. No. **15HHPH13** in partial fulfilment of the requirements for the award of **DOCTOR OF PHILOSOPHY** in **HINDI** is a bonafide work carried out by him under my supervision and guidance.

As for as I know, This thesis is free from plagiarism and has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or institution for award of any degree or diploma.

Further, the student has the following publication(s) before submission of the thesis for adjudication and has produced evidence for the same in the form of acceptance letter or the reprint in the relevant area of his research:

A. Published research paper in the following publications :

1. 'HINDI DALIT KAVITA KE ABHYUDY KI PRISHTHBHOOMI'. (SAHITY-SETU, ISSN NO.2348-6163) OCT-DEC 2018
2. 'HINDI DALIT KAVITA KA SWAROOP'. (Apni matee , ISSN 2322-0724), February 2018

B. Research Paper presented in the following conferences :

1. HINDI DALIT KAVITA KE MAAN PRATIMAN (NATIONAL), MAULANA AZAD NATIONAL URDU UNIVERSITY HYDERABAD, 22-23 FEBRUARY 2018.
2. HASIE KA SAMAJ AUR HINDI DALIT KAVITA (NATIONAL), LATOOR JILA PRISAD LATOOR TATHA SWAMEE RAMANAD TEERTH MARTHVADA, NADED EWM Dr. SOORYNARAYAN RANSUBHE AMRIT ABHINANDAN SAMITI LATOOR KE SANYUKT TATAVADHAN MEIN AYOJIT- 12 NOVEMBER 2017.

Further the student has passed the following courses towards fulfilment of coursework requirement for Ph.D.:-

Course Code		Name	Credit	Result
1.	801	Critical Approaches to Research	4	Pass
2.	802	Research Paper (project work)	4	Pass
3.	826	Ideological Background of Hindi Literature	4	Pass
4.	827	Practical Review of the Texts	4	Pass

The student has also passed M. Phil degree of this university. He studied the following courses in this programme.

Course Code		Name	Grade	Credit	Result
1.	701	Research Methodology	B	4	Pass
2.	721	Modern thought	B	4	Pass
3.	722	Sociology of literature	B	4	Pass
4.	726	Sahitya media aur sanskrauti	B+	4	Pass
5.	750	Dissertation	B	16	Pass

Therefore, the student has been exempted from repeating Research Methodology course (as recommended by the Research Advisory Committee) in his Ph.D. programme.

Supervisor **Head of Department** **Dean of the School**

अनुक्रमणिका

हिंदी दलित कविता का आलोचना पक्ष

भूमिका **पृष्ठ संख्या-01-08**

प्रथम अध्याय- हिंदी दलित कविता के अभ्युदय की पृष्ठभूमि, परिभाषा और स्वरूप **पृष्ठ संख्या-09-77**

प्रस्तावना

1. हिंदी दलित कविता के अभ्युदय की पृष्ठभूमि

1.1. सामाजिक-पृष्ठभूमि

1.1.1. वर्णीय-पृष्ठभूमि

1.1.2. जातीय-पृष्ठभूमि

1.1.3. वर्गीय-पृष्ठभूमि

1.2. साहित्यिक-पृष्ठभूमि (19 वीं सदी पूर्व)

1.2.1. आदिकालीन दलित-कविता

1.2.2. भक्तिकालीन दलित-कविता

1.2.3. रीतिकालीन दलित-कविता

1.2.4. आधुनिक कालीन दलित-कविता

1.2.5. भारतेंदु युगीन दलित-कविता

1.3 साहित्यिक पृष्ठभूमि (19 वीं सदी के बाद)

1.3.1. द्विवेदी युगीन दलित-कविता

1.3.2. छायावाद युगीन दलित-कविता

1.3.3. प्रगतिवाद युगीन दलित-कविता

1.3.4 प्रयोगवाद / साठोत्तरी युग की दलित कविता

1.3.5. भारतीय-साहित्य

1.3.6. मराठी-साहित्य

1.3.7. समकालीन दलित कविता

1.4 हिंदी दलित कविता की परिभाषा और स्वरूप

1.4.1. 'दलित' शब्द की परिभाषा

1.4 2. दलित कविता की परिभाषा

1.4.3. हिंदी दलित कविता का स्वरूप

निष्कर्ष

द्वितीय अध्याय- भारतीय-आलोचना और हिंदी की दलित कविता-आलोचना

पृष्ठ संख्या 78-117

प्रस्तावना

2.1. आलोचना की परिभाषा और स्वरूप

2.1.1 'आलोचना' शब्द की परिभाषा

2.1.2 आलोचना: भारतीय आलोचकों की दृष्टि में

2.1.3 आलोचना: पाश्चात्य आलोचकों की दृष्टि में

2.1.4. हिंदी साहित्य कोश

2.1.5.हिंदी आलोचना की परिभाषिक शब्दावली की दृष्टि में आलोचना

2.1.6 हिंदी आलोचना का स्वरूप

2.2 भारतीय आलोचना के विकास चरण और हिंदी दलित कविता आलोचना

2.2.1 भारतीय आलोचना के विकास-चरण

2.2.2. दलित-आलोचना का स्वरूप

2.2.3. दलित-आलोचना के मानदंड

2.2.4. दलित-कविता आलोचना का विकास

2.3 भारतीय आलोचना के प्रतिमान और हिंदी दलित कविता आलोचना

2.3.1. भारतीय काव्यशास्त्र और हिंदी कविता के प्रतिमान

2.3.2. हिंदी दलित कविता के प्रतिमान

2.3.2.1. ‘दलित’ कविता के बिम्ब

2.3.2.2. ‘दलित’ कविता के प्रतीक

2.3.2.3. ‘दलित’ कविता के मिथक

2.3.2.4. दलित कविता के रस और छंद

निष्कर्ष

तृतीय अध्याय- हिंदी दलित कविता आलोचना की वैचारिक पृष्ठभूमि

पृष्ठ संख्या-118-141

प्रस्तावना

3.1.1 संस्कृत कविता आलोचना की वैचारिकी

3.1.2 हिंदी कविता आलोचना की वैचारिकी

3.1.3 छायावादी-कविता आलोचना की वैचारिकी

3.1.4 प्रगतिवादी-कविता आलोचना की वैचारिकी

3.1.5 प्रयोगवादी कविता आलोचना की वैचारिकी

3.2 हिंदी दलित कविता आलोचना की वैचारिकी

3.2.1 महात्मा गौतम बुद्ध

3.2.2. मक्खलि गोसाल

3.2.3. चार्वाक/ लोकायत

3.2.4. सिद्ध-नाथ वैचारिकी

3.2.5 संत साहित्य की वैचारिकी

3.2.6 मार्क्सवाद की वैचारिकी

3.2.7 अम्बेडकरवाद की वैचारिकी

निष्कर्ष

चतुर्थ अध्याय- हिंदी दलित कविता का आलोचना पक्ष

पृष्ठ संख्या-142-190

प्रस्तावना

हिंदी दलित कविता के प्रमुख आलोचक: मत-अभिमत

4.1 माता प्रसाद

4.2 ओमप्रकाश वाल्मीकि

4.3 कँवल भारती

4.4 डॉ. एन. सिंह

4.5 डॉ. तेज सिंह

4.6 डॉ. धर्मवीर

4.7 श्यौराज सिंह 'बेचैन'

4.8 मोहनदास नैमिशराय

4.9 डॉ.जयप्रकाश कर्दम

4.10 विमल थोरात

4.11 रजनी तिलक

4.12 अनिता भारती

निष्कर्ष

पंचम अध्याय- हिंदी दलित कविता आलोचना: दशा और दिशा

पृष्ठ -संख्या-191-240

प्रस्तावना

5.1 हिंदी दलित कविता आलोचना: सामाजिक दृष्टि

5.1.1 परम्परागत असमानता एवं दलित कविता का प्रतिरोध

5.1.2 दलितों के अन्दर जातिवाद का अंतर्द्वंद्व

5.2 हिंदी दलित कविता आलोचना की आर्थिक-दृष्टि

5.2.1 दलित व्यवसाय पर वर्ण-व्यवस्था का प्रभाव

5.2.2. श्रमजीवी समाज की उपेक्षा: दलित कविता

5.3 हिंदी दलित कविता आलोचना की धार्मिक-दृष्टि

5.3.1 भारतीय सामाजिक धर्म और दलित कविता

5.3.1.1. आदि हिन्दू आन्दोलन

5.3.1.2 भारतीय बौद्ध महासभा

5.3.2 धार्मिक ग्रन्थों का प्रतिरोध: दलित कविता

5.3.3 दलित आलोचकों के बीच धार्मिक अंतर्द्वंद्व

5.4 हिंदी दलित कविता आलोचना: राजनैतिक दृष्टि

5.4.1 साहित्य और राजनीति का गहरा सम्बन्ध

5.4.2 दलित साहित्य राजनीति और डॉ. अम्बेडकर

5.4.3. हिंदी दलित कविता आलोचना की राजनीतिक: पृष्ठभूमि

5.4.3.1 सत्य शोधक समाज

5.4.3.2 ब्लैक पैंथर

5.4.3.3 दलित पैंथर

5.4.3.4 बामसेफ

5.4.3.5 भीम आर्मी

निष्कर्ष

उपसंहार **पृष्ठ संख्या-241-254**

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची **पृष्ठ संख्या-255-267**

परिशिष्ट-

साक्षात्कार **पृष्ठ संख्या-268-274**

शोध-आलेख **पृष्ठ संख्या-275-291**

शोध-प्रपत्र **पृष्ठ संख्या-292-293**

भूमिका

दलित साहित्य केवल साहित्य नहीं बल्कि यह एक 'सामाजिक आन्दोलन' है जिसका सम्बन्ध दलित समाज के जीवन संघर्षों से जुड़ा है। इस साहित्य में परम्परागत सामाजिक पाखण्ड एवं बाह्य आडम्बरों के लिए कोई जगह नहीं है। परन्तु इसमें हजारों वर्षों से गुलामी की जिन्दगी जी रहे लोगों की चेतना को जाग्रत कर उन्हें आत्मसम्मान से जीने का मार्ग अवश्य है। दलित साहित्यकार समाज में मानवीय स्वतंत्रता, समानता और बंधुता को सर्वोपरि मानते हैं। इसलिए इस समुदाय से निकले रचनाकार भारतीय समाज में व्याप्त जातिवाद, ब्राह्मणवाद, पूँजीवाद आदि सामाजिक व्यवस्था का विरोध करते हुए इन बन्धनों से मुक्ति के लिए संघर्ष करते हैं। दलित साहित्य, वह साहित्य है जिसमें दलित जीवन के भोगे हुए यथार्थ, दुःख और पीड़ा का वर्णन समाज-सापेक्ष होता है।

दलित साहित्य के सभी विधाओं में कविता का महत्त्वपूर्ण स्थान है। दलित कविता मात्र कविता नही, बल्कि दलित जीवन के अभिव्यक्ति का माध्यम है। इस कविता में प्रेम, सौन्दर्य और विलासिता के चित्रण के बजाय समाज में शोषित, पीड़ित दलित समाज के दर्द का वर्णन रचनाकारों द्वारा किया जाता है। दलित समाज अब भी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक रूप से पिछड़ा है और इसमें जातिवाद, ब्राह्मणवाद, अन्धविश्वास जड़ें जमाएँ हुए हैं। इसलिए इसे समाप्त कर अम्बेडकरवादी समाज की स्थापना करना ही, दलित कवियों का मुख्य उद्देश्य है।

19वीं सदी के अंतिम दशक में हिंदी दलित साहित्य के माध्यम से साहित्यिक जगत में इस नए विमर्श की शुरूआत हुई है। इस विमर्श ने समाज में सदियों से उपेक्षित, शोषित-पीड़ित जातियों के जीवन में बदलाव की पटकथा लिखी। जिसका चित्रण दलित

साहित्य में विविध-विधाओं के माध्यम से किया जाता है। इस साहित्यिक बहस के क्षेत्र में हिंदी दलित कविता और हिंदी दलित कविता आलोचना का अद्बितीय स्थान है।

हिंदी दलित कविता जिसने परम्परागत कविता से भिन्न विषय-वस्तुओं का चित्रण कर 1990 ई० के आस-पास अपनी स्वतंत्र पहचान स्थापित की, इसकी जड़ें, काफी प्राचीन हैं। आदिकाल में सिद्धों के यहाँ 30 शूद्रों का होना, भक्तिकाल में सन्तों के द्वारा दलित जीवन और समस्याओं पर लिखा जाना इत्यादि को वर्तमान दलित कविता का प्रारम्भिक चरण माना जा सकता है, जबकि यह भी स्पष्ट है उस समय तक 'दलित' शब्द का कोई नामोनिशान नहीं था। परन्तु इनकी पहचान निम्न रूप में होती रही है जैसे शूद्र, अस्पृश्य, अछूत, हरिजन इत्यादि। परन्तु आधुनिक काल में हीराडोम और स्वामी अछूतानन्द ने उसे पुनर्जीवित किया, जिसे हम दलित कविता के विकास का द्वितीय चरण मान सकते हैं।

इस प्रकार दलित कविता निरंतर विभिन्न रचनाकारों द्वारा आधुनिक-काल, द्विवेदी-युग, छायावादी युग, प्रगतिवाद युग, प्रयोगवाद युग इत्यादि कालों में विकसित होती गई। परन्तु इसमें गैर-दलित कवियों द्वारा लिखित कविता दलित समस्या पर तो लिखी गईं पर वह न तो ब्राह्मणवाद के चंगुल से बची और न दलित चेतना को जगा सकी, यहाँ तक की महाकवि निराला और नागार्जुन के द्वारा लिखी गई दलित समस्या आधारित कविता भी ब्राह्मणवाद से मुक्त नहीं है। इसलिए समकालीन दलित कवियों की कविताओं में जहाँ एक तरफ परम्परागत विषयों से भिन्न स्वरूपों का चित्रण है, वहीं दूसरी तरफ गैर-दलितों द्वारा लिखित दलित कविता से भी भिन्न। दलित कविता का मकसद आनंद और मनोरंजन से ऊपर, मानव चेतना को जाग्रत करते हुए लोकतांत्रिक समाज की स्थापना करना है।

दलित कविता आलोचना इन्हीं लोकतांत्रिक मूल्यों को स्थापित करने के लिए परम्परागत सिद्धांतो और मानदंडों से भिन्न आलोचकीय दृष्टिकोण को प्रस्तुत करती है। जिसका केन्द्रीय बिंदु महात्मा बुद्ध, महात्मा फुले, डॉ.अम्बेडकर के जीवन दर्शन को माना जाता है। इन महापुरूषों के विचारों के आधार पर दलित साहित्य में नए-नए मानदंड भी स्थापित हुए हैं।

दलित कविता-आलोचना ने परम्परागत आलोचना से भिन्न प्रतीक, बिम्ब और मिथक का प्रयोग कर सदियों से उपेक्षित दलित वर्ग के उपेक्षित पात्रों को नायक एवं हिंदी साहित्य के परम्परागत पात्रों को प्रतिनायक के रूप में चित्रित किया है। इन प्रतीकों और मिथकों को नया सन्दर्भ, अर्थ और युगीन आकांक्षा के रूप में प्रयुक्त किया गया है।

इस आलोचना को विभिन्न विचारधाराओं का समर्थन मिला है जिसमें बुद्ध, चार्वाक, सिद्ध-नाथ, संत साहित्य फुले और अम्बेडकर, दलित पैंथर, ब्लैक पैंथर इत्यादि विचारधाराओं से दलित साहित्य प्रभावित है। दलित कविता के इस विकासीय-चरण में 21वीं सदी के दलित साहित्य ने एक मुकम्मल मानदंड स्थापित किया, जिसमें अम्बेडकरवाद से भिन्न कोई भी रचना और सिद्धांत मान्य नहीं। अंतत: यही कहा जा सकता है कि यह अभी प्रारंम्भिक अवस्था में है परन्तु इसका भविष्य उज्जवल है। प्रस्तुत शोध-विषय को अध्ययन के नजरिए से पाँच अध्याय में विभाजित किया गया है।

प्रथम अध्याय-: हिंदी दलित कविता के अभ्युदय की पृष्ठभूमि, परिभाषा और स्वरूप के अंतर्गत दलित कविता की उत्पत्ति के मूल कारणों और इसके उद्देश्यों की पड़ताल करते हुए, आदिकाल से लेकर आज तक इस क्षेत्र में हुए विभिन्न परिवर्तनों को रेखांकित किया गया है, साथ ही इस कविता के विकास चरण का ऐतिहासिक और वर्तमान मराठी दलित कविता, भारतीय साहित्य और दलित कविता, समकालीन दलित

कविता, हिंदी दलित कविता की परिभाषा और स्वरूप, दलित शब्द की परिभाषा, दलित कविता की परिभाषा, हिंदी दलित कविता के स्वरूप आदि का विश्लेषण किया गया है ।

द्वितीय अध्याय-: भारतीय आलोचना और हिंदी दलित कविता आलोचना के अंतर्गत आलोचना की परिभाषा और स्वरूप, भारतीय आलोचकों की दृष्टि में, पाश्चात्य आलोचकों की दृष्टि में हिंदी आलोचना का स्वरूप, भारतीय आलोचना के विकास चरण और हिंदी दलित कविता आलोचना, भारतीय आलोचना के विकास चरण, दलित आलोचना का स्वरूप, दलित आलोचना के मानदंड, दलित कविता आलोचना के विकास इत्यादि के माध्यम से दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र और प्रतिमानों, बिम्बों, रस, छंद, सिद्धांतो और स्वरूपों का अध्ययन और विश्लेषण किया गया है ।

तृतीय अध्याय-: हिंदी दलित कविता आलोचना की वैचारिक पृष्ठभूमि के अंतर्गत, संस्कृत कविता आलोचना की वैचारिकी, हिंदी कविता आलोचना की वैचारिकी, छायावादी-कविता आलोचना की वैचारिकी, प्रगतिवादी-कविता आलोचना की वैचारिकी, प्रयोगवादी कविता आलोचना की वैचारिकी एवं हिंदी दलित कविता आलोचना की वैचारिकी,महात्मा गौतम बुद्ध, मक्खलि गोसाल, चार्वाक/लोकायत, सिद्ध-नाथ वैचारिकी, संत साहित्य की वैचारिकी मार्क्सवाद की वैचारिकी, अम्बेडकरवाद की वैचारिकी इत्यादि विभिन्न विचार धाराओं के प्रभाव एवं दलित साहित्य के आधार स्तम्भ बन चुके वैचारिकी के मूल सिद्धांतो, इत्यादि ज्वलंत विषयों का अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया है।

चतुर्थ अध्याय-: हिंदी दलित कविता का आलोचना-पक्ष के अंतर्गत विभिन्न दलित आलोचकों माता प्रसाद, ओमप्रकाश वाल्मीकि, कँवल भारती, डॉ. एन. सिंह, डॉ.

तेज सिंह, डॉ. धर्मवीर, श्यौराज सिंह बेचैन, मोहनदास नैमिशराय, जयप्रकाश कर्दम, विमल थोरात, रजनी तिलक, अनिता भारती के दृष्टि में हिंदी दलित कविता आलोचना के विभिन्न दृष्टियों एवं उनके मत-अभिमत का अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया है।

पंचम अध्याय-: हिंदी दलित कविता आलोचना की दशा और दिशा के अंतर्गत हिंदी दलित कविता आलोचना की सामाजिक दृष्टि, परम्परागत असमानता एवं दलित कविता का प्रतिरोध, दलितों के अन्दर जातिवाद का अंतर्द्वंद्व, दलितों के अन्दर जातिवाद का अंतर्द्वंद्व हिंदी दलित कविता आलोचना की आर्थिक-दृष्टि, दलित व्यवसाय पर वर्ण-व्यवस्था का प्रभाव, दलित श्रमजीवी समाज की उपेक्षा, हिंदी दलित कविता आलोचना की धार्मिक-दृष्टि, भारतीय सामाजिक धर्म और दलित कविता, आदि हिन्दू आन्दोलन, भारतीय बौद्ध महासभा, धार्मिक ग्रन्थों का प्रतिरोध-दलित कविता, दलित आलोचकों के बीच धार्मिक अंतर्द्वंद्व, हिंदी दलित कविता आलोचना-राजनैतिक दृष्टि, हिंदी दलित कविता राजनीतिक पृष्ठभूमि, सत्य शोधक समाज, ब्लैक पैंथर, दलित पैंथर, बामसेफ, भीम आर्मी, साहित्य और राजनीति का गहरा सम्बन्ध, दलित साहित्य राजनीति और डॉ. अम्बेडकर, इत्यादि का अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया है।

अनुसन्धान की पद्धतियाँ

प्रस्तुत शोध विषय 'हिंदी दलित कविता का आलोचना पक्ष' में विभिन्न अनुसंधान पद्धतियों का सहारा लिया गया है। चूँकि दलित समस्या समाज की सामाजिक और ऐतिहासिक समस्या है इसलिए 'समाजशास्त्रीय' और ऐतिहासिक उपागम के साथ-साथ आलोचनात्मक उपागम और ऐतिहासिक, राजनैतिक, भौगोलिक आदि उपागमों का सहारा लेते हुए अध्ययन किया गया है। इस शोध-प्रबंध में ऊपर लिखित उपागमों के माध्यम से व्याख्यात्मक, तुलनात्मक, विवेचनात्मक, विश्लेष्णात्मक, संश्लेषणात्मक, पद्धतियों का इस्तेमाल किया गया है।

शोध-प्रबंध का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध-प्रबंध का उद्देश्य दलित कविता और आलोचना पक्ष को दृष्टि में रखकर परम्परागत साहित्य और समकालीन दलित साहित्य के समस्याओं को रेखांकित करते हुए उन्हें नए सन्दर्भों से जोड़कर देखने का प्रयास किया गया है। दलित कविता के माध्यम से समाज में व्याप्त उसके उत्पत्ति और आलोचना के माध्यम से समय-समय पर हुए साहित्यिक मूल्यों और सिद्धांतों के परिवर्तन का आकलन किया गया है। दलित कविता आलोचना परम्परागत आलोचना से कैसे भिन्न है इस तथ्य को उजागर करने का प्रयास किया गया है। इसलिए इस शोध-प्रबंध द्वारा आलोचकीय मानदंड को देखने का प्रयास किया गया है।

अनुसंधान कार्य की उपलब्धियाँ

शोधकर्ता के विचार से प्रस्तुत अनुसन्धान कार्य हिंदी दलित कविता का आलोचना पक्ष की निम्नलिखित उपलब्धियाँ हैं-

- दलित कविता समकालीन समय में बहु-चर्चित विधा है। इसलिए इस शोध-प्रबंध के माध्यम से ऐतिहासिक एवं समकालीन दलित समस्याओं से युगानुरूप परिचित हुआ जा सकता है।
- इस कविता ने साहित्यिक जगत में नए पाठ एवं नई आलोचकीय दृष्टि का निर्माण किया है, जिसे समझा जा सकता है।
- सामाजिक शोषण के खिलाफ सामाजिक न्याय और आत्म-सम्मान की जनचेतना के विस्तार को समझा जा सकता है।
- परम्परागत सौन्दर्यशास्त्र के बरक्स दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र की उचित व्याख्या एवं विश्लेषण का अध्ययन।

- हिंदी आलोचना और दलित आलोचना की भिन्नता के उचित विश्लेषण के मायने को स्पष्ट करने का प्रयास एवं दलित जीवन और दलित लेखन की आवश्यता की गंभीर पड़ताल।
- ब्राह्मणवाद के द्वारा रचित सदियों पुराने काल्पनीय दुनिया से भिन्न दलित समाज के यथार्थ का परिचय।
- अस्मिता एवं आत्मसम्मान के लिए संघर्षरत समाज के जीवन-संघर्ष का यथार्थ चित्रण।
- समयगत बदलाव के अनुरूप दलित जीवन में आए परिवर्तनों को कविताओं के माध्यम से चित्रण करते हुए विश्लेषण किया गया है।

कृतज्ञता-ज्ञापन

प्रस्तुत शोध-प्रबंध के विषय चुनाव को मेरे शोध-निर्देशक श्रद्धेय गुरुवर प्रो.सच्चिदानन्द चतुर्वेदी जी ने सहर्ष सहमति दी एवं इस शोधकार्य को सुनिर्दिष्ट रूप देने में समय-समय पर मार्गदर्शन किया। यह मेरा सौभाग्य है कि श्रद्धेय गुरुवर ने अपने व्यस्त क्षणों में मेरी छोटी-छोटी शंकाओं, प्रश्नों एवं उलझनों को सुलझाकर इस दुरूह-कार्य को सहज एवं सरल बनाया। मेरी त्रुटियों का यथासंभव समाधान एवं उनका स्नेहपूर्ण प्रोत्साहन मेरे लिए सदैव संबल बना रहा। जिसके लिए मैं उनका हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ और आशा करता हूँ कि भविष्य में भी उनका मार्गदर्शन एवं सहयोग मिलता रहेगा। हिंदी विभाग के विभागाध्यक्ष एवं मेरे शोध-समिति सलाहकार के सदस्य प्रो. गजेन्द्र कुमार पाठक जी एवं मेरे दूसरे शोध-समिति सलाहकार के सदस्य प्रो. आर. एस. सर्राजु जी ने इस शोध कार्य में समय-समय पर मार्गदर्शन एवं सलाह दी, इसलिए मैं दोनों महानुभावों का विशेष रूप से आभार व्यक्त करता हूँ ।

हिंदी विभाग के प्रो. वी. कृष्ण जी एवं डॉ. भीम सिंह जी का मैं विशेष रूप से आभारी हूँ जिन्होंने दलित साहित्य और दलित लेखन से परिचित कराकर इस विषय के चयन का सुझाव दिया एवं उन्होंने विभिन्न परिस्थितियों में मेरा मार्गदर्शन कर उत्साह वर्धन भी किया। हिंदी विभाग के प्रो. विष्णु सरवदे जी, प्रो. रविरंजन जी, प्रो. एम. श्याम राव जी ने इस शोध-प्रबंध के लिए महत्त्वपूर्ण सलाह दी। अत: मैं इनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

मैं अपने परम पूजनीय पिता जी और स्वर्गीय माता जी के चरणों में नतमस्तक हूँ, जिनके स्नेह और आशीर्वाद के बल पर यहाँ तक पहुँच सका हूँ। मैं अपने भाई-बहनों में ज्ञानपति, सुनीता, अनीता, परवीता, प्रियंका एवं दीपक कुमार दिवाकर के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जो मेरे सुख दुःख के साथी सदैव रहे हैं।

मेरे इस शोध-कार्य में सहयोगी रहे मित्रों में आशुतोष कुमार, अनिल कुमार, विशाल कुमार, इन्द्रदेव शर्मा, जितेन्द्र कुमार, प्रवीन्द्र शेखर शकुंत, विकास बोरा, चिन्मयी दास, मधुरा केरकेट्टा ने समय-समय पर सहयोग दिया इसलिए मैं इनका हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ। साथ ही साथ मैं उन सभी मित्रों का भी आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने मुझे प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सहयोग दिया है।

....धन्यवाद

संदीप कुमार

15HHPH13

प्रथम अध्याय

हिंदी दलित कविता के अभ्युदय की पृष्ठभूमि, परिभाषा और स्वरूप

प्रस्तावना-

समाज का रूप जिस गति से बदलता है, साहित्य का स्वरूप भी उतनी ही गति से परिवर्तित होता है । ये दोनों समय और परिस्थिति के साथ-साथ हमेशा बदलते रहते हैं । इस समय हम इक्कीसवीं सदी के उस दौर में रह रहे हैं, जिसमें ज्ञान-विज्ञान, कला, संस्कृति, परम्परा, इतिहास सब बदल चुके हैं । परन्तु हाशिये पर पड़े भूखे, अधनंगें, शोषित, पीड़ित, समाज को आज भी अधिकार विहीन त्रासद जीवन जीना पड़ रहा है ।

दलित साहित्य के अंतर्गत, इन्हीं शोषित-पीड़ितों की आवाज को साहित्य की विविध-विधाओं के माध्यम से उठाया जाता है । इस साहित्य की सभी विधाओं में दलित कविता एवं दलित आलोचना का स्थान सर्वोपरि है, जिसे समझने के लिए दलित कविता की पृष्ठभूमि को समझना आवश्यक है । इसलिए इस अध्याय में दलित कविता के अभ्युदय और समयानुसार हुए उसके स्वरूप में, विभिन्न परिवर्तनों इत्यादि का अध्ययन और विश्लेषण किया गया है ।

1 हिंदी दलित कविता के अभ्युदय की पृष्ठभूमि

1.1 सामाजिक-पृष्ठभूमि

एक लोकतांत्रिक देश होने के बावजूद, यह देश जातिवाद, पाखण्डवाद और अन्धविश्वास में जकड़ा हुआ है । जिसे समझने के लिए इसके ऐतिहासिक तह में जाकर सामाजिक-पृष्ठभूमि की पड़ताल करना आवश्यक है, इसलिए इसे हम निम्नलिखित रूप में देखनें का प्रयास करेगें ।

1.1.1 **वर्णीय-पृष्ठभूमि**

19 वीं सदी पूर्व की स्थिति दलित साहित्य के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है । वह इसलिए कि उस समय तक 'दलित' नाम की कोई बहस नहीं थी, लेकिन जिन्हें आज दलित कहते हैं उन्हें भिन्न-भिन्न नामों से जाना जाता था । इस बात का उल्लेख दलित चिन्तक माता प्रसाद ने 'हिंदी काव्य में दलित काव्यधारा' नामक पुस्तक में किया है कि "वैदिक-काल एवं स्मृति-काल की वर्ण-व्यवस्था और जाति-व्यवस्था से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध है । वर्ण-व्यवस्था से शूद्र, जातियों, उपजातियों का विकास होता रहा, फिर इनको 'चाण्डाल', 'अस्पृश्य', 'अछूत', 'हरिजन' आदि अनेक नामों से पुकारा जाता रहा है । इनके साथ समाज और राज्य सत्ता ने जो दु:खद व्यवहार किये वे दर्दनाक हैं ।"[1] माता प्रसाद का यह मत उस सामाजिक-परिस्थिति की याद दिलाता है, जिसमें दलितों को कमजोर, बेबस, बेजबान बनाये रखने की साजिश रची गई । भारतीय समाज को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए वर्ण-व्यवस्था की व्यवस्था की गई थी । इस वर्ण-व्यवस्था के विषय में इंतिजार नईम खाँ ने लिखा है कि "हिन्दू समाज की लोकोत्तर विशेषता, उसमें प्रचलित वर्ण-व्यवस्था तथा जाति-प्रथा है, जिन्हें संसार का आठवाँ आश्चर्य कहने में कोई अत्युक्ति नहीं है । हिन्दू समाज की कमर तोड़ने वाली यह वर्ण-व्यवस्था हिन्दू जाति के लिए दुर्भाग्यवश उसमें क्यों प्रचलित हो गई, इसका संक्षिप्त इतिहास पाठकों को देना परमावश्यक है ।"[2]

यह व्यवस्था जिसे नईम खाँ ने हिन्दू जाति की कमर तोड़ने वाला माना है, वास्तव में एक गंभीर, विचारणीय मुद्दा है । जिस वर्ण-व्यवस्था की शुरूआत कर्मों को संचालित करने के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के रूप में हुई । वह जातिवाद के रूप में फैल

---

[1] माता प्रसाद, हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा, पृष्ठ संख्या-1

[2] इंतिजार नईम, दलित समस्या जड़ में कौन? पृष्ठ संख्या-29

गया। इससे समाज की छवि कितनी दूषित हुई इसे बताने की या समझने की आवश्यकता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने भारतीय समाज का उल्लेख इस प्रकार किया है- "भारतीय समाज-व्यवस्था ने वर्ण-व्यवस्था का एक ऐसा जिरहबख्तर पहन रखा है, जिस पर लगातार हमले होते रहे हैं, फिर भी वह टूट नहीं पाई। बीसवीं सदी में सबसे बड़ा हमला डॉ. अम्बेडकर ने किया और बौद्ध धर्म को पुनर्जीवित किया। वर्ण-व्यवस्था के स्वरूप में बदलाव दिखाई पड़ा। इस व्यवस्था को तोड़ने के लिए जाति-व्यवस्था का टूटना जरूरी है, तभी समाज में समरसता उत्पन्न हो सकती है और साहित्य में उपजी विभ्रम स्थिति से मुक्त हो सकते हैं।"[3]

परम्परागत रूप से यह व्यवस्था सदियों से चली आ रही है। इतनी अव्यवहारिक और घातक होते हुए भी यह आज तक कैसे जीवित है? इन मुद्दों पर सोचना आवश्यक ही नहीं, बल्कि एकजुट होकर इसको ध्वस्त करना भी जरूरी है। परन्तु सत्ता के लोभी इसे किसी भी तरह जीवित बनाए रखना चाहते हैं। समानता और भाईचारे के लिए ग्रन्थ लिखने वाले बड़े-बड़े सन्तों के व्याख्यान और सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् और 'वसुधैव कुटुम्कम' की वकालत करने वाले भी इसमें असफल रहे हैं या कहें कि उनके अंदर भी वही चेतना विद्यमान है, जो सदियों से चली आ रही है।

दलित साहित्य के अंतर्गत वर्ण-व्यवस्था की काफी गंभीर बहस है, क्योंकि वहीं से भारतीय समाज में मानव जाति विभाजित होनी शुरू होती है। जिस व्यवस्था से समाज में संतुलन स्थापित किया जा सकता था, वह समाज के लिए नासूर बन गई है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के विभाजन ने किसी को श्रेष्ठ तो किसी को निम्न बना दिया है। इस विषय में 'मनुस्मृति' में जो लिखा है? उसे डॉ. अम्बेडकर ने इस प्रकार रेखांकित किया है—1.93."ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न होने से, ज्येष्ठ होने से और वेद के धारण करने

[3] ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या-59-60

से, धर्मानुसार ब्राह्मण ही सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी होता है। 1.94 स्वयंभू उस ब्राह्मण हव्य तथा कव्य को पहुचाने के लिए और सम्पूर्ण सृष्टि की रक्षा के लिए तपस्या कर सर्वप्रथम ब्राह्मण को ही अपने मुख से उत्पन्न किया। 1.95 ब्राह्मण के मुख दे देवता लोग हव्य तथा पितर लोग कव्य को खाते हैं। अत: ब्राह्मण से अधिक श्रेष्ठ कौन प्राणी होगा। 1.96 भूतो में प्राणधारी जीव श्रेष्ठ है, प्राणियों में बुद्धिजीवी श्रेष्ठ है, बुद्धिजीवियों में मनुष्य श्रेष्ठ है और मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ।"[4] इस व्यवस्था ने समाज में असमानता का जो बीज डाला उससे आज भी समाज मुक्त नहीं हो पाया है। बुद्ध, कबीर, रैदास एवं आधुनिक चिंतकों में फुले, अम्बेडकर के अलावा अन्य दलित आलोचकों ने इस विषय पर गंभीर चिंता व्यक्त की है।

सूरज बड़त्या ने इसका उल्लेख किया है कि- "बुद्ध के समय से ही भारत में संस्कृति की दो धाराएँ बहुत ही स्पष्ट रही हैं। एक धारा वह है जो वर्णाश्रम धर्म को अक्षुण्ण रखना चाहती है जिसका विश्वास वेदों, पुराणों, स्मृतियों तथा धर्मशास्त्रों में है और धर्म के स्मृति रूपों में श्रद्धा रखती है, मंदिर, मूर्ति, तीर्थ और व्रत में विश्वास करती है। इस धारा के आचार्य मनु, शंकर तथा उनके कवि कालिदास, जयदेव विद्यापति और तुलसीदास हैं। दूसरी धारा वह है जो बुद्ध के कमंडल से निकलकर, बौद्ध आचार्यों से होकर सरहपा, नाहपा आदि सिद्धों में पहुँची और उनके कवि कबीर, गुरु नानक, दादू हैं।[5]

इस व्यवस्था में पहली बार परिवर्तन महात्मा बुद्ध ने किया, उन्होंने वेद, पुराण, उपनिषद् और अन्य ब्राह्मण ग्रथों का खंडन कर समतावादी समाज की नींव तो डाली, परन्तु वर्णवादी व्यवस्था पूर्णत: मिट न सकी। इस वर्णवादी व्यवस्था को पोषित करने

[4] बाबा साहब सम्पूर्ण वाङमय, हिंदुत्व दर्शन, खंड-6, पृष्ठ संख्या- 148-149
[5] सूरज बड़त्या, सत्ता संस्कृति और दलित सौन्दर्य शास्त्र, पृष्ठ संख्या-71

वाली दूसरी धारा इसे सदियों मजबूत करती रही। मध्यकाल के सबसे महत्वपूर्ण कवि तुलसीदास की इन पक्तियों में इसे देखा जा सकता है-

"ढोल,गंवार, शूद्र, पशु, नारी।

ये सब के ताड़न के अधिकारी।

पूजिय विप्र सील गुन हीना।

शूद्र न गुनगन ग्यान प्रवीना।"[6]

डॉ. अम्बेडकर इस विषमता को दूर करने में सफल हुए पर समूल नष्ट करने में उन्हें भी सफलता न मिली। दलित साहित्यकारों का यही प्रयास है कि इस विषमतावादी समाज से इतर समतावादी समाज का निर्माण हो सके, इसलिए उनके लेखन में परिवर्तन के साथ-साथ आक्रोश भी होता है। मलखान सिंह की ये पंक्तियाँ स्पष्ट कहती हैं कि तुमने चतुर्वर्णीय व्यवस्था बनाकर जीवन को नर्क बना दिया है-

"सुनो भूदेव

तुम्हारा कद

उसी दिन घट गया था

जिस दिन तुमने

न्याय के नाम

जीवन को चौखटों में कस

[6] माता प्रसाद, काव्य में दलित काव्य धारा, पृष्ठ संख्या-56

कसाई बाड़ा बना दिया था।"[7]

वर्णवादी यही व्यवस्था समयानुसार 'जाति' में बदल गयी, जिससे सभी व्यवसाय वंशानुगत और जातिगत हो गए। यह सिलसिला कई पीढ़ियों से चला आ रहा है। जाति और वर्ण को लेकर समाज में कई तरह की भ्रांतियाँ उत्पन्न हो गई हैं। कई तो इन दोनों को एक ही मान लेते हैं। कँवल भारती ने 'दलित विमर्श की भूमिका' नामक पुस्तक में लिखा है- "वर्ण और जाति कानूनी अर्थ में एक-दूसरे के पर्यायवाची हैं। पद और व्यवसाय दो ऐसी अवधारणाएँ हैं, जो वर्ण और जाति दोनों में निहित हैं। फिर भी दोनों एक दूसरे से भिन्न हैं। वर्ण तो पद या व्यवसाय किसी भी दृष्टि में वंशानुगत नहीं हैं। पर जाति में पद और व्यवसाय दोनों ही वंशानुगत हैं और इसे पुत्र अपने पिता से ग्रहण करता है। इसलिए डॉ. अम्बेडकर कहते हैं कि ब्राह्मणवाद द्वारा वर्ण को जाति में बदलने का अर्थ है कि उसने पद और व्यवसाय को वंशानुगत बना दिया। यह काम उसने कई चरणों में किया।"[8] इसके विभिन्न चरणों के विषय में कँवल भारती ने लिखा है कि "पहले उसने यह किया कि उस व्यवस्था को समाप्त कर दिया, जिसमें एक स्वत्रंत सत्ता के द्वारा लोगों के वर्ण का निर्धारण किया जाता था। यह वर्ण व्यवस्था केवल चार वर्ष के लिए होती थी। इस अवधि को 'मन्वंतर' कहते थे। हर चार वर्ष के बाद यह निर्धारण होता था और हर चार वर्ष के बाद अधिकारियों का नया दल चुनाव के लिए नियुक्त होता था। इस प्रक्रिया में जो लोग पिछली बार शूद्र होने के योग्य बच जाते थे, वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य होने के लिए चुने जाते थे। बाद में इसकी दूसरी पद्धति शुरू हुई, जिसे गुरूकुल पद्धति कहा जाता था। गुरुकुल एक विद्यालय होता था, जिसमें बारह वर्ष तक शिक्षा दी जाती थी। शिक्षा की अवधि पूरी होने पर उपनयन संस्कार होता था। इसमें आचार्य प्रत्येक विधार्थी का

---

[7] कँवल भारती, दलित निर्वाचित कविताएं, पृष्ठ संख्या-50

[8] कँवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, पृष्ठ संख्या- 33

वर्ण निश्चित करता था। यह नई पद्धति पुरानी पद्धति से ज्यादा श्रेष्ठ होती थी, क्योंकि इसमें वर्ण निर्धारण से पूर्व प्रशिक्षण आवश्यक हो गया था। लेकिन इस पद्धति में एक परिवर्तन यह हुआ कि वर्ण की अवधि जो पुरानी पद्धति में अल्पकालिक थी, अब जीवन पर्यंत हो गई थी। फिर भी यह अभी वंशानुगत नहीं हुआ था।"[9]

इस प्रकार जो व्यवस्था प्रारम्भ में चार वर्ष के लिए होती थी, वह समयानुसार 'मन्वंतर' और गुरूकुल होते हुए 'जाति' में बदलकर भिन्न रूप में परिवर्तित हो गई। पहले एक पेशे से दूसरे पेशे में लोग जा सकते थे, परन्तु बाद में पेशे जाति और वंश तक सीमित हो गए। वर्ण का जाति के रूप में रूपांतरित होना घातक हुआ। इसे बढ़ावा देने में सबसे बड़ा हाथ 'मनु' का रहा है, जिन्होंने समाज में वैवाहिक नियम और भोज को कठोर नियमों में बाँध दिया। इस विषय में कँवल भारती का यह प्रसंग प्रासंगिक है-"मनु के इस कठोर विधान ने जाति-व्यवथा को कायम रखने में अहम् भूमिका निभाई। आगे चलकर यह विधान और भी कठोर हुआ। आज जातीय पंचायतें विवाह आदि के मामलों में जाति व्यवस्था का उल्लंघन करने वालों को बहिष्कार का दंड नहीं देती हैं, बल्कि मृत्युदंड देती हैं।"[10]

1.1.2 जातीय-पृष्ठभूमि

डॉ. अम्बेडकर ने लिखा कि "मेरी राय में इसमें कोई संदेह नहीं है कि जब तक आप अपनी सामाजिक व्यवस्था नहीं बदलेंगे, तब तक कोई प्रगति नहीं होगी। आप समाज को रक्षा या अपराध के लिए प्रेरित कर सकते है, लेकिन जाति-व्यवस्था की नींव पर आप कोई निर्माण नहीं कर सकते, आप राष्ट्र का निर्माण नहीं कर सकते, आप नैतिकता का निर्माण नहीं कर सकते। जाति-व्यवस्था की नींव पर आप कोई भी निर्माण

[9] कँवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, पृष्ठ संख्या- 33
[10] कँवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, पृष्ठ संख्या- 38

करेंगे, वह चटक जायेगा और कभी पूरा नहीं होगा ।"[11] समाज के विकास के लिए समानता होना आवश्यक है । बिना समानता के सम्पूर्ण विकास होना असम्भव है । प्रतिरोध और अपराध से न कभी कोई सार्थक मूल्य स्थापित हुआ है न कभी होने की उम्मीद की जा सकती है । इसलिए राष्ट्र निर्माण के लिए परम्परागत रूढ़िवादी मानसिकता को बदलना आवश्यक है । आजकल साहित्य की भरमार है परन्तु उसमें वह नहीं है, जो दलित साहित्य में है । सर्वेश कुमार मौर्य ने लिखा कि "आज दलित साहित्य लेखन प्राचीन काल से चले आ रहे उसी दलित विरोधी साहित्य के प्रतिरोध का परिणाम है । वेद-पुराण, महाभारत, गीता, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, याज्ञवल्य स्मृति, मनुस्मृति, रामायण, रामचरितमानस, कुमारिलभट्ट का श्लोकवर्तिका, तेजवर्तिका तथा शंकराचार्य का ब्रह्मसूत्र भाष्य आदि सभी दलित-विरोधी साहित्य, जिनका मूल आधार वर्ण-व्यवस्था है । यदि इस तरह के साहित्य की भरमार न होती तो दलित साहित्य की कभी आवश्यकता ही न पड़ती । यह एक ऐतिहासिक सत्य है ।"[12] अगर कोई क्रिया होगी तो उसकी प्रतिक्रिया भी होगी; यह वैज्ञानिक नियम सर्वथा सत्य है । भारतीय समाज में न साहित्य की कमी है और न ही साहित्यकार की, पर मुख्य धारा का अधिकांश साहित्य वर्ण-व्यस्था का पोषक रहा है । क्रिया और प्रतिक्रिया का सबसे अच्छा उदाहरण यह है कि समाज में व्याप्त जातिवाद के चलते ऐसी-ऐसी कहावतें प्रसिद्ध हैं जो एक-दूसरे के अन्दर द्वेष और घृणा का संचार कर रही हैं ।

"बनिया, बन्दर, अग्नि, जल, कुटी, कटक, कलार ।

ये दशों अपने नहीं, सूची, सुधा, सुनार ।

बनिया किसका यार, उसको दुश्मन क्या दरकार ।

[11] डॉ. आंबेडकर सम्पूर्ण वांङ्मय , खंड 1, पृष्ठ संख्या- 89

[12] सर्वेश कुमार मौर्य, यथार्थवाद और दलित साहित्य, पृष्ठ संख्या- 123

अहिर मिताई तब करे जब सबै मीत मर जाएँ।

जाट मरा तब जानिए जब तेरहवीं होय।

यह कायथ की खोपड़ी मरे पै धोखा देय।

ठाकुर मानें कहे-सुने ते, ब्राह्मण माने खाये।

कागज मानैं लिहे-दिहे ते, सूद जाति लतियाये।

इस दुनियाँ में तीन कसाई, खटमल, पिस्सू, ब्राह्मण भाई।"[13]

इस तरह के विचार मनुष्य-मनुष्य के बीच खाई पैदा करते हैं, जिसके परिणाम बहुत ही घातक सिद्ध हुए हैं। समाज में साहित्य का प्रभाव बहुत गहनता पूर्वक पड़ता है, अधिकांश यह देखा जाता है कि साहित्यकारों द्वारा लिखित विचारों से मनुष्य बहुत प्रभावित होता है। अगर किसी ने कह दिया कि क्षत्रिय समाज में जन्म लेने वाला मनुष्य सबसे ताकतवर मनुष्य है, तो वही सही है, भले ही वह बेहद कायर और डरपोक ही क्यों न हो? ब्राह्मण के घर पैदा होने वाला ज्ञानी बना दिया गया और शूद्र के घर पैदा होने वाला अज्ञानी।

इस प्रकार के विचारों ने समाज के बड़े वर्ग को एक लम्बी अवधि तक अशिक्षित और अस्पृश्य बनाये रखा। यहाँ तक कि अगर किसी ने अपनी प्रतिभा के बल पर ज्ञान अर्जित भी कर लिया तो उसे रोकने की चाल चलने से बाज नहीं आए। माता प्रसाद ने लिखा कि "रामायण-काल में शम्बूक ऋषि के शूद्र होने पर भी तपस्या करने पर, राजा रामचन्द्र द्वारा उसका वध किया गया। महाभारत-काल में एकलव्य की कथा, शूद्रों पर शिक्षा-प्राप्ति में प्रतिबंध का अच्छा उदाहरण है। गुरू द्रोणाचार्य द्वारा शिक्षा न देने पर भी

[13] शम्भुनाथ, (संपादक), सामाजिक क्रांति के दस्तावेज, पृष्ठ संख्या- 903

'एकलव्य' का दायाँ अँगूठा कटवा लेना, शूद्रों के साथ छल-प्रपंच करके उनको आगे बढ़ने से रोकना ही था ।"[14] इस तरह की घोर समाज विरोधी गतिविधियों के चलते ही कविता होने के बावजूद भी दलित कविता की उत्पत्ति हुई जिसने अपनी अलग पृष्ठभूमि का निर्माण किया । इसके केंद्र में बुद्ध, सिद्ध,-नाथ, कबीर, रैदास, महात्मा फुले, अम्बेडकरवादी और मार्क्सवादी विचारधारा की मुख्य भूमिका है । इन महापुरुषों के विचारों ने बड़ी गहराई से सोच-विचार कर परम्परागत जड़ता को तोड़ने का प्रयास करते हुए,इन्होंने वर्णवादी साहित्य की जड़ों को हिलाकर रख दिया था।

प्रतिरोध का इतिहास कोई एक-दो दिन में नहीं निर्मित हुआ बल्कि सौ साल से भी ज्यादा का है। कँवल भारती ने लिखा है कि "दलित कविता का इतिहास सौ साल से भी ज्यादा पुराना है। इसे हम और पीछे ले जा सकते हैं, मध्यकाल से वैदिक काल तक दलित ने अपनी व्यथा को हर युग और काल में व्यक्त किया । वह अत्याचार और अन्यायों के खिलाफ सदैव मुखर रहा है। उसने अपनी व्यवस्था के विरूद्ध व्यवस्था के प्रतिबंधों को कभी स्वीकार नहीं किया और न सहन किया । आर्यों के वैदिक दर्शन (परलोकवादी) के विरुद्ध अनार्यों (मूलनिवासी) की आजीवक दर्शन-धारा (लोकवादी) ने व्यापक जन-जागरण किया । 'मनुस्मृति' से पता चलता है कि शूद्रों ने ब्राह्मण की सत्ता को स्वीकार नहीं किया और सदैव समानता के स्तर पर ही उससे व्यवहार किया ।"[15] संकट की घड़ी में कौन चैन की वंशी बजाता है? सभी उससे निदान ही चाहते हैं। अपनी सुरक्षा के लिए तो जानवर भी दुश्मन को देखर हुँकार भरता है। यहाँ तो पूरी-पूरी मानवीय अस्मिता ही दाँव पर लगी हुई है। जातिवाद, अन्धविश्वास, पाखंड, अस्पृश्यता के चलते घुटन से भरी जिन्दगी जीने वाला कैसे शांत बैठेगा? अपने-अपने ढंग से सब आवाज

[14] माता प्रसाद, हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा, पृष्ठ संख्या- 11

[15] कँवल भारती,दलित कविता का संघर्ष (हिन्दी दलित कविता के सौ वर्ष), पृष्ठ संख्या- 13

उठाते रहे हैं। इसके कुछ उदाहरण हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'साहित्य की भूमिका में' मिल जाते हैं, जिसमें सरहपा नामक सिद्ध कवि ने कहा है कि "फिर भी उच्च-वर्ग के लोगों ने तटस्थता का ही आलंबन नहीं किया। कभी उन्होंने भी उग्रतम आक्रमण किया है। अश्वघोष (कालिदास के पूर्ववर्ती कवि) की लिखी हुई 'वज्रसूची' एक ऐसी ही पुस्तक है। सरोरूहपाद (सरहपा) नामक सहजयानी सिद्ध जाति व्यवस्था के भयंकर विरोधी थे। वे कहते हैं ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुए थे, जब हुए थे, तब हुए थे। इस समय तो वे भी दूसरे लोग जिस प्रकार पैदा हुए होते हैं वैसे ही पैदा हो रहे हैं तो फिर ब्रह्मत्व कहाँ।"[16] कहने का मतलब यह है कि ब्राह्मणवाद, जातिवाद और पाखण्ड का विरोध विद्वानों द्वारा समय-समय पर किया जाता रहा है।

1.1.3 वर्गीय पृष्ठभूमि

वर्णवाद और जातिवाद के बाद भारतीय समाज वर्गवाद से प्रभावित हुआ है। परन्तु दलित साहित्य, इस सब से अलग समतावादी समाज बनाने के लिए प्रेरित करता है। रमणिका गुप्ता के इन विचारों से इसे समझा जा सकता है कि "दलित साहित्य उस दबी हुई अस्मिता को प्राणवान मानव-अस्मिता का हिस्सा बनाने की लड़ाई लड़ सकता है, जब वह वर्ण-विहीन, वर्ग-विहीन, जाति-विहीन समाज बनाकर एक मानवीय समाज बनाने की घोषणा करता है।"[17] लेकिन मनुवाद अपनी जड़ आज भी जमाए हुए है, जिससे समाज में विभाजन की रेखा परिवर्तित तो हुई है, पर मिटी नहीं है। दलितों के साथ जातीय-भेदभाव, गाँव में अलग बस्तियाँ, घोड़ी पर चढ़कर बारात ना जाना इत्यादि पर मनुवादी-विधान का प्रभाव है।

[16] हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ संख्या- 42-43

[17] ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या- 25

एक समय था जब दलित, एक वर्ण से दूसरे वर्ण में प्रवेश कर सकता था और कोई भी पेशा चुन सकता था, यहाँ तक कि वह राजा भी बन सकता था, यज्ञ कर सकता था, दान दे सकता था। "प्रथम साक्ष्य महाभारत के शांतिपर्व (अध्याय 60 के श्लोक 38-40) का है, "हमने सुना है कि प्राचीन काल में (पेंजवन) नामक शूद्र राजा ने अपने यज्ञ में इन्द्राग्नि के विधानानुसार एक सौ सहस्त्र पूर्णपात्र दक्षिणा दी थी।" इस उदाहरण से निम्नलिखित तीन साक्ष्य प्रकट होते हैं-

1. पैजवन शूद्र था
2. शूद्र पैजवन ने यज्ञ किया, और
3. ब्राह्मणों ने पैजवन के निमित्त यज्ञ कर दक्षिणा ली।"[18]

कालांतर में, समाज में अस्पृश्यता, जातिवाद, छुआछूत ने सम्पूर्ण मानवीय इतिहास को बदल दिया। दलितों के लिए अलग दण्ड विधान, खान-पान निर्धारित कर दिया, जिससे ये जातियाँ पिछड़ती चली गईं और छुआछूत हावी हो गई। छुआछूत की उत्पत्ति के विषय में कँवल भारती ने लिखा कि "डॉ. अम्बेडकर ने डी. आर. भण्डारकर के हवाले से बताया गया है कि चौथी ई. में किसी समय गुप्त राजाओं ने गोवध को दंडनीय अपराध घोषित कर दिया था। इसलिए यह माना जाना चाहिए कि छुआछूत 400 ई. के आसपास किसी समय पैदा हुई और यह बौद्ध धर्म तथा ब्राह्मण धर्म के संघर्ष से पैदा हुई है, जिसने भारत के इतिहास को पूरी तरह बदल दिया।"[19] छुआछूत और अस्पृश्यता किस कदर समाज में हावी है, इसे मलखान सिंह की 'हमारे गाँव में' नामक कविता के माध्यम से समझा जा सकता है-

"हमारे गाँव में भी

---

[18] डॉ. अम्बेडकर, वांङ्मय खण्ड -13, पृष्ठ संख्या- 89

[19] कँवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, पृष्ठ संख्या- 41

कुछ हरि होते हैं

कुछ जन होते हैं

जो हरि होते हैं

वह जन के साथ

न उठते हैं

न बैठते हैं

न खाते हैं

न पीते हैं

यहाँ तक कि जन की

परछाईं तक से पहरेज करते हैं।"[20]

यह भारतीय समाज की सच्चाई है। वर्ण और जाति को समाप्त किए बिना भारतीय समाज में 'वर्ग' सफल नहीं हो सकता। इस विषय में प्रगतिशील, प्रगतिवाद, जनवाद की विचारधारा से प्रेरित अनेक दलित रचनाकार प्रयासरत हैं कि सामाजिक समानता आ सके। लेकिन इनमें विरोधाभास भी कभी-कभी उभरकर सामने आ जाता है। इस संदर्भ में ओमप्रकाश वाल्मीकि का यह मत विचार करने योग्य है कि "भारतीय समाज व्यवस्था की जटिल बुनावट को प्रगतिवादी अनदेखा करके 'वर्ण और वर्ग' को एक ही मान रहे हैं। इस सोच की पृष्ठभूमि में भारतीय मार्क्सवादियों के पारिवारिक

[20] मलखान सिंह, सुनो ब्राह्मण, पृष्ठ संख्या- 89

संस्कार ही हैं। क्योंकि मार्क्सवादी संगठनों का नेतृत्व प्रारंभ से ही ब्राह्मण या ठाकुरों के हाथ में है। इसलिए वर्ण व्यवस्था की निर्ममता से वे अनभिज्ञ हैं।"[21]

दलित साहित्य का विरोध मार्क्सवाद और इसके सिद्धांतो से नहीं बल्कि उन छद्म बहुरूपियों से है, जिनके विचारों और सिद्धांतो में तालमेल नहीं है। यह समाज निश्चित रूप में बदल सकता है, यदि मार्क्सवादी 'वर्ग' के साथ 'वर्ण' और 'जाति' को साथ लेकर लड़ें। परन्तु ऐसी एकरूपता अभी दिखाई नहीं दे रही है। इस विषय में मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है कि "दुनिया भर के क्रांतिकारी विचारों के साथ एक विडम्बनापूर्ण स्थिति यह दिखाई देती है कि वे क्रांतिकारी विचार, विरोधियों की मार से नहीं, अनुयायियों के अवसरवाद से मरते हैं। भारत के प्रसंग में गौतम बुद्ध और कबीर के विचारों के साथ यही हुआ है। मार्क्स के विचार भी इसके अपवाद नहीं हैं। जर्मनी के प्रसिद्ध कवि हंस माग्नूस आईजेनवर्गर ने कविता लिखी है जिसका शीर्षक है 'काल मार्क्स'। कविता की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

मैं देख रहा हूँ
तुम्हारे अनुयायियों ने
तुम्हें धोखा दिया है
और तुम्हारे दुश्मन, वे जैसे पहले थे
वैसे ही आज भी हैं।"[22]

[21] ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या-94
[22] मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और दलित दृष्टि, (संपा) सर्वेश कुमार मौर्य, पृष्ठ संख्या-192

सारांश में यह कहा जा सकता है कि समाज में जातिवाद और पाखंड इसलिए जीवित है, क्योंकि इसके विरोधी प्रायः ब्राह्मणवादी व्यवस्था में फँस जाते हैं। इसलिए कँवल भारती ने स्पष्ट रूप में लिखा है कि "वामपंथ का दलितवाद तो सर्वहारावाद है। वह भी उस व्यवस्था का समूल अंत चाहता है, जो सामंतवादी, ब्राह्मणवादी और पूंजीवादी है। दलित साहित्य इसका समर्थक वर्ग है, पर वह पूरी तरह वामपंथी नहीं हो सकता। क्योंकि दलित साहित्य की अवधारणा वर्ग के साथ जाति चेतना को स्वीकार करती है और धर्म को भी, जिसे वामपंथ पूरी तरह नकारता है। वास्तव में दलित साहित्य की प्रतिबद्धता डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा के साथ है।"[23]

1.2. साहित्यिक-पृष्ठभूमि (19 वीं सदी के पूर्व)

1.2.1 आदिकालीन दलित-कविता

आदिकाल द्वंद्व से भरा हुआ अव्यवस्थित काल था। जहाँ एक राजा दूसरे राजा से आपस एक-दूसरे से स्वार्थ बस उलझे हुए थे। नारी केवल भोग-विलास की वस्तु समझी जाती थी। उच्च वर्ग के लोग निम्न वर्ग को हेय दृष्टि से देखते थे।

अस्पृश्यता, जातिवाद, भेदभाव और असमानता भारतीय समाज की सबसे प्राचीन समस्या है। हिंदी साहित्य के इतिहास में आदिकाल की समय सीमा को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने विक्रम संवत् 1050 से 1375 तक माना है और उन्होंने इस काल को 'वीरगाथा काल' भी कहा है। इस काल में जातिवाद और पाखंड का बोलबाला था, लेकिन उस समय दलित को दलित नहीं बल्कि 'शूद्र' कहा जाता था।

ये 'शूद्र' कई रूपों में उपेक्षा के शिकार थे। इसका विरोध उस समय सिद्धों, नाथों, के यहाँ हुआ है। माता प्रसाद ने इसका उल्लेख इस प्रकार किया है कि "हिंदी काव्य

[23] कँवल भारती, दलित साहित्य और विमर्श के आलोचक, पृष्ठ संख्या-5

रचना के बीज आठवीं शताब्दी में बज्रयानी योगी सरहपा के अपभ्रंश के छंदों में 'चंडाल' और 'भेदभाव' शब्द मिलते हैं। आगे चलकर नाथपंथ के संस्थापक श्री गोरखनाथ जी की प्राचीन हिंदी की काव्य रचना में यह उपलब्ध है। इन सिद्ध योगियों ने अपनी रचनाओं में 'शूद्र' शब्द का प्रयोग किया और वर्ण व्यवस्था का खंडन किया। शूद्रों की पूर्व से चली आ रही दयनीय स्थिति को 'नकार' दिया है, इसकी झलक इसमें मिलेगी।"[24]

वर्ण-व्यवस्था समाज की सबसे गंभीर समस्या थी, जिसका विरोध उस समय से लेकर मध्यकाल तक पहुँचा था। इसका वर्णन कँवल भारती ने इस प्रकार किया है कि "लोकायत जनता का धर्म था -वर्ण व्यवस्था से पीड़ित दलित जनता का धर्म। दलित विमर्श की परम्परा का उससे गहरा संबंध हो सकता है। उसने एक ऐसी विचार परम्परा को जन्म दिया जो वेद और वर्ण व्यवस्था विरोधी थी। यह परम्परा बाद में बौद्धों, सिद्धों और नाथों से होती हुई मध्यकाल के दलित सन्तों तक पहुँची।"[25]

इससे स्पष्ट होता है कि आदिकाल में सिद्धों-नाथों ने जातीय असमानता और अपमान को कभी बर्दास्त नहीं किया। डॉ. एन. सिंह ने 'दलित साहित्य के प्रतिमान' नामक पुस्तक में लिखा है कि "वस्तुत: इस हिन्दू वर्चस्व के विरूद्ध भारत में सबसे पहले सिद्ध और नाथ कवियों ने आवाज उठाई। चौरासी सिद्ध कवियों में तीस शूद्र कवि थे। इसी प्रकार नाथों में कई 'शूद्र' थे।"[26] निश्चित रूप में यह कह सकते हैं कि उस समय समाज और साहित्य का स्वरूप वर्तमान से भिन्न था। परन्तु एक साथ इतने 'शूद्र' 'सिद्धों' का होना किसी आन्दोलन से कम न था। डॉ. एन सिंह ने इन सिद्धों का नामों उल्लेख इस प्रकार किया है- "जोगिया (डोम), सर्वभक्ष (शूद्र), भद्रपा (शूद्र) मणिप्रदा

[24] माता प्रसाद, हिन्दी काव्य में दलित काव्य धारा, पृष्ठ संख्या-34

[25] कँवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, पृष्ठ संख्या-103

[26] डॉ. एन. सिंह, दलित साहित्य के प्रतिमान, पृष्ठ संख्या-76

(गृहदासी), महीपा (शुद्र), मनिपा(कघुना), चर्पटी (कहार), कंथलीग (दर्जी), गुन्डरीपा (चिड़ीमार) खड़गपा (शूद्र), मेदनीपा (शूद्र), शालिपा(शूद्र), थगनपा (शूद्र), धोम्मिपा (धोबी), चमरिपा (चमार), कुंडालिपा (शूद्र), क्षत्रपा (शूद्र), चेलुकपा (शूद्र), कालपा (लोहार), कंकालिपा(शूद्र), पनहपा (चमार), निर्गुणपा (शूद्र), भीखनपा (शूद्र), धहुलिपा (शूद्र), पुतलिया (शूद्र), कुचिपा (शूद्र), कमालपा (शूद्र), कलकलपा (शूद्र), ततैपा (शूद्र), धोकरिपा (शूद्र) इन सभी सिद्ध कवियों ने वर्णव्यस्था, जाति प्रथा तथा ब्राह्मण वर्चस्व का खुला विरोध किया।"[27]

1.2.2 भक्तिकालीन दलित-कविता

यह काल साहित्यिक रूप से बहुत समृद्ध था, इसीलिए इस युग को स्वर्ण युग कहा गया है। कोई भी साहित्य अपने समय का दस्तावेज होता है। वह तत्कालीन समाज की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, साँस्कृतिक स्थिति का हूबहू चित्रण करता है।

समाज में समानता और भाईचारे के लिए नाथों, सिद्धों और भक्तिकाल के संत साहित्य के अंतर्गत आने वाले निर्गुणधारा के कवियों ने जो प्रयास किए वे तत्कालिक समाज के यथार्थ से रूबरू कराते हैं। कबीरदास, रैदास, नानक, सेना, पीपा, धन्ना आदि निम्न जाति के कवि थे। इनके यहाँ पाखंड, आडम्बर, जातिवाद, अस्पृश्यता आदि का खुलकर विरोध मिलता है। कबीरदास और रैदास जैसे संत कवि हुए जिन्होंने जाति-पाँति का खंडन किया। रजत रानी मीनू का मानना है कि "कबीरदास जात-पाँत व साम्प्रदायिकता के खिलाफ बोलने वाले कदाचित अपने समय के प्रखर तेजस्वी और

[27] डॉ. एन. सिंह, दलित साहित्य के प्रतिमान, पृष्ठ संख्या-83-84

सशक्त कवि रहे। उनकी रचनाओं की सम्प्रेषणीयता बेजोड़ थी। कबीर का रचना-कर्म स्वयं इसका साक्षी है-

"संतन जात न पूछो निरगुनियाँ

साध ब्राह्मण साध छत्तरी

साध जाती बनियाँ

साधन माँ छतीस कौम है टेड़ी तोर पुछनियाँ।

हिन्दू तुर्क दुई दीन बने हैं कछू नहीं पहचानियाँ।

कबीर के समकक्ष 'रैदास' भी हिंदी साहित्य में बहुचर्चित कवि हैं। पर उतने निडर शायद नहीं। यहाँ उनकी प्रतिनिधि पंक्तियाँ दी गई हैं–

"रैदास वामन मत पूजिये, जऊ होवे गुन हीन,

पूजहिं चरण चांडाल के, जऊ होवे गुन प्रवीन।"[28]

यही नहीं भक्तिकाल में मौजूद दलित रचनाकारों के आधार पर रजतरानी 'मीनू' ने इस प्रकार लिखा है कि "भक्तिकाल का साहित्य स्वर्ण युग हो या न हो शूद्रयुग अवश्य था, जिससे आज के दलित और कल के शूद्र कवियों की श्रृंखला रही है। कबीर, रैदास, नानक, केसवसुत, चोखेमेला, नामदेव, कांचीपूर्ण, पीपा, दादू दयाल जैसे अनेक रचनाकार भारतीय साहित्य में अविस्मरणीय योगदान दे चुके हैं।"[29] इन सन्तों के पास दलित चिंतन के वे सभी तत्व मौजूद थे, जिससे दलित चेतना का विकास हुआ है। जातिवाद, ब्राह्मणवाद, वर्ण-व्यवस्था आदि का खंडन इनका प्रमुख विषय रहा है। इन्होंने

[28] रजत रानी मीनू, नवें दशक की हिन्दी दलित कविता, पृष्ठ संख्या-10

[29] रजत रानी मीनू, नवें दशक की हिन्दी दलित कविता, पृष्ठ संख्या-viii

भेदभाव को भुलाकर आपस में समानता का पाठ सदैव पढ़ाया। इस विषय में चमनलाल के ये विचार प्रासंगिक है कि “आधुनिक दलित साहित्य ने भी अपनी पहचान समाज के विकृत जातिगत ढाँचे के प्रति अपना आक्रोश जताकर की है। इस सन्दर्भ में आधुनिक दलित साहित्य की जड़ें कबीर और रविदास की वाणी में देखी जा सकती है। इसलिये इस तथ्य को यहाँ रेखांकित किया जा सकता है कि सही मायनों में कबीर और रविदास हिंदी दलित साहित्य के अग्रदूत हैं।”[30]

सन्तों के बीच कबीरदास एक ऐसे संत कवि थे जिन्होंने सामाजिक बुराइयों का पूरे तेवर के साथ विरोध किया है। इतना ही नहीं समाज में व्याप्त कुरीतियों, अंधविश्वासों, दकियानूसी मान्यताओं और रूढ़ियों में लिप्त लोगों को जमकर फटकार लगाई है। सन्तों ने वास्तव में इतिहास को एक नया मोड़ दिया। लेकिन भक्त कवि की भाँति उस भावना को नहीं त्याग पाए, जिनका दलित कवि प्रतिकार करते हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि के शब्दों में “हिंदी साहित्य के भक्तिकाल में रैदास और कबीर जहाँ एक ओर वर्ण-व्यवस्था के विरुद्ध खड़े दिखाई पड़ते हैं और सामाजिक बदलाव के लिए संघर्ष करते हैं, वहीं वे आध्यात्मिक दलदल में फँसकर उसी सामंती व्यवस्था में विलीन हो जाते हैं, जिसने वर्ण व्यवस्था को पुख्ता किया है। उनकी क्रांतिकारिता सामाजिक स्तर पर गहन अभिप्रेरणा उत्पन्न करती है, हिंदी साहित्य में विरोध के स्वर को ऊँचा करती है और प्रासंगिक बनकर दलित चेतना के लिए प्रेरणा बनती है। लेकिन रहस्यवाद, भक्तिवाद, निर्गुणवाद आदि उन्हें उसी परम्परा से जोड़ देते हैं। जिसके विरुद्ध दलित साहित्य खड़ा है।"[31] सगुण-निर्गुण भक्ति, प्रेम आदि दलित रचनाकारों के विषय नहीं हैं, जबकि कबीरदास सगुण-निर्गुण के रहस्य में उलझे रहे।

---

[30] कँवल भारती, दलित कविता का संघर्ष, पृष्ठ संख्या-15

[31] ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या-73

उनका ईश्वर निर्गुण निराकार है जबकि दलित साहित्य में ईश्वर नाम की कोई चीज नहीं है। परन्तु कबीरदास के पास जो आक्रामकता और तेवर है, वही दलित साहित्य के पास है। उनका चिंतन दलित साहित्य के लिए प्रेरणा प्रदान करता है। निश्चित ही दलित साहित्य की जो नीव सन्तों ने रखी थी, वह दिनों-दिन अपना मुकाम हासिल करने में सफल होती दिख रही है।

कबीरदास का सामाजिक चिंतन मानव कल्याण के लिया था। जिस प्रकार का आत्मबल उनके पास था, वह बहुत कम लोगों के पास होता है। उन्होंने अकेले ही सैकड़ों-पाखंडियों को अपनी वाणी के द्वारा निरुत्तर किया है। आज कोई कुछ भी कहे लेकिन कबीरदास के बिना दलित साहित्य अधूरा है। वैदिक काल में निर्मित वर्णव्यवस्था और जाति-व्यवस्था पर निरंतर जिस प्रकार प्रहार होता रहा है। उसी के परिणामस्वरूप आज दलित कविता अपनी पहचान बना सकी। हिंदी दलित कविता की शुरुआत नाथ, सिद्ध, कबीर, रैदास से होती है।

1.2.3 रीतिकालीन दलित-कविता

रीतिकाल को हिंदी साहित्य का श्रृंगार और प्रेम का काल कहा जाता है। इस काल के कवि राजाश्रित और दरबारी थे। अधिकतर कवि राज दरबार में रहकर मनोरंजन की कविताएँ लिखा करते थे। तत्कालीन शासक सुरा-सुन्दरियों के मद में इतना डूब गए कि आमजन की आवाज धूमिल हो गई। पूर्व से चली आ रही नाथों, सिद्धों, सन्तों ही नहीं बल्कि कबीर, सूर, तुलसी और जायसी के स्वर भी यहाँ मंद पड़ गए। इस परिवर्तन के कारण कौन से थे? इसे आचार्य रामचद्र शुक्ल के इन विचारों से समझा जा सकता है कि "इसका कारण जनता की रुचि नही; आश्रयदाता राजा-महाराजाओं की रुचि थी

जिसके लिए कर्मण्यता और वीरता का जीवन बहुत कम रह गया था ।"[32] ऐसे अकर्मण्य राजाओं-महाराजाओं के चलते आदिकाल में जिन 'शूद्र' कवियों की झलक दिखाई देती है, वह यहाँ ओझल नज़र आते हैं । इसलिए इस काल में दलित वर्ग की चिंता और कविताओं को ढूँढ़ना बेकार है क्योंकि इस दौर के कवि और कविता दोनों राजदरबारों तक सीमित थी ।

1.2.4 **आधुनिक कालीन दलित-कविता**

आधुनिक काल का प्रारम्भ 1850 ई. से माना जाता है । इस समय हिंदी साहित्य में कई परिवर्तन हुए, एक तो रीतिकाल में चार-दीवारी में बंद दरबारी-कवियों की रीतिबद्धता धूमिल हुई और दूसरे कविता पर गद्य का प्रभाव पड़ना शुरू हो गया । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस विषय में लिखा है कि "भारतेंदु का पूर्ववर्ती काव्य साहित्य सन्तों की कुटिया से निकल कर राजाओं और रईसों के दरबार में पहुँच गया था । उन्होंने एक तरफ तो काव्य को फिर से भक्ति की पवित्र मन्दाकिनी में स्नान कराया और दूसरी तरफ़ उसे दरबारीपन से निकालकर लोक-जीवन के आमने-सामने खड़ा कर दिया ।"[33] इस युग की दलित कविता को क्रमवार समझने का प्रयास करेंगे ।

1.2.5 भारतेंदु युगीन दलित-कविता

भारतेंदु हरिश्चंद आधुनिक हिंदी कविता के जनक और नवजागरण के प्रणेता माने जाते हैं । भारतेंदु पूर्व की कविता राज दरबार तक सीमित थी, परन्तु उन्होंने इसे लोकजीवन से जोड़कर एक नई दृष्टि प्रदान की ।

---

[32] रामविलास शर्मा, आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, पृष्ठ संख्या-113

[33] विश्वनाथ प्रसाद त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास, पृष्ठ संख्या-82

भारतेंदु युग में उन सामजिक मुद्दों को विषय बनाया गया जिन्हें पूर्व के युगों में दरकिनार किया गया था। रामविलास शर्मा ने लिखा है कि "भारतेंदु-युग का साहित्य जनवादी इस अर्थ में है कि वह भारतीय समाज के पुराने ढाँचे से संतुष्ट न रहकर उसमें सुधार भी चाहता है। वह केवल राजनीतिक स्वाधीनता का साहित्य न होकर मनुष्य की एकता, समानता और भाई चारे का भी साहित्य है। भारतेंदु स्वदेशी आन्दोलन के ही अग्रदूत न थे, वे समाज सुधारकों में भी प्रमुख थे। स्त्री-शिक्षा, विधवा विवाह, विदेश यात्रा आदि के वे समर्थक थे।"[34] दलित चिन्तक माता प्रसाद ने 'हिंदी काव्य में दलित काव्यधारा' नामक पुस्तक में उनके द्वारा लिखित इन पंक्तियों को पढ़कर लगता है कि समाज में व्याप्त सामाजिक असमानता और अस्पृश्यता नामक बुराई के प्रति वे सचेत थे। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि जितना धर्म फैल रहा है, उतना ही छुआछूत भी-

"अपरस, सोला, छूट रचि

भोजन प्रीति छुड़ाय।

किये तीन तेरह सबै,

छौंका चौका लाय।

बहुत हमने फैलाये धर्म।

बढ़ाया छुआछूत का कर्म।"[35]

एक अन्य कविता जिसे 'बदरीनारायण भट्ट' ने रचा है को पढ़कर यह कहा जा सकता है कि गैर-दलित कवि और दलित कवि के बीच जमीन-आसमान का अन्तर था।

[34] विश्वनाथ प्रसाद त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास, पृष्ठ संख्या-83

[35] माता प्रसाद, हिन्दी काव्य में दलित काव्य धारा, पृष्ठ संख्या-72

अधिकतर गैर- दलित कवि या तो सहानुभूति के लिए लिखते हैं या ब्राह्मणवाद को बढ़ावा देने के लिए।

"हमें न छूना हे द्विजराज

हम हैं शूद्र, अछूत, आप हैं आर्य जाति सिरताज ।"[36]

1.3. साहित्यक पृष्ठभूमि (19वीं सदी के बाद की पृष्ठभूमि)

19 वीं सदी के बाद दलित कविता की स्थिति में आमूल-चूल परिवर्तन दिखाई देता है, जिसे हम निम्न रूप में बाँटकर देखने का प्रयास करेंगे। द्विवेदी युग की दलित कविता, छायावाद युग की दलित कविता, प्रगतिवाद युग की दलित कविता, प्रयोगवाद युग की दलित कविता और समकालीन दलित कविता ।

1.3.1. द्विवेदी युगीन दलित-कविता

द्विवेदी युग की कविता की विषय वस्तु, आदिकाल से लेकर भारतेंदु युग तक की कविता विषय वस्तु से भिन्न है। यह वह समय था, जब 'हीराडोम' और 'स्वामी अछूतानन्द' ने दलित साहित्य के लिए नए मार्ग का निर्माण किया था।

यहाँ द्विवेदी-युग के उन महत्त्वपूर्ण कवियों की कविताओं की एक झलक देखना आवश्यक है, जिन्होंने हिंदी कविता को एक नई दृष्टि प्रदान की थी। उनमें प्रमुख हैं-

[36] माता प्रसाद, हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा, पृष्ठ संख्या-72

महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', इत्यादि।

महावीर प्रसाद द्विवेदी 'द्रौपदी वचनावली' से यह कविता जिसका उल्लेख 'दलित निर्वाचित कविताएं' में 'कँवल भारती' ने किया है कि जब दलित कवियों की नई पीढ़ी तैयार हो रही थी, ये कवि रस-रंग में ही मशगूल थे।

"भूप, वही तू आज उदर निज
तनफल खाकर भरता है।
यश के साथ देह भी अपना
हा हा हा ! कृश करता है।।"[37]

व्यास स्तवन है--

"कर वेदों का तुमने विभाग।
रक्षा की उनकी सानुराग।।
वेदान्त सूत्र रच कर विचित्र।
नर को ईश्वररता दी पवित्र।।
करता शुभ कर्म प्रचार कौन?
सिखलाता वेदा चार कौन?
हरता तुम बिन जयताप कौन?

[37] कँवल भारती, दलित निर्वाचित कविताएँ, पृष्ठ संख्या-12

दिखलाता पूर्व प्रताप कौन?"[38] मैथिलीशरण गुप्त (1908)

इन कविताओं में वेद, पुराण और ईश्वर का बखान अत्याधिक किया जा रहा है, न कि दलित समाज में उपेक्षित लोगों का। ऐसा ही 'रास-रंग' 'हरिऔध' की कविताओं में देखने को मिलता है-

"कंदमूल फल दीन जनों का जीवन रखते।

हम चाहे दें छोड़ खबर उनकी तुम रखते।।

जाति वर्ण ऊँचे नीचे का भाव न रखकर।

करता हूँ सब पर समान उपकार अतुलवर।।"[39]

धार्मिक अंधविश्वास और छुआछूत के चलते दलितों की दुर्दशा को रेखांकित करती 'एक फूल की चाह' सियारामशरण 'गुप्त' की यह कविता जिसमें अस्पृश्यता के यथार्थ को देखा जा सकता है-

"सिंह पौर तक भी आँगन से,

नहीं पहुँचने मैं पाया।

सहसा यह सुन पड़ा कि कैसे,

यह अछूत भीतर आया।

पकड़ो देखो भाग न जाये,

बना धूर्त यह है कैसा?

---

[38] कँवल भारती, दलित निर्वाचित कविताएँ, पृष्ठ संख्या-12

[39] माताप्रसाद, हिन्दी काव्य में दलित काव्य धारा, पृष्ठ संख्या-73

साफ स्वच्छ परिधान किये है,

भले मानुषों के जैसा।

* * *

बस यह एक फूल कोई भी,

दो बच्ची को ले जाकर ।"[40]

कँवल भारती ने इस युग में हुई दलित उपेक्षा पर बड़ा ही आश्चर्य व्यक्त किया है कि "साहित्य में उन्नीस सौ अठारह तक का काल जागरण सुधार काल माना जाता है। पर न इस काल के कवि दलित रचनाशीलता से परिचित नज़र आते हैं और न उनकी कविता में दलित प्रश्न दिखाई पड़ता है। बेहद आश्चर्य होता है कि इन कवियों की सामाजिक भूमिका नगण्य है, जबकि इसी काल खण्ड में हीराडोम महत्त्वपूर्ण दलित प्रश्न उठा रहे थे और अछूतानंद की कविताएँ दलितों में नवजागरण कर रही थीं-

जिसके गुण गाते हुए वेद हुए हैं मौन।

उसका कीर्तन जगत में कर सकता है कौन?

पाते हैं रवि, शशि अनल जिससे प्रखर प्रकाश।

कहो उसी को कहाँ से लावें दीप-उजास?"[41]

पं. लक्ष्मीधर वाजपेयी (1913)

---

[40] माताप्रसाद, हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा, पृष्ठ संख्या-83

[41] कँवल भारती, दलित निर्वाचित कविताएँ, पृष्ठ संख्या-13

इस युग में दलित कविता के लिए सबसे खास बात यह रही कि द्विवेदी जी ने 'हीराडोम' की दलित कविता 'अछूत की शिकायत' को सरस्वती पत्रिका में स्थान दिया। डॉ. एन. सिंह ने लिखा है कि "स्वत्रंतता के पूर्व काल में जिन कवियों की रचनाएँ प्रकाशित हुईं, उनमें हीराडोम की 'अछूत की शिकायत' 'सरस्वती' मासिक के सितम्बर, 1914 अंक में प्रकाशित हुई ।"[42] परन्तु आश्चर्य है कि इनके समकालीन स्वामी अछूतानन्द 'हरिहर' आदि की उपेक्षा की गई और आगे चलकर यह लुप्त हो गई । इसी युग में 'हीराडोम' ने अपनी कविता में जिस सामाजिक समस्या को उठाया है, उससे गैर-दलित कवियों का निरुत्तर होना लाजमी है, क्योंकि ये सवाल बहुत गंभीर और यथार्थ है-

"बमने के लेखे हम भिखिया न माँगव जाँ,

ठकुरे के लेखे नहीं लड़रि चलाईबि ।

सहुआ के लेखे हम नहि ड़ाडी हम मारब जाँ,

अहिरा के लेखे नहि लड़रि चलाईबि ।

भंतऊ के लेखे न कबित्त हम जोरबा जाँ,

पगड़ी न बान्हि के कचहरी में जाइब ।

अपने पसिनवा के पैसा कमाईब जाँ,

* * *

पनहीं से पिटि पिटि हाथ गोंड़ तुरि दैलें,

[42] डॉ. एन. सिंह, दलित साहित्य के प्रतिमान, पृष्ठ संख्या-90

हमनी के एतनी काही के हलकानी ।"[43]

1.3.2. छायावाद युगीन दलित-कविता

द्विवेदी युग के बाद छायावाद युग आता है । इस युग का आधार स्तम्भ प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी वर्मा को माना जाता है । इन छायावादी कवियों का मानव विषयक दृष्टिकोण व्यापक है, परन्तु दलित विषयक दृष्टिकोण संकुचित है ।

अस्पृश्यता, जातिवाद, शोषण, उत्पीड़न आदि परम्परागत व्यवस्था से यह युग अछूता नहीं था । इसे मिटाने के लिए डॉ. अम्बेडकर जी-जान से लगे हुए थे और महात्मा गाँधी भी कई रूपों से इस सामाजिक समस्या को दूर करने में प्रयासरत थे ।

इस युग में निराला ऐसे कवि है, जिनकी चिंता शोषित, पीड़ित वर्ग के समीप है । पंत भी अपनी 'अस्पृश्य' नामक एक कविता में अस्पृश्यता को भारत के लिए एक कलंक बताते हैं-

"लिखी नहीं माथे पर जाति

गुण कर्मों से उसकी जाति ।

सब के दो पद हैं दो हस्त

सजातीय हैं मनुज समस्त ।

है उत्थान पतन सर्वत्र

किन्तु नीच उठ सकें न यत्र ।

भारत मस्तक का कलंक यह

[43] विमल थोरात, सूरज बडत्या, भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर, पृष्ठ संख्या-4

जाति पंक्तियों में जन खंडित

जहाँ मनुज, अस्पृश्य चरण रज

शब्द, रहे वह कैसे जीवित ।"[44]

निराला भी शुरू में वर्ण-व्यवस्था के समीप थे । इसका वर्णन कँवल भारती ने इस प्रकार किया है कि "वे आरम्भ में वर्णव्यवस्था के कट्टर समर्थक थे और संतराम, बी.ए. के 'जात पाँत तोड़क मंडल के विरोधी थे । वे अंतरजातीय विवाह के खिलाफ थे । लेकिन बाद में उनके विचारों में परिवर्तन आया था । वे दलितों की शिक्षा का समर्थन करने लगे थे और 'चतुरी चमार' जैसी कुछ रचनाएँ भी उन्होंने लिखी थीं । बावजूद वे हिन्दू धारा के ही लेखक और विचारक रहे । वर्ण-व्यवस्था के उन्मूलन की बात उन्होंने कभी नहीं कही तथा वेदान्त और सामंती मूल्यों के कवि तुलसीदास के प्रभाव से वे कभी मुक्त नहीं हुए थे । उनमें हिन्दू समाज में सुधार की आकांक्षा तो थी, परन्तु एक क्रांतिकारी दलित विमर्श उनमें नहीं था ।"[45]

वर्ण-व्यवस्था का प्रभाव होने के कारण ही उनकी कविताओं में भी भक्ति, करूणा और दीनता दिखाई देती है-

"दलित जन पर करो करुणा ।

दीनता पर उतर आए

प्रभु तुम्हारी शक्ति अरुणा ।

* * *

[44] माता प्रसाद, हिन्दी काव्य में दलित काव्य धारा, पृष्ठ संख्या-85

[45] कँवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, पृष्ठ संख्या-118

पार कर जीवन निरंतर

रहे बहती भक्ति वरुणा ।"[46]

1.3.3. प्रगतिवाद युगीन दलित-कविता

प्रगतिवादी युग ही एक ऐसा युग है, जिसमें समाज के शोषित, पीड़ित और सर्वहारा वर्ग का चित्रण किया गया है। कँवल भारती ने लिखा है कि "हिंदी में प्रगतिशील या प्रगतिवाद साहित्य का उदय 1930 के दशक में हुआ। उसका विधिवत् नामकरण 1936 में हुआ, जब वामपंथी लेखकों ने 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना की। लेकिन प्रेमचंद ने इसकी स्थापना से पहले सामाजिक यथार्थ की कहानियाँ लिखनी आरम्भ कर दी थीं। हालाँकि वे वामपंथी विचार मंचों से नहीं जुड़े थे, लेकिन वे इस मत के थे कि लेखक स्वभाव से ही प्रगतिशील होता है। वे पहले गैर-दलित लेखक भी हैं, जिनकी रचनाओं में हमें दलित समस्या का चित्रण मिलता है।"[47] प्रेमचंद ऐसे लेखक थे जिन्होंने देश में व्याप्त किसान, दलित, स्त्री, शोषित मजदूर की व्यथा को व्यक्त किया है।

यह भी स्पष्ट है कि दलित, शोषित, पीड़ित की आवाज उनके समकालीन डॉ. अम्बेडकर उठा रहे थे। जिससे प्रेमचंद परिचित तो थे, लेकिन वे महात्मा गाँधी के ज्यादा समीप थे। कँवल भारती ने लिखा है कि "प्रेमचंद पर डॉ. अम्बेडकर के दलित-मुक्ति आन्दोलन का बहुत असर पड़ा था, गाँधी जी के अछूतोद्धार कार्यक्रम के समर्थक थे। वे दलितों को हिन्दुओं से पृथक करने के पक्ष में नहीं थे। इसलिए उनकी रचनाओं में दलित विमर्श उस रूप में नहीं है, जिस रूप में अम्बेडकर के दलित आन्दोलन में था।"[48] परन्तु

[46] माता प्रसाद, हिन्दी काव्य में दलित काव्य धारा, पृष्ठ संख्या-85

[47] कँवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, पृष्ठ संख्या-118

[48] कँवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, पृष्ठ संख्या-118

एक तरफ प्रेमचंद महात्मा गाँधी से सहमत थे दूसरी तरफ वे डॉ. अम्बेडकर के आंदोलनों से प्रभावित थे। जिसे इस प्रकार समझ सकते हैं कि "डॉ. अम्बेडकर ने तालाब से पानी लेने और मंदिर में प्रवेश के अधिकार को लेकर सत्याग्रह किए, प्रेमचंद ने उसी से प्रभावित होकर 'ठाकुर का कुआँ' और 'मंदिर' जैसी कहानियाँ लिखी थीं। 'सद्गति' कहानी में उन्होंने दलित के प्रति ब्राह्मणों के घृणित और अमानवीय व्यवहार को उजागर किया है। 'गोदान' में उन्होंने होरी की धार्मिक जड़ता को दिखाया है।"[49] प्रेमचंद निराला के बाद इस युग में अनेक प्रगतिशील कवि हुए हैं। इनकी कविताओं में दलित, शोषित और उत्पीड़ित समाज का चित्रण किया गया है। इस धारा के कुछ प्रमुख कवियों में त्रिलोचन, मुक्तिबोध, धूमिल, नागार्जुन इत्यादि हैं। 'त्रिलोचन' की यह कविता जिसमें साम्राज्यवाद से टकराहट का वर्णन है। "त्रिलोचन की कविता में दलित पूंजीवाद से लड़ने के लिए बढ़ रहे हैं-

"साम्राज्य और पूंजीवादी

लिए हुए अपनी बरबादी

जोर आजमाई करते हैं

आज तोड़ने का गढ़

उठकर दलित समाज चला है।"[50]

इस सन्दर्भ में कँवल भारती ने प्रगतिशील धारा के प्रमुख कवि 'मुक्तिबोध' का उल्लेख इस प्रकार किया है कि "मुक्तिबोध दलित-शोषित वर्ग से यह कहते हैं-

---

[49] कँवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, पृष्ठ संख्या-118

[50] कँवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, पृष्ठ संख्या-120

तुम्हारे पास हमारे पास/सिर्फ एक चीज है

ईमान का झंडा है/बुद्धि का बल्लम है

अभय की गैंती है/हृदय की तगारी तसला है

नए-नए बनाने के लिए भवन

आत्मा के मनुष्य के।"[51]

प्रगतिशील कवि दलित, किसान, मजदूर और सामाजिक असमानताओं के विरोधी रहे हैं। इनके ऊपर मार्क्सवाद का प्रभाव अधिक है, जो दलित कविता के समान होते हुए भी उससे भिन्न है। इसका कारण है कि दलित कविता अम्बेडकरवाद की हिमायती है, जिसमें वर्ण-व्यवस्था के लिए कोई जगह नहीं। लेकिन प्रगतिशील कवियों के पास जहाँ एक तरफ साम्राज्यवाद का विरोध है वहीं दूसरी तरफ वर्ण व्यवस्था के प्रति नरमी है। 'नागार्जुन' की निम्नलिखित कविता में इन सवालों के जवाब मिल जाते हैं-

"ऐसा तो कभी नहीं हुआ था कि

एक नहीं, दो नहीं, तीन नहीं, तेरह के तेरह

अभागे-अकिंचन मनुपुत्र

जिन्दगी झोंक दिए गए हो प्रचंड अग्नि की विकराल लपटों में

साधन संपन्न ऊँची जातियों वाले सौ-सौ मनुपुत्रों द्वारा

किरोसिन के कनस्तर, मोटे-मोटे लक्कड़, उपले के ढेर,

[51] कँवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, पृष्ठ संख्या-120

और एक विराट चताकुंड के लिए खोदा गया

हो गड्ढा हँस-हँस कर

और ऊँची जातियों वाली समूची आबादी

आ गई हो होली वाले 'सुपरमौज' के मूड में।"[52]

1.3.4 प्रयोगवाद/ साठोत्तरी युग की दलित-कविता

प्रयोगवाद की शुरूआत 1943 ई. से मानी जाती है। इस युग के कवियों को 'राहों का अन्वेषी कवि' कहा जाता है। प्रयोगवाद को छायावाद और प्रगतिवाद की प्रतिक्रिया के रूप में देखा जाता है। इस युग के कवि परम्परा से हटकर नई भाषा और नए शिल्प गढ़ते हैं।

इस नए स्वरूप को 'तारसप्तक' के लिए चुने हुए कवियों के माध्यम से देखा जा सकता है, जिसके संपादक 'अज्ञेय' हैं। उन्होंने स्वयं 'तारसप्तक' के विषय में अपनी राय व्यक्त की है, जिसका उल्लेख रेवतीरमण ने इस प्रकार किया है कि "अज्ञेय ने जिसे 'राहों का अन्वेषी' कहा और जिसकी उपमा 'मोती खोजने वाला गोताखोर' से की है जो सत्य को प्राप्त करने के लिए समुद्र की अतल गहराई में जाने का जोखिम उठाता है वह वस्तुत: एक राजनीतिक निरपेक्ष मनोगत संघर्ष तक सीमित है। प्रयोगवाद सुरक्षित और स्वायत्त कविता रचना की प्रवृत्ति है। उसमें उदात्त का निषेध है और सब कुछ के प्रति एक गंभीर

[52] रजत रानी 'मीनू', नवें दशक में हिन्दी दलित कविता, पृष्ठ संख्या-14

दृष्टिकोण है।"[53] इस नवीनता के बीच 'नई कविता' और साठोत्तरी कविता ने विविध स्वर उद्घाटित किए।

प्रयोगवाद युग में दलित कविता की खास पहचान नहीं थी, फिर भी दलित जीवन की विसंगतियों का चित्रण मिल जाता है। इस विषय में 'मोहनदास नैमिशराय' लिखते हैं कि "हरिवंश राय बच्चन के मतानुसार, यदि समाज में इस तरह का उपेक्षा भाव एवं ऊँच-नीच का भेद बना रहा तो सही मायने में स्वतंत्रता मिलना निरर्थक और मिथ्या है। आज़ादी के बाद का चित्र अंकित करते हुए बच्चन जी लिखते हैं-

अगर विभेद ऊँच-नीच का रहा,
अछूत-छूत भेद जाति ने सहा,
किया मनुष्य और मनुष्य में फरक,
स्वदेश की कटी नहीं,
कुहेलिका।

इसी तरह के कुछ गीत, कविताएँ, प्रयोगवादियों, प्रगतिवादियों तथा जनवादियों द्वारा दलित जीवन की विसंगतियों पर लिखे गए, जिसमें धर्मवीर भारती, अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, प्रभाकर माचवे, रघुवीर सहाय आदि प्रमुख थे।"[54]

[53] प्रो. रेवतीरमण, e-PG PATHSHALA, पृष्ठ संख्या-3, साभार, Access date-25/8/2020, time : 8:28

[54] मोहनदास नैमिशराय, हिन्दी दलित साहित्य, पृष्ठ संख्या-79

'अज्ञेय' ने 'मै वहां हूँ' नामक कविता में में शोषित-पीड़ित, मजदूर, किसान का चित्रण इस प्रकार किया है, जिसमें उपेक्षित समाज के जीवन को महसूस किया जा सकता है-

"दूर दूर दूर मैं वहाँ हूँ
यह नहीं कि मै भागता हूँ
मै सेतु हूँ- जो है और जो होगा दोनों को मिलाता हूँ
मैं हूँ यहाँ हूँ पर सेतु हूँ इसलिए
दूर दूर दूर ...मै वहाँ हूँ
यह जो मिट्टी गोड़ता है,
कोदई खाता है और गेहूँ खिलाता है
उसकी साधना मैं हूँ
यह जो मिट्टी फोड़ता है, मड़िया में रहता है
और महलों को बनाता है
उसी की आस्था मैं हूँ।"[55]

साठ का दशक दलित साहित्य और दलित कविता के लिए महत्त्वपूर्ण है। इस समय साठोत्तरी कविता में व्यवस्था का विद्रोह, लघुमानव, सहज मानव, हताश मानव की चर्चा चल रही थी। उसी समय जगदीश गुप्त का 'शंबूक' लघु काव्य, नरेश मेहता का

[55] Www.Posham.org/mai-waha-hoon…by ageyeya, साभार- 20/05/2020, time-12:00 am

'शबरी', भारत भूषण का 'अग्निलीक' खण्ड काव्य में विचारोत्तेजक विमर्श के लिए कविताएँ लिखी जा रही थीं। नरेश मेहता की 'शबरी' कहती है कि-

"क्या धर्म तत्व से ऊँची है वर्णाश्रम मर्यादा?

तब व्यर्थ तपस्या, पूजन यह गंगा भी शूद्रा।"[56]

छठे दशक में ही और कई पुस्तकों ने हलचल मचा रखीं थीं। 'आदिवंश का डंका' चन्द्रिका प्रसाद 'जिज्ञासु', रामायण-ए-ट्रू-स्टडी, पेरियार ई. वी. रामास्वामी इत्यादि। पहली पुस्तक के विषय में मोहनदास नैमिशराय ने लिखा है कि "उन पुस्तकों में पहली पुस्तक आदिवंश की कथा थी। इसके लेखक चन्द्रिका प्रसाद 'जिज्ञासु' थे। यह छोटी सी पुस्तक वस्तुत: 'सत्य नारायण कथा' से अछूत समाज को स्थान्तरित करने के उद्देश्य से लिखी गई थी। इसमें भूमिका के रूप में कथा को पूर्ण करने की विधि बतलाई गई थी। इस कथा का प्रथम अध्याय था शम्बूक ऋषि अध्याय, दूसरा था सूपा ऋषि एवं एकलव्य अध्याय, तीसरा संत शिरोमणि रैदास अध्याय, पाँचवा लोकमंगल अध्याय।"[57] इस प्रकार साठ का युग दलित चेनता के लिए प्रमुख रहा। इसी समय दलित रचनाकार खुलकर अपनी अनुभूति को व्यक्त करने लगे। 'जिज्ञासु' इसमें प्रमुख थे, इसलिए कई विद्वानों ने इस धारा को चन्द्रिका प्रसाद 'जिज्ञासु' युग कहा है।

मराठी के लेखकों ने हिन्दू धर्म और परम्परा का पुरजोर विरोध किया। इसका उल्लेख कँवल भारती ने इस प्रकार किया है कि "मराठी दलित लेखकों ने हिन्दू धर्म, उसकी आस्थाओं और उसकी परम्पराओं को नकारा। नामदेव ढसाल ने लिखा-तुझ्या ग्रंथाला शिव्या दे तो (मैं तुम्हारे धर्मग्रंथों को गलियाँ देता हूँ) यशवंत मनोहर ने लिखा-त्या

---

[56] कँवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, पृष्ठ संख्या-123

[57] मोहनदास नैमिशराय, हिन्दी दलित साहित्य, पृष्ठ संख्या-81

हरामखोर परंपरांवर भी विध्वंसाचा नांगर धरती (मैं तुम्हारे हरामखोर परम्पराओं पर विध्वंस का हल चलाता हूँ) अरूण काम्बले ने 'हिंदुत्व' को ढोंगी संस्कृति कहा और लिखा तुम्हारी ढोंगी संस्कृति मुक्ति की घोषणाओं की गर्जन की कम्पन से ढह जायेगी- आमच्या मुक्तीच्या घोषणांचे हिल्लोदेतील धड़की तुमच्या' ।"[58]

1.3.5. भारतीय साहित्य

वर्तमान में दलित साहित्य की रचना सभी भाषाओं में हो रही है । विमल थोरात/सूरज बड़त्या ने 'भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर' की प्रस्तावना में लिखा है कि "मराठी के बाद, लगभग पिछले तीन दशकों से आज हिंदी के अलावा तेलुगु, कन्नड़, तमिल, पंजाबी, उड़िया, बंगला, असमी, गुजराती, भोजपुरी और मलयालम में दलित रचनाएँ सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक परिवर्तन के बृहद् उद्देश्य को लेकर प्रचुर मात्रा में लिखी गईं। डॉ. अम्बेडकर की विचार चेतना का स्फुलिंग अब देश के कोने-कोने तक पहुँचकर रचनात्मक पहल के द्वारा सामाजिक, आर्थिक क्रांति के माध्यम से समाज व्यवस्था को बदलना चाहता है-

मैं हारता रहा। इसका यह अर्थ नहीं कि

मैं जीतूँगा ही नहीं। हारना तो

तब होता है। जब युद्ध

समाप्त हो जाय।"[59] (पूरन सिंह)

---

[58] कँवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, पृष्ठ संख्या-124

[59] विमल थोरात/सूरज बड़त्या ने 'भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर', पृष्ठ संख्या-xxii

पूरन सिंह की यह कविता उस शोषण और उत्पीड़ित समाज की ओर इशारा करती हैं, जिसका शिकार दलित समाज सदियों से है। मसलन अस्पृश्यता, अशिक्षा, पाखंड और धर्मान्धता के चलते उन्हें सामाजिक अधिकार से वंचित रखा गया। इस समस्या से दलित रचनाकार आज भी युद्धरत हैं, इसलिए वह इससे मुक्ति के लिए लिख रहा है।

पंजाबी दलित कविता के उदय के विषय में कँवल भारती ने उल्लेख किया है कि "पंजाबी दलित कविता का आरम्भ सही मायने में गुरुदास राम 'आलम' के रचनाकर्म से होता है। वह पंजाबी दलित काव्य चेतना के पुरोधा माने जाते हैं। इनका जन्म 1912 में और निधन अभी हाल में 1989 में हुआ। उनका कविता कर्म पूरी तरह दलित-मजदूर जीवन के प्रति समर्पित था। उन्होंने भी अपने समय की कविता में असंतोष व्यक्त किया था-

क्या लिखते हो किसके लिये लिखते हो

गम्भीरता से सोच

क्या तेरी लेखनी सहायक

किसी कमजोर की या कि बलवान की?"[60]

दलित कविता की विशेषता है कि वह चेतना पर सीधा असर करती है और धार्मिक पाखण्ड पर प्रहार। गुजराती कवि प्रवीण गढ़वी ने लिखा है कि "गुजराती दलित कविता में आधुनिकता बोध सबसे अधिक है। दलितों का मंदिर प्रवेश उनकी दृष्टि में क़त्लगाह में जाकर क़त्ल होना है। प्रवीण गढ़वी की यह कविता-

---

[60] कंवल भारती, दलित निर्वाचित कविताएं, पृष्ठ संख्या-24

मंदिर प्रवेश मत करो दोस्तों

रुक जाओ

उस मंदिर की सीढ़ी पर जहाँ पड़ी है

अपने ही बेटे की खून से सनी लाश

प्रवेश मत करो दोस्तों

रूक जाओ

कत्लगाह में एक भी कदम

मत रखो दोस्तों।"[61]

मराठी के बाद दलित कविता के क्षेत्र में तेलुगु की दलित कविता में दलित चेतना के स्वर गंभीर रूप में उभरकर आए हैं। कँवल भारती ने माना है कि "मराठी कविता के बाद तेलुगु कविता का दूसरा स्थान है। पर एक अर्थ में तेलुगु दलित कविता अग्रणी है। वह है तर्क और विमर्श (बहस) जिसने तेलुगु कविता को नयी संरचना प्रदान की है।"[62] तेलुगु दलित कविता के क्षेत्र में प्रतिष्ठित रचनाकार हैं शिवसागर, शम्बूक, एण्डलूरी सुधाकर, जी, विजय लक्ष्मी, एम वेंकट, जी.वी. रत्नाकर, सतीश चंदर, सलन्ध्रा स्कै बाबा, चित्ती, मददरी नगेश बाबू, चल्ला पल्ली स्वरूपा रानी, कांति पद्माराव इत्यादि, जिन्होंने दलित साहित्य और दलित चेतना को समृद्ध किया है।

[61] कंवल भारती, दलित निर्वाचित कविताएं, पृष्ठ संख्या-27

[62] कंवल भारती, दलित निर्वाचित कविताएं, पृष्ठ संख्या-30

दलित कविता के क्षेत्र में मार्क्स और अम्बेडरवाद का सवाल बहुत गंभीरता से लिया जाता है। इसलिए तेलुगु दलित कविता इससे अछूती कैसे रह सकती है। कवि शम्बूक की यह कविता छद्म मार्क्सवादियों के लिए एक करारा जवाब है-

"कामरेड, मुझे उसका दिखाया स्वर्ग नहीं चाहिए

और न ही चाहिए तुम्हारा मुक्ति का मार्ग

कामरेड, मैं तुमसे केवल यही चाहता हूँ

सबसे पहले मुझे अपने प्रयोगों से मुक्त करो

जमींदार अपनी जायदाद छोड़ नहीं सकता

और न ही तुम अपना नेतृत्व।"[63]

1.3.6. मराठी-साहित्य

दलित साहित्य के अन्तर्गत मराठी साहित्य को काफी समृद्ध माना जाता है और यह भी कहा जाता है कि हिंदी दलित सहित्य, मराठी साहित्य की नक़ल है। परन्तु दलित आलोचक कँवल भारती का मानना है कि "दलित साहित्य का उदय हिंदी और मराठी में लगभग एक ही समय हुआ है। हिंदी में चन्द्रिका प्रसाद 'जिज्ञासु' दलित चेतना के साहित्य के प्रवर्तक हैं।"[64] मराठी में यह साहित्य तूफान की तरह आता है जो समाज में व्याप्त पाखंड अन्धविश्वास का पुरजोर विरोध करते हुए समानता के लिए संघर्षरत है। विमल थोरात ने लिखा है कि "मराठी साहित्य की परम्परागत ब्राह्मणवादी रूढ़ियों-

---

[63] कंवल भारती, दलित निर्वाचित कविताएं, पृष्ठ संख्या-31

[64] कँवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, पृष्ठ संख्या-123

रीतियों, मान्यताओं को तोड़ते हुए एक नई मूल्य धारणा तथा काव्यभाषा को लेकर झंझावात की तरह दलित ने मराठी साहित्य में प्रवेश किया है।"[65]

इसका इतिहास हिंदी दलित साहित्य के समान है। "महाराष्ट्र में भक्ति आन्दोलन की शुरूआत 13वीं सदी में होती हैं। एक महानुभाव संप्रदाय और दूसरा चारकरी संप्रदाय। इसी चारकरी संप्रदाय में विभिन्न जातियों के सन्तों ने भक्ति और भक्तिपरक रचनाओं से पद् दलित जनता में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया था। इन सन्तों में चोखा मेला (महार), सन्त गोरा (कुम्हार), सेना (नाई), सावता (माली), जनाबाई (दासी) जैसे सन्तों ने भक्ति का आनन्द केवल मंदिर कलश के दर्शन करके ही लिया। इसलिए चोखा मेला की वाणी में अस्पृश्यता की वेदना सर्वत्र दिखाई देती है, लेकिन उनके पुत्र कर्ममेला के स्वर में विद्रोह भी है। यही वेदना और विद्रोह आगे चलकर मराठी दलित साहित्य में अभिव्यक्त हुआ है।"[66] कालांतर में महात्मा फुले और बाबा साहब अम्बेडकर के प्रभाव से दलित साहित्य में आमूल-चूल परिवर्तन आता है। इस सहित्य पर डॉ. अम्बेडकर का 1927 से 1930 के आन्दोलन का काफी प्रभाव पड़ा। महाड सत्याग्रह, कालाराम मंदिर, मनुस्मृति दहन से जनचेतना पर गहरा प्रभाव पड़ा। जिससे शोषित-पीड़ित जनता का अटूट विश्वास बाबा साहब पर होता गया और दलित समाज को सामाजिक परिवर्तन की नई आस बँधी। इस समय दलित रचनाकारों ने धार्मिक ग्रंथों, पाखंड एवं अन्धविश्वास पर खूब लिखा। दलित रचनकारों की कविताओं ने हिन्दू धार्मिक संस्कारों पर जमकर प्रहार किया। यशवंत मनोहर अपनी कविता में लिखते हैं-

"मैं पोतता हूँ उबलता कोलतार

[65] विमल थोरात, मराठी दलित कविता और साठोत्तरी हिन्दी कविता में सामाजिक और राजनीतिक चेतना,
पृष्ठ संख्या-1

[66] डॉ. एन सिंह, दलित साहित्य के प्रतिमान, पृष्ठ संख्या-88

तुम्हारे आस्तिकतावादी देवता के मुँह पर,

देवता को खड़ा करने वालों के षड़यंत्रकारी शब्दों पर ।"[67]

धार्मिक ग्रन्थ, गीता, मनुस्मृति और अन्य ग्रंथों पर मराठी दलित रचनाकारों ने जमकर प्रहार किया, जिससे भारतीय अस्मितावादी संस्कृति की नींव हिल गई। "भारतीय आस्तिकवादी संस्कृति एवं उसको सुदृढ़ करने वाली 'गीता' एवं 'मनुस्मृति' की हेय बनाने वाली समाज व्यवस्था को नकारते हुए नामदेव ढसाल गालियों पर उतरकर आवेश में टूट पड़ते हैं-

"मेरी नजर से तुम पूरे उतर चुके हो,

तुम्हारे लिए मुझमें न आदर है न गुणगान करने की इच्छा।

लगता है पान खाकर तुम पर ढेर सारा थूक दूं

ढूबो दूं विष्ठा के मटके में।

मै तुम्हें गलियाँ देता हूँ।

तुम्हारे पाखण्डीपन को गालियां देता हूँ।"[68]

शरण कुमार लिम्बाले का मानना है कि "सत्यं, शिवं और सुन्दरम्' ये भेदभाव की कल्पनाएँ हैं-जिसके आधार पर आम आदमी का शोषण हुआ है। दरअसल सत्यं, शिवं और सुन्दरम् की धारणा तो सवर्ण समाज के स्वार्थ-साधन के लिए रची गई साजिश है। उसकी परिभाषा बदलने की जरूरत है। उन्हें और ऐहिक और सामाजिक करने की आवश्यकता है।

[67] प्रो. कालीचरण स्नेही, दलित-विमर्श और हिन्दी दलित काव्य, पृष्ठ संख्या-84

[68] प्रो. कालीचरण स्नेही, दलित-विमर्श और हिन्दी दलित काव्य, पृष्ठ संख्या-85

"मनुष्य सर्वप्रथम मनुष्य है यही 'सत्य' है।

मनुष्य की स्वतंत्रता ही 'शिव' है।

मनुष्य की मनुष्यता ही 'सौन्दर्य' है।"[69]

मराठी दलित साहित्य के प्रमुख रचनाकार हैं- "दया पवार, बाबूराव बागुल, अर्जुन डांगले, राजा ढाले, सतीश, कालसेकर, लक्ष्मण गायकवाड, शरण कुमार लिम्बाले, किशोर काले, वसन्त मून, नरेन्द्र जाधव, नामदेव ढसाल, वामन निबालकर, नामदेव कांवले, डॉ. कुमार अनिल, वामन होवाल, योगिराज बाघमरे, केशव मेश्राम, प्रज्ञा लोखंड, हिरा बनसोडे, गंगाधर पाणतावणे, बागूल, भुजंग मेश्राम, दीनानाथ मनोहर इत्यादि ।"[70]

1.3.7. समकालीन दलित कविता

19 वीं सदी में यह देश ब्रिटिश हुकूमत के कब्जे में था। इसलिए पूरा देश 'गुलामी' से आजादी चाहता था, जिसके लिए यहाँ की जनता विगत कई वर्षों से संघर्ष कर रही थी। अन्तत: 15 अगस्त 1947 को यह देश आजाद हुआ, जिससे देश के नागरिकों ने खुले में साँस ली। परन्तु दलित समाज की स्थिति आजादी के बाद भी पूर्ववत बनी रही है। जिसे 19 सदीं के बाद की दलित कविता ने बखूबी चित्रित किया है।

आधुनिक दलित कविता की नींव ठीक उसी समय पड़ी, जब देश में आजादी की लड़ाई लड़ी जा रही थी। एक तरफ हीराडोम और अछूतानंद दलित कविता लिख रहे थे, दूसरी तरफ डॉ. अम्बेडकर बड़े सूझबूझ से दलितों के अन्दर जन-चेतना का संचार कर रहे थे। 20 वीं सदी के प्रारम्भिक चरण में दलित कविता की पृष्ठभूमि निर्माण में सर्वप्रथम

[69] शरण कुमार लिम्बाले, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या-33

[70] हरिनारायण ठाकुर, दलित साहित्य का समाजशास्त्र, पृष्ठ संख्या-395

'हीराडोम और अछूतानंद 'हरिहर' का नाम लिया जाता है। इन दोनों में 'हीराडोम' द्वारा लिखित 'अछूत की शिकायत' को प्रथम दलित कविता माना जाता है। इसका उल्लेख हरिनारायण ठाकुर ने इस प्रकार किया है कि "भला हो महावीर प्रसाद द्विवेदी का, जिन्होंने चाहे जैसे छापी, यह कविता सितम्बर 1914 की 'सरस्वती' में छपी थी। फिर यह कविता ही हीराडोम का इतिहास बन गयी। इसमें जाहिर है की भारतीय समाज खासकर हिन्दू समाज से हीराडोम ने अछूतों की दुर्दशा की शिकायत की है। बड़े ही कातर स्वर में हीराडोम ने दलितों की दीन-हीन दशा का हाल सुनाया है। इसमें वर्णित यथार्थ भारतीय समाज में दलित जीवन का नंगा यथार्थ है।"[71] वास्तव में इस कविता में बहुत बड़ा सवाल उठाया गया है। जिसे दुनिया प्रजापालक मानती है। जिसने द्रोपदी और प्रह्लाद को बचाने के लिए अवतार लिया। वह हमारा दर्द क्यों नहीं सुनता है? जबकि हम अपने पसीने की कमाई खाते हैं, फिर भी सुकून नहीं पाते। कविता ने जातिवाद पर बहुत बड़ा प्रश्न चिन्ह लगाया है और कहा कि डोम जानकर वह भी हमको छूने से डरता है।

इसका उल्लेख रजत रानी 'मीनू' ने इस प्रकार किया है- "'सरस्वती' पत्रिका में 'हीराडोम' की दलित कविता प्रकाशित हुई। डॉ. मैनेजर पाण्डेय के मत से यह 1914 में छपी। एम. आर. विद्रोही के अनुसार यह 1916 में छपी। मैनेजर पाण्डेय इसे दलित चेतना की पहली कविता मानते हैं। इसी सन्दर्भ में वह एक मत कायम करते हैं कि 'प्रमाणिक चेतना की अभिव्यक्ति दलित ही कर सकता हैं।"[72] दलित समाज जैसा जीवन जीता है इनकी कविताओं में वही आत्मानुभव दिखाई देता है। ऐसी व्यथा किसी एक की नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण दलित समाज की है। जिन्हें सुनने वाला भगवान भी नहीं है। कविता से स्पष्ट हो जाता है कि ऐसी व्यवस्था स्वनिर्मित है। इसे पढ़ने के बाद

---

[71] हरिनारायण ठाकुर, दलित साहित्य का समाजशास्त्र, पृष्ठ संख्या-403

[72] रजत रानी मीनू, नवें दशक की हिन्दी दलित कविता, पृष्ठ संख्या-12

संवेदनशील व्यक्ति बेचैन हुए बिना नहीं रहता है। 'अछूत की शिकायत' कविता के विषय में मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है कि 'अछूत की शिकायत' आधुनिक चेतना की कविता है, इसमें मध्यकाल के सन्तों की तरह जाति व्यवस्था के शिकंजे से छुटकारा पाने के लिए न संत बनने की आकांक्षा है और न लोक के दुःख के बदले परलोक में सुख पाने की चिंता है। यहाँ कवि हिन्दू धर्म और हिन्दू धर्म के भगवान से निराश ही नहीं नाराज भी है इसलिए वह कहता है-

हमनी के दुःख भगवनओ न देखताटे

हमनी के कबले कलेसवा उठाइबि।"[73]

यह कविता इसीलिए दलित कविता की आधार स्तम्भ बनती है, क्योंकि इसमें अपने समाज की पीड़ा है और धर्म के रक्षकों को फटकार है। कवि ने भगवान से सवाल किया है कि तू भी मुझे छूने से डरता है। इस तरह के तार्किक प्रश्नों ने चले आ रही परम्परागत कविता के सामने चुनौती खड़ी की, जिससे दलित कविता का आगाज हुआ। अपनी बात को अपनी भाषा और अपनी अनुभूति में कहकर सबको चौंका दिया।

ऐसा ही आक्रोश अछूतानन्द की कविताओं में दिखता है, जिसका उल्लेख हरिनारायण ठाकुर ने किया है "अछूतानन्द' ने अपनी कविताओं में वर्ण-व्यवस्था की तीखी आलोचना की है। उन्होंने अपने गीत और गजलों द्वारा 'मनु' और मनुवादी व्यवस्था की खिल्लियाँ उड़ायी हैं। अपनी कविताओं में दलितों के गौरवपूर्ण इतिहास की याद करते हुए स्वामी ने उन्हें सतर्क और सावधान किया है। आत्म-हीनता की भावना को त्यागकर दलितों को सीना तानकर जीने की प्रेरणा देते हैं। इन्हीं भावों को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने 'जागरण आदि अन्य गीत भी गाये। हिन्दू-वंश का गौरव दिखाते हुए स्वामी

[73] मैनेजर पाण्डेय, दलित साहित्य और दलित दृष्टि, संपा. सर्वेश कुमार मौर्य, पृष्ठ संख्या-158

जी ने 'थियेटर ध्वनि' कविता लिखी। इस कविता द्वारा स्वामी जी ने तत्कालीन समय और समाज का चित्रण करते हुए दलित जीवन का जो मार्मिक और यथार्थ चित्र खींचा है, वह स्वयं स्पष्ट है-

मनुजी तुमने वर्ण बना दिए चार।

जा दिन तुमने वर्ण बनाये, न्यारे रंग बनाये क्यों ना

गोरे ब्राह्मण लाल क्षत्रिय बनिया पीले बनाये क्यों ना

शूद्र बनाते काले वर्ण के, पीछे को पैर लगाये क्यों न?"[74]

इसका मतलब यह है कि जिस ईश्वर की कल्पना की जाती है, उसने अलग-अलग पैदा नहीं किया। अगर उसे अलग करना होता तो पैदा करने से पहले ही रूप, रंग आकार आदि में भिन्नता करता। परन्तु उसने सबको समान बनाया, लेकिन जड़ मानसिकता वाले आज भी इसे मानने को तैयार नहीं हैं।

इस प्रकार अनेक सन्तों, लेखकों, प्रगतिशील लोगों ने वैज्ञानिक और तार्किक ढंग से अपनी बात रखी है। यही कारण है कि अब असमानता का विरोध पूरे तेवर के साथ दलित रचनाकार कर रहे हैं। यह परिवर्तन लाने का सबसे बड़ा श्रेय डॉ. अम्बेडकर को जाता है, जिन्होंने सुस्त पड़ चुकी नसों में जान डाली। दलित साहित्य में डॉ. अम्बेडकर के प्रभाव को समझने के लिए ओमप्रकाश वाल्मीकि का यह कथन काफी है "दलित साहित्य का वैचारिक आधार डॉ. आंबेडकर का जीवन-संघर्ष एवं ज्योतिबा फुले और बुद्ध का दर्शन, उसकी दार्शनिकता का आधार है। सभी दलित रचनाकार इन बिन्दुओं पर

---

[74] हरिनारायण ठाकुर, दलित साहित्य का समाजशास्त्र, पृष्ठ संख्या-405-406

एकमत हैं कि ज्योतिबा फुले ने स्वयं क्रियाशील रहकर सामंती मूल्यों और सामाजिक गुलामी के विरोध का स्वर तेज किया था।

ब्राह्मणवादी सोच और वर्चस्व या प्रभुत्त्व के विरोध में उन्होंने आन्दोलन खड़ा किया था। यही कारण कि जहाँ रचनाकारों ने ज्योतिबा फुले को अपना विशिष्ट प्रचारक माना है वहीं डॉ. आंबेडकर को अपना शक्तिपुंज स्वीकार किया है।"[75] वास्तव में डॉ. आंबेडकर दलित समाज के लिए शक्ति बने। उनके द्वारा दिया गया मूलमंत्र "शिक्षित बनो, संगठित बनो, संघर्ष करो" से लोगों के अन्दर जन-चेतना का संचार हुआ। साथ ही वे अपनी अस्मिता की सुरक्षा और सम्मान के लिए तत्पर हुए। दलित कविता का जो रूप नाथों, सिद्धों से मिला था। उसमें अम्बेडकरवाद के बाद आक्रोश, तेवर और आक्रामता दिखने लगी क्योंकि अब दलित कवि स्वयं अपनी अभिव्यक्ति करने लगे। तब कुछ गैर-दलित साहित्यकार की खोज हुई जो दलित मुद्दों पर लिख रहे थे। आर. सी. प्रसाद सिंह, राष्ट्र कवि सोहन लाल द्विवेदी, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' सुभद्रा कुमारी चौहान, गयाप्रसाद शुक्ल आदि ने दलित मुद्दों पर थोड़ा-बहुत लिखा है। परन्तु ये सब डॉ. अम्बेडकर से अपरिचित थे "इस धारा में महात्मा गाँधी दलितों के मसीहा के रूप में तो आते हैं। डॉ. अम्बेडकर इस धारा के साहित्य से आदि से अंत तक अनुपस्थित हैं।"[76]

किन्तु वर्तमान दलित साहित्य डॉ. अम्बेडकर के विचारों के आधार पर टिका है, जिसे कई भाषाओं में रचा जा रहा है। उनका प्रभाव दलितों और दलित साहित्य पर कई तरह से पड़ा है, उनमें से एक 'धर्म परिवर्तन' भी है। सन 1956 में उनके साथ लाखों लोगों ने हिन्दू धर्म का परित्याग कर बौद्धधर्म ग्रहण किया था। इससे दलितों के अन्दर मनोवैज्ञानिक शक्ति का संचार हुआ। अभय कुमार दुबे ने लिखा है कि "इतिहास में मोटे

---

[75] ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या-53

[76] कँवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, पृष्ठ संख्या-114

तौर पर इतना दर्ज है कि उस दिन अस्पृश्यता के शिकार लाखों हिन्दू बौद्ध बन गए। लेकिन दलित चेतना के लिए तो वह मनोवैज्ञानिक मुक्ति का क्षण था जिसकी मदद से उस समुदाय का एक उल्लेखनीय अंश दरवाजा पार करने के लिए लंबी छलाँग लगा सका।"[77]

दलित कविता हो या अन्य साहित्यिक, सामाजिक गतिविधियाँ वह अम्बेडकरवादी सिद्धांतों पर चलती हैं। इसके केंद्र में मानव मुक्ति, समानता और भाईचारा है, लेकिन पूंजीवाद, ब्राह्मणवाद, असमानता के प्रति आक्रोश है। सन साठ के दशक आते-आते दलित साहित्य की पृष्ठभूमि में आमूल-चूल परिवर्तन दिखाई दिया, तब इसके उदय, अस्तित्व और विचारधारा पर सवाल उठे। इस विषय पर कँवल भारती ने लिखा है कि "कहा जाता है कि पहले यह मराठी में आया, पर ऐसा नहीं है। दलित साहित्य का उदय हिंदी और मराठी में लगभग एक ही समय हुआ है। हिंदी में साठ के दशक में चन्द्रिका प्रसाद जिज्ञासु दलित चेतना साहित्य के प्रवर्तक हैं। इसकी शुरूआत भी कविता से हुई। कविता और गद्य में दलित चेतना की बेहतरीन पुस्तकें इसी समय प्रकाशित हुई, चन्द्रिका प्रसाद जिज्ञासु, ललई सिंह यादव, डॉ. अंगने लाल, सुन्दर लाल सागर, डॉ. डी. आर जाटव, रजनीकांत शास्त्री, मंगलदेव विशारद, रामस्वरूप वर्मा, खेमचंद्र सौगत, लालचंद्र राही, बदलू राम रसिक आदि लेखकों की पुस्तकों के साथ-साथ डॉ. अम्बेडकर, भदंत आनन्द कोसल्यायन, राहुल सांकृत्यायन, अछूतानन्द और रामस्वामी पेरियार नायकर की क्रांतिकारी पुस्तकों का प्रकाशन हुआ। इस साहित्य को यद्यपि 'दलित साहित्य' का नाम अभी नहीं मिला था, पर इन लेखकों ने एक सशक्त दलित विमर्श उभारा था।"[78]

---

[77] अभय कुमार दुबे, साहित्य में अनामंत्रित, पृष्ठ संख्या-117
[78] कँवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, पृष्ठ संख्या-123

दलित कविता की पृष्ठभूमि का निर्माण अचानक नहीं हुआ । इसके निर्माण के लिए बहुत दिनों तक संघर्ष होता रहा है । डॉ. एन. सिंह के अनुसार “हिंदी दलित कविता की शुरूआत सही मायनें में उन्नीसवीं सदी के आठवें दशक में हुई । इसकी प्रेरक डॉ. आंबेडकर की विचारधारा तो थी ही, महात्मा फुले का संघर्ष, मार्क्स की क्रांति दृष्टि और अश्वेतों द्वारा लिखा गया ब्लैक लिटरेचर भी था । इसके प्रारंभिक दौर में हम माता प्रसाद और डॉ. शिरोमणि होरिल जैसे कवियों के सृजन को देख सकते हैं ।”[79]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि हिंदी दलित कविता की पृष्ठभूमि के निर्माण का इतिहास बहुत पुराना है । इसमें प्रतिरोध है तो वह समानता के लिए है । परम्परागत सौन्दर्य का खंडन है तो पूरे तर्क के साथ है । जिस पर सबसे अधिक प्रभाव डॉ. अम्बेडकर की इस साहित्यिक प्रवृत्ति का है कि “अपनी साहित्य की रचनाओं में उदात्त जीवन मूल्यों को परिष्कृत कीजिए । अपना लक्ष्य सीमित मत रखो । अपनी कलम की रोशनी को इस तरह से परवर्तित कीजिए कि गाँव, देहातों का अँधेरा दूर हो । यह मत भूलिए कि अपने देश में दलितों और उपेक्षितों की दुनिया बहुत बड़ी है । उसकी पीड़ा और व्यथा को भली-भाँति जान लीजिए और अपने साहित्य द्वारा उनके जीवन को उन्नत करने का प्रयास कीजिए । इसमें सच्ची मानवता निहित है । बाबासाहब का साहित्यिक विचार मानवतावाद पर आधारित है ।”[80]

1980 के बाद दलित कविता का अद्भुत विस्तार हुआ, जिसमें परम्परा से भिन्न अम्बेडकरवादी चेतना पर आधारित कविताएँ लिखी जा रही हैं । जिसके प्रमुख हस्ताक्षर ओमप्रकाश वाल्मीकि, मलखान सिंह, जय प्रकाश कर्दम, मोहनदास नैमिशराय, श्यौराज सिंह ‘बेचैन’ सुशीला टाकभौरे, रजनी तिलक, रजतरानी ‘मीनू’ आदि हैं । इनकी

[79] प्रणव कुमार बंदोपाध्याय, दलित प्रसंग, पृष्ठ संख्या-64

[80] शरणकुमार लिम्बाले, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या-58

कविताएँ गैर-दलित कवियों से ही भिन्न नहीं है, बल्कि दलित कवियों के शुरुआती स्वरूपों से भी भिन्न हैं। इनके पास अपने सवाल और मानदंड है। कँवल भारती ने इस विषय में लिखा है कि “हिंदी दलित कवियों ने भी इसी विमर्श को आगे बढ़ाया है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने पूछा-

‘यदि तुम्हें तेज बहाव में उल्टा बहना पड़े

दर्द का दरवाजा खोलकर भूख से जूझना पड़े

भेजना पड़े नयी-नवेली दुल्हन को

पहली रात ठाकुर की हवेली

तब तुम क्या करोगे?

डॉ. धर्मवीर ने लिखा है कि–

वर्ण निठल्लों के अधिकार चले आ रहे हैं

जातियाँ मूर्खों की सम्पति घोषित हैं।

अस्पृश्यता प्रमादियों का पहला बचाव है।

निस्संदेह दलित कविता में वर्ण व्यवस्था के खिलाफ आक्रोश और विद्रोह है। उसकी जाति चेतना एक ऐसे समाज की वाहक है, जो स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व पर आधारित है।”[81]

---

[81] कँवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, पृष्ठ संख्या-125

1.4 हिंदी दलित कविता की परिभाषा और स्वरूप

1.4.1 'दलित' शब्द की परिभाषा

दलित समाज पीढ़ी-दर-पीढ़ी उपेक्षा का शिकार होता रहा है । जिन्हें पहले 'अस्पृश्य', 'चाण्डाल', 'अछूत' आदि नामों से पहचाना जाता था। वह आधुनिक काल में 'डिप्रेस क्लास', 'हरिजन', 'अनुसूचित जाति', और 'दलित' कहा जाता है। 'दलित' शब्द एक ऐसा शब्द है जो उपेक्षित जातियों की आवाज बन चुका है। परन्तु इस विषय में विद्वानों की अलग-अलग राय है। जिनमें कुछ का यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है।

ओम प्रकाश वाल्मीकि 'दलित' शब्द का अर्थ बताते हैं कि- "जिसका दलन और दमन हुआ है, दबाया गया है, उत्पीड़ित, शोषित सताया हुआ, गिराया हुआ, उपेक्षित, घृणित, रौंदा हुआ, मसला हुआ, कुचला हुआ, विनष्ट, मर्दित, पस्त हिम्मत, हतोत्साहित, वंचित आदि ।"[82] डॉ. श्यौराज सिंह 'बेचैन' के मत से "दलित वह है जिसे भारतीय संविधान में अनुसूचित जाति का दर्जा दिया है ।"[83]

कँवल भारती के अनुसार- "दलित वह है जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया गया है। जिसे कठोर और गंदे कार्य करने के लिए बाध्य किया गया है। जिसे शिक्षा ग्रहण करने और स्वतंत्र व्यवसाय करने से मना किया गया और जिस पर सछूतों ने सामाजिक निर्योग्यताओं की संहिता लागू की, वही और वही दलित है, और इसके अंतर्गत वही जातियाँ आती हैं, जिन्हें अनुसूचित जातियाँ कहा जाता है ।"[84]

---

[82] ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र ,पृष्ठ संख्या-13

[83] ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र , पृष्ठ संख्या-13

[84] ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र , पृष्ठ संख्या-13

मोहनदास नैमीशराय ''दलित' शब्द को और अधिक विस्तार देते हुए कहते हैं कि दलित शब्द मार्क्स प्रणीत सर्वहारा शब्द के लिए समानार्थी लगता है। लेकिन इन दोनों शब्दों में पर्याप्त भेद भी है। दलित की व्याप्ति अधिक है, तो सर्वहारा की सीमित। दलित के अंतर्गत सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक शोषण का अन्तर्भाव होता है, तो सर्वहारा केवल आर्थिक शोषण तक ही सीमित है। प्रत्येक दलित सर्वहारा के अंतर्गत आ सकता है, लेकिन प्रत्येक सर्वहारा को दलित कहने के लिए बाध्य नहीं हो सकते...अर्थात् सर्वहारा की सीमाओं में आर्थिक विषमता का शिकार वर्ग आता है, जबकि दलित विशेष तौर पर सामाजिक विषमता का शिकार होता है।''[85] इन सभी परिवर्तित-परिस्थितयों के मूल में दलित अस्मिता है, जिन्हें समय-समय पर विभिन्न नामों से परिभाषित किया जाता रहा, परन्तु उन्हें सदैव उन अधिकारों से वंचित रखा गया, जिसकी आवश्यकता जीवन में अधिक है। कँवल भारती की परिभाषा स्पष्ट रूप में रेखांकित करती है कि दलित साहित्य में अधिकतर सवाल तो 'अस्मिता' के लिए ही उठाए गए हैं। वे बार-बार पूछते हैं कि 'मै कौन हूँ' मेरी 'अस्मिता क्या है? इस विषय में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने लिखा है कि ''दलित चेतना का सरोकार इस प्रश्न से बहुत गहरे तक जुड़ा है कि 'मै कौन हूँ? मेरी पहचान क्या है? इसी सवाल से दलित लेखक की रचनाशीलता को ऊर्जा मिलती है।''[86]

इस प्रकार के सवाल नए-नए विमर्श को जन्म देते हैं, जिनसे नए समाज और साहित्य का सृजन होता है। साथ ही परपरागत निराधार ढाँचा ध्वस्त होता है। अधिकार और समानता के लिए संघर्ष तो सदियों पुराना है, परन्तु इसमें वास्तविक मोड़ 19 सदी में आया, जब दलित साहित्यकारों ने लिखना प्रारम्भ किया। इससे पहले दलित कोई कदम

[85] ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र , पृष्ठ संख्या-14

[86] ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र , पृष्ठ संख्या-28

अपनी मर्जी से नहीं उठा सकते थे । यह तभी सम्भव हो सका जब डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर ने दलित मुद्दों को उठाकर नई बहस की शुरूआत की । इसका उल्लेख प्रो. काली चरण 'स्नेही' ने इस प्रकार किया है कि "डॉ. भीमराव आंबेडकर ने अंग्रेजी में 'डिप्रेस्ड' व मराठी में 'बहिष्कृत' तथा 'अस्पृश्य' शब्द जिन लोगों या जिन जातियों के लिए इस्तेमाल किये, मराठी व हिंदी में उन्हें 'दलित' कहा जाता है । इस दायरे में व्यावहारिक रूप से यही लोग अधिक आते हैं, जिन्हें भारतीय संविधान में अनुसूचित जाति का दर्जा दिया गया है ।"[87] अस्पृश्य, अछूत, हरिजन एवं अनेक नामों से होते हुए दलित लेखकों ने खोए हुए सम्मान और अस्मिता को प्राप्त करने के लिए 'दलित' शब्द खुलकर अपनाया। मोहन दास नैमीशराय ने इस विषय में लिखा है कि-

"शब्द चोट करते हैं

जैसे दलित से हरिजन

और हरिजन से दलित

\- - - -

शब्द सिसकते नहीं बोलते हैं,

चोट करते हैं

जैसे दलित से हरिजन

और हरिजन से दलित ।"[88]

---

[87] प्रो. कालीचरण स्नेही, दलित विमर्श और दलित काव्य, पृष्ठ संख्या-25

[88] कँवल भारती, दलित-निर्वाचित कविताएं, पृष्ठ संख्या-117

'दलित' शब्द महज एक शब्द नहीं है, बल्कि यह दलितों की राष्ट्रीय अस्मिता की पहचान कराते हुए संघर्षरत एक ऐसे समुदाय को प्रस्तुत करता है जो सदियों अस्पृश्य रहा। अब जब 21वीं सदी में दलित समाज एकजुट हो रहा है, तब उसे देश के कई न्यायालयों में चुनौती भी दी जा चुकी है। परन्तु साहित्य का काम है, रास्ता दिखाना वह दिखाता रहेगा। अशोक भारती ने लिखा है कि-

"चमड़े को गाँठकर जूता बनाने वाले

पत्थरों को गढ़कर भगवान बनाने वाले

काश तूने एक हथियार गढ़ा होता-

तो आज तू नीच, अछूत 'हरिजन' न होता।"[89]

साहित्य के जितने भी सामाजिक परिवर्तन के आधार खोजे गए थे। उन सभी को धत्ता बताते हुए यह खोज एक न दिन सामाजिक समानता लाने में अवश्य सफल होगी। 'दलित' शब्द ने जिस एकजुटता की मिसाल कायम की है, वह सम्पूर्ण समाज को समानता का राह भी दिखाएगी। समय के साथ-साथ इसकी परिभाषाओं में भी बदलाव आएगा। नामवर सिंह ने लिखा है कि "यह जानी हुई कहानी है कि जब-जब कविता बदलती है, उसके प्रतिमान भी बदलते हैं, पर यह नहीं कि नए प्रतिमान अभी-अभी बनी हुई कविता के लिए होते हैं।"[90]

---

[89] कँवल भारती, दलित-निर्वाचित कविताएं, पृष्ठ संख्या-193

[90] कविता के नए प्रतिमान, नामवर सिंह, पृष्ठ संख्या-29

1.4.2 दलित कविता की परिभाषा

दलित कविता दलित जीवन की यथार्थ कथा है जो एक अलग दुनिया से रूबरू कराती है। यह न तो कल्पना में डूबती है और न ही सौन्दर्य खोजती है। इसके माध्यम से दलित कवि अपनी बात करते हैं, जिसमें उनके जीवन के अनुभव और दलित समाज के अनुभव व्यक्त होते हैं। दलित कवियों की कविता पढ़ते समय संवेदनशील व्यक्ति के सामने विभिन्न प्रकार के चित्र उभरकर सामने आ जाते हैं। जिससे कभी वह क्रोधित हो जाता है तो कभी गहन विचारों में डूब जाता है या कह सकते हैं जो भुक्तभोगी रहता है उसकी आँखें नम हो जाती हैं। इनकी कविताएँ दमित, शोषित, पीड़ित लोगों के अन्दर परम्परागत व्यवस्था के प्रति नकार और विद्रोह का रूप जाग्रत करती हैं और लोगों की बंद आँखें खोलती हैं, उन्हें उनके अधिकारों और आत्म-सम्मान के प्रति सचेत करती हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि के अनुसार "मेरा मानना है कि कविता मात्र आनंद, रस, मनोरंजन के लिए नहीं होती। कविता हमें मनुष्यता के निकट ले जाती है और मन में आशा, परिवर्तन के लिए गहरा विश्वास जगाती है। मानवीय दुर्बलताओं के प्रति सचेत करती है। इसी लिए कहा जाता है कि कविता में संवेदनात्मक अनुभूतियों कि अभिव्यक्ति ज्यादा सशक्त होती है। इस सन्दर्भों में दलित कविता कि भावभूमि अधिक संवेदनशील एवं ज्यादा लोकतान्त्रिक है।"[91] कँवल भारती के अनुसार "दलित कविता जाति और वर्ग-विहीन समाज की स्थापना करने वाली दलितों द्वारा लिखी गयी क्रांतिकारी कविता है।"[92] डॉ. पुरुषोत्तम 'सत्य प्रेमी' ने 'लोकशक्ति की कविता: दलित कविता नामक लेख में लिखा है कि "दलित कविता का आशय उस कविता से है जो संवेदना के धरातल पर मनुष्य से जुड़ती है-उससे संवाद करती है और मनुष्य-मनुष्य को जोड़ती है तथा समता-

---

[91] ओमप्रकाश वाल्मीकि, सदियों का संताप, पृष्ठ संख्या-9

[92] कँवल भारती, दलित कविता का संघर्ष, पृष्ठ संख्या-13

ममता समाज की संरचना के लिए 'हृदय की आँख' होकर मूक माटी की मुखरता प्रदान करती है।"[93]

मराठी लेखक डॉ. गंगाधर पानतावाणे के अनुसार "दलित कविता अस्मिता की खोज का एक प्रभावी प्रयत्न है।"[94] हरपाल सिंह 'अरुष' के अनुसार "कविता पर पर्याप्त विचार किया जाना चाहिए इसलिए जरूरी है क्योंकि कविता ग्राहता, स्वीकार्यता और प्रभावशीलता के नाजुक स्वभाव के कारण संवेदात्मक अभिव्यक्ति का सशक्त कलात्मक माध्यम है। यहाँ पर यह जान लेना बहुत जरूरी है कि दलित काव्य पारम्परिक काव्य की अपेक्षा आगे के स्तर पर जाकर क्रियाशील हो रहा है।"[95]

1.4.3 हिंदी दलित कविता का स्वरूप

दलित साहित्य के अंतर्गत सभी विधाओं में सबसे प्रभावी और लोकप्रिय विधा दलित कविता है, जिसने दलित जीवन और भारतीय समाज की वास्तविक छवि प्रस्तुत की है। दलित कविता का स्वरूप क्या है? यह जानने से पहले यह जरूरी है कि दलित कविता किसे कहते हैं यह जानना बहुत आवश्यक है।

दलित कविता का स्वरूप

दलित कविता आज ऐसे विमर्श के रूप में उभरकर आई है, जिसने परम्परा का खंडन किया है, साथ ही अपनी अलग पहचान बनाई है। इसके अलावा हिंदी साहित्य के विकास में सहायक भी सिद्ध हुई है। अब यह भी कहा जाने लगा है कि साहित्य को एक नया विमर्श मिला, जिसने समाज की सच्चाइयों को उजागर किया।

---

[93] डॉ. एन. सिंह, दलित साहित्य चिंतन के विविध आयाम, पृष्ठ संख्या-130

[94] ओमप्रकाश वाल्मीकि, सदियों का संताप, पृष्ठ संख्या-8

[95] हरपाल सिंह 'अरुष', दलित साहित्य के आधार तत्व, पृष्ठ संख्या-99

दलित साहित्य की झलक हमें संत साहित्य में दिखाई देती है, जिसमें कबीर, रैदास आदि सन्तों का नाम उल्लेखनीय है। आधुनिक दलित कविता का वास्तविक रूप हीराडोम की कविता में मिलता है। इससे पहले, ऐसी वेदना अभिव्यक्त नहीं हुई थी। उन्होंने कविता के माध्यम से अनेक सवाल उठाए हैं जो तार्किक हैं। उन्होंने भगवान को भी कठघरे में खड़ा किया है। उनके बारे में कँवल भारती ने लिखा है कि "हीराडोम उसी काल खंड में ईश्वर को कठघरे में खड़ा कर रहे थे। वह पूछ रहे थे की खम्भा फाड़कर प्रह्लाद को बचाने वाला और कनकी अंगुली पर पर्वत उठाने वाला भगवान अछूतों की क्यों नहीं सुनता? क्या वह भी डोम जान उन्हें छूने से डरता है? यथा

"खम्भवा के फारि प्रहलाद के बचवले जा

ग्राह के मुहें से गजराज के वचवले ।

धोती जुरजोधना कै मइया छोरत रहै,

परगट होके तहाँ कपड़ा लड़वले।

मरले रवनवाँ के पलले ममिखना के,

कानी अंगुरी पै धैके पथरा उठवले।

कहंवा सुतल वाटे सुनत न वाटे अब,

डोमा जानि हमनी के छुए से डेरइले।।"[96]

हीराडोम के ही समकालीन स्वामी अछूतानंद ने 'हिंदी नवजागरण' काल में कविता, नाटक और पत्रकारिता के माध्यम से दलितों के अन्दर चेतना का संचार किया। स्वामी

[96] कँवल भारती, दलित निर्वाचित कविताएं पृष्ठ संख्या, पृष्ठ संख्या-13

जी जन-सभाओं में एक गीत गाया करते थे। जिसका एक अंश यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है-

"जागो जी जागो असली नाम डुबाने वाले।
वंश डुबाने वाले, राज गँवाने वाले।
बन के गुलाम दस्यु नाम धराने वाले।।
गफलत में सोने वाले, अटकी पर रोने वाले।"[97]

इसी परम्परा में केवलानन्द भी थे जिनके विषय में कँवल भारती ने लिखा है कि "अछूतानन्द की परम्परा के दलित कवि केवलानंद ने वर्णव्यवस्था का बहुत ही वैज्ञानिक खंडन करते हुए यह कविता लिखी है–

"ब्राह्मण कहते मुख से पैदा मुक्ख फार फिर आये क्यों ना?
क्षत्री कहते भुजा से पैदा भुजा फार फिर आये क्यों ना।
बनिया कहते उदर से पैदा टुंड़ी में भिल्ल बनाये क्यों ना।
चारो वरण भग द्वारे ही आये कहने में शरमाये क्यों ना।"[98]

जब इस प्रकार के मुद्दों पर दलित लेखक रचना कर रहे थे तब साहित्य में क्या हो रहा था? कँवल भारती ने लिखा कि "जिस समय हिंदी में 'नया क्या है' और कविता क्या है? कि बहस चल रही थी, उस समय दलित कवियों की दूसरी और नई पीढ़ी तैयार हो रही थी। अभिप्राय यह है कि हिंदी में दलित कविता अपने सामाजिक सरोकारों के

[97] कँवल भारती, स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' संचयिता, पृष्ठ संख्या-26
[98] प्रो. कालीचरण स्नेही (संपा), दलित विमर्श और हिन्दी दलित काव्य, पृष्ठ संख्या-01

साथ तब भी थी, जब भद्र कवि बसंत, सामंतों की प्रशस्तियाँ और हिंदुत्व के कवित्व लिख रहे थे। यदि हम 1950 तक की हिंदी कविता को देखें तो वह इसी रास-रंग की कविता नजर आती है। उसमें वसंत की बहार है।

देस देस मैं मचति मंजू मन मादक होरी।

उड़त अबीर गुलाल चोटा सों भरि भरि झोरी।

चारहु ओर घमार चारु चैती धुनि गावत।

उफ मृदंग कर ताल ताल गुहचंग बजावत।।"[99]

उस समय कविता में रास रंग की बातें ज्यादा चल रही थीं। लग रहा था जैसे समाज में कोई समस्या ही न हो। उस समय लालू जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' (1900), महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त 1908, सियाराम शरण गुप्त 1912, जयशंकर प्रसाद 1936 की कविताओं को देखकर लगता है कि तत्कालीन समाज में सामाजिक, आर्थिक समस्याएँ थीं ही नहीं। सब कुछ ठीक-ठाक चल रहा था, जनता खुश थी। परन्तु दलित रचनाकार इसी समय एक खास तरह के विषय और मुद्दों पर कलम चला रहे थे।

दलित साहित्य के विषय में सी.बी. भारती ने लिखा कि "दलित साहित्य काव्यशास्त्रीय पद्धतियों, काव्य चेतनाओं, वर्जनाओं का कोई बंधन नहीं स्वीकार करता। वह प्राच्य व पाश्चात्य सौन्दर्य निरूपण पद्धतियों को नकारता है। दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र महान यूनानी विचारक सुकरात की इन विचारों का अनुगामी है कि 'गोबर से भरी टोकरी भी सुन्दर बन जाती है, या वह अपना सब कुछ उपयोग रखती है। जबकि सुवर्ण ढाल भी असुन्दर है, यदि वह उपयोग की दृष्टि से अपूर्ण है' सुकरात के इस विचार

[99] कँवल भारती, दलित निर्वाचित कविताएं, पृष्ठ संख्या-11

के अनुसार अधिकतम हिंदी साहित्य निरर्थक व अनुपयोगी सिद्ध होता है ।"[100] दलित कविता में परम्परागत सौन्दर्य को खोजना बेईमानी है । इस धारा के कवियों का सौन्दर्य भूखे पेट को भरने के लिए साधन जुटाने में समाहित हो जाता है । वह अपने उपयोग की वस्तुओं में अपना सौन्दर्य देखता है । मजदूरी करते समय प्रयोग की जाने वाली वस्तुओं रापी, कुदाल, फावड़ा, हँसिया आदि उसके लिए सौन्दर्य है ।

प्रो. टी. वी. कट्टीमनी ने इसका उल्लेख 'दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र का समाज विज्ञान' नामक लेख में लिखा है कि "दलित साहित्य की कथावस्तु में न ताजमहल की सुन्दरता है न लाल किले की भव्यता है । मामूली से मामूली गरीब, लाचार, अशिक्षित फटीचर, घर-बार हीन, मूक दलित इस साहित्य का नायक है तथा केन्द्रबिंदु है ।"[101] इस प्रकार जब वे देखते हैं कि पूर्व विद्धानों ने उन्हें सदैव हाशिए पर रखा तब उन्होंने अपनी बात अपनी भाषा में कहनी शुरू की । संदीप जायसवाल ने 'भारतीय दलित काव्य की वास्तविकताएँ' नामक लेख में लिखा है कि "कविता का स्वभाव ही वेदना और पीड़ा में ढला होता है । अत: दलित लेखक कविता जैसी सशक्त विधा से दूरी बनाकर अपनी भावनाओं को कैसे अभिव्यंजित कर पाते । आधुनिक काल में छपाई की सुविधाओं और दलित आन्दोलन के 1960 ई० के आस-पास उभार ने आधुनिक दलित कविता का नया रूप गढ़ा ।"[102]

दलित रचनाकारों के अन्दर से करुण पुकार निकलती है न कि मधुर गान । प्रो. टी. वी. कट्टीमनी द्वारा वर्णित इन पंक्तियों से इसे समझा जा सकता है कि- "यह समझने के

[100] लाल चन्द्रराम, डॉ सर्वेश कुमार मौर्य, दलित साहित्य चिंतन, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, सी. वी भारती, पृष्ठ संख्या-240

[101] अपेक्षा, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, प्रो. टी.वी. कट्टीमनी, जुलाई 2009, पृष्ठ संख्या-10

[102] लाल चन्द्रराम, डॉ सर्वेश कुमार मौर्य, दलित साहित्य चिंतन, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, सी. वी भारती, पृष्ठ संख्या-28

लिए एवं दलित साहित्य की मूल संवेदना का विश्लेष्ण करने के लिए हमें भारतीय समाज विज्ञान का विश्लेषण करना अनिवार्य बन जाता है-

ओ रास्ते में जाने वाले

मुझे गाने को मत कह देना

यह नहीं गाना

है अंतड़ियों की धड़कती आग

जैसी कविता में रचना का यहीं संकेत अभिव्यक्त होता है। रास्ते में जाने वाले कवि से अनुरोध करते हैं कि गाओ, तुम्हारा गाना सुन्दर है, लेकिन कलाकार कहता है यह गाना नहीं है और मैं गा भी नहीं सकता, क्योंकि यह मेरी अंताडियों की अग्नि है, इसलिए मैं गा नहीं पाता, इस तरह गाने के लिए अनुरोध करने वालों को विनयपूर्वक नकार देता है।"[103] दलित कविता में दुःख-दर्द मिलता है न कि आनंद और संगीत। दलित लेखक मुक्ति के लिए लिखते हैं। भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति करते हैं। सूखे पड़ चुके वृक्षों में जान डालते हैं और काठ बन चुके जड़ बुद्धि वालों को फटकारते हैं। यह सब वह समाज में भाईचारा बनाए रखने के लिए करते हैं। पराधीनता को त्यागकर स्वाधीनता के लिए तत्पर दिखाई देते हैं। 'भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर' की प्रस्तावना में विमल थोरात ने लिखा है कि "दलित कवि का यह तेवर संघर्ष के अलाव में पककर आता है, वह जानता है कि अब तक की सहनशीलता और कर्मसिद्धान्त के झूठ से भयभीत दलित वर्ग को दास्यत्व से मुक्ति तब तक नहीं मिल सकती, जब तक वह स्थापित मूल्यों से सीधे नहीं टकराता। बाबा साहेब ने कहा था "गुलाम को जब यह अहसास होगा कि वह गुलाम हैं तो उन बेड़ियों को खुद ही काटकर फेकेंगा।" पंजाबी के

[103] अपेक्षा, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, प्रो. टी. कट्टीमनी, पृष्ठ संख्या-10

सशक्त हस्ताक्षर मदनवीरा ने गुलामी का वह दर्दनाक अहसास और मुक्ति की आकांक्षा की ताकत को घोड़े की प्रतीकात्मक शक्ति के रूप में दर्शायी है–

घोड़े के पास । सिर्फ हां में हिलाने के लिए सिर है

नर्म पीठ है

और दिशाहीन दौड़ के लिए चार टांगे हैं

वह दौड़ता है सवार के हुक्म पर

रूकता है सवार की मर्जी पर

हिनहिनाता है सवार के इशारे पर

बैठता है, कान उठाता है, आंखे खोलता है-सवार की हुंकार पर

घोड़ा नहीं जानता है कि वह पैरों से खोद सकता है धरा

दुलत्तियों से तोड़ सकता है सवार का चेहरा... ।"[104]

दलित कविता के विषय में कहा गया है कि "अभिव्यक्ति में सहज होने पर भी तासीर उत्तेजक है। ये आवेग और आवेश की कवितायें हैं। ज्वलनशीलता इन कविताओं का गुण धर्म है। ये तेजाब में भिगोयी कविताएँ हैं। इन कविताओं को पढ़ते समय जबान जलती है, आँखें सुर्ख हो जाती हैं, मन संताप से भर आता है, सब कुछ नोंच-चोथ देने की तबीयत होती है। मनुष्य को हजारों-हजार सालों से जिस तरह कीलित रहना पड़ा, उसके

[104] विमल थोरात-सूरज बडत्या, भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर, पृष्ठ संख्या-xix

अतीत वर्तमान और आगामी काल को अंधकार से भर दिया गया था। सारी भावनाएँ छीन ली गयी थीं। उन्हें खोज लाने वाले ये अग्निधर्मी कवि हैं।"[105]

बीसवीं शताब्दी में डॉ० अम्बेडकर ऐसे मसीहा बनकर आये, जिन्होंने उन्हें मनुष्यता की पहचान करायी। मानवीय अधिकार शासन-प्रशासन में भगीदारी दिलवाई। जिसका परिणाम यह हुआ कि दलित कविताएँ अपने तेवर के साथ आने लगीं। कँवल भारती लिखते हैं कि "ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताओं का संग्रह 'सदियों का संताप' पूर्ण रूप से दलित चेतना की कविताओं का संग्रह है, जिसने मुख्यधारा के साहित्य में सबसे ज्यादा हलचल मचायी। ये कविताएँ भावुकता से मुक्त हैं। उनमें गंभीर दलित चिंतन और विमर्श है। भाषा और शिल्प के स्तर पर उन्होंने हथौड़ा बजा दिये। उक्त संकलन की पहली कविता 'ठाकुर का कुआँ' में ओम प्रकाश वाल्मीकि ने यह सवाल उठाकर सवर्ण चेतना को झकझोर दिया-

चूल्हा मिट्टी का

मिट्टी तालाब की

तालाब ठाकुर का

- - -

फिर अपना क्या?

गाँव? शहर? देश?"[106]

---

[105] रमणिका गुप्ता, दलित चेतना की कविता, पृष्ठ संख्या-।।।

[106]ओमप्रकाश वाल्मीकि, सदियों का संताप, पृष्ठ संख्या-13

दलित साहित्य स्वतंत्रता, समानता, बंधुता, के लिए लड़ता है । इसीलिए वह यथास्थितिवादी बुद्धिवादियों को फटकारता है, अभिजनवादी कला सौन्दर्य त्यागकर पसीने से लथपथ श्रमिक, मजदूर को केंद्र में रखता है । दलित रचनाकार क्रांति का वास्तविक योद्धा उसे मानता है जो दिन-रात खेतों खलियानों में खपता है । इस सन्दर्भ में मोहनदास नैमिशराय की यह कविता उल्लेखनीय है–

"क्रांति का हथौड़ा

महलों की पुख्ता दीवारों को

भले ही न तोड़ पाए

पर क्रांति की गूँज अभी जिन्दा है

यह सब सुनने के लिए ही

क्रांति का हथौड़ा रुकने न पाए

क्रान्ति मरघटों से नहीं आती

क्रांति मजदूर के बदन के पसीने से फूटती है ।"[107]

मजदूर जो दिन-रात बैलों की तरह काम में जुटा रहता है । वह वास्तव में सबसे बड़ा क्रांतिकारी है । फिर भी पेट भरे लोगों को उनके पसीने से बू आती है, क्योंकि उन्हें मुफ्त में हमेशा भरपेट भोजन मिलता रहा है । अब उस गंध में साथ चलने की चुनौती ये कवि दे रहे हैं । मलखान सिंह की यह कविता चुनौती पेश कर रही है कि एक बार चलकर देख लो-

[107] दलित साहित्य वार्षिकी, जयप्रकाश कर्दम, पृष्ठ संख्या-123

"सुनो ब्राह्मण

हमारे पसीने से

बू आती है तुम्हें

फिर एक दिन अपनी जनानी को

हमारी जनानी के साथ

मैला कमाने भेजो"[108]

इतना ही नहीं दलित लेखक अब समझ चुके हैं कि गुलामी से मुक्ति और समाज में समानता तभी आयेगी, जब ब्राह्मणवाद और पूंजीवाद पूरी तरह से मिट जायेगा । मलखान सिंह की 'सुनो ब्राह्मण' कविता यही सन्देश दे रही है-

"हमारी दासता का सफर

तुम्हारे जन्म से शुरू होता है

और इसका अंत भी

तुम्हारे अंत के साथ होगा ।"[109]

वर्तमान में कई दलित कवि हैं जिन्होंने दलित चेतना को जाग्रत करने का काम किया । जिनमें से कुछ प्रमुख कवि स्वा. ओमप्रकाश वाल्मीकि, स्वा.मलखान सिंह, जयप्रकाश कर्दम, श्यौराज सिंह बेचैन, कँवल भारती, मोहनदास नैमिशराय आदि दलित कवियों ने दलित कविता के माध्यम से अनेक समस्याएँ उठायी हैं ।

[108] मलखान सिंह, सुनो ब्राह्मण, पृष्ठ संख्या-45
[109] मलखान सिंह, सुनो ब्राह्मण, पृष्ठ संख्या-45

अब तक स्त्रियों को जिस समाज ने अधिकार नहीं दिया था, उन्होंने अवसर पाकर बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया है। इन्होंने अपनी भागीदारी सुनिश्चित कराई है। जिनमें से प्रमुख दलित कवयित्रियों सुशीला टाकभौरे, स्वर्गीया रजनी तिलक, रजत रानी 'मीनू', कावेरी, नरेश कुमारी आदि का दलित महिला लेखन में नाम लिया जाता है। अब यह कहा जा सकता है कि दलित कविता अपने निश्चित मुकाम पर पहुँच चुकी है। जिसने साहित्य को पुनर्जीवित किया एवं कविता के स्वरूप का निर्माण कर संवाद की नई चुनौती पेश किया। इसे आनन्द स्वरूप की इस कविता से समझा जा सकता है-

"मैला ढोइए, घूरे पर रोइए, फुटपाथ पर सोइए

आबरू अस्मिता खोइए

गंदे कपड़े धोइए

पशु चराइए, मृतक पशु उठाइए, बाजरे की रोटी खाइए

बाल बनाइए, पालकी उठाइए

शंख नहीं, रामतुला बजाइए

एक बात बताऊँ

समझौता कीजिए

आरक्षण आपस में बदल लीजिए

आप मैला ढोइए, कपड़े धोइए, गन्दगी में खोइए

जूठन खाइए, झाड़ू लगाइए, बाल बनाइए

पालिश कीजिए, फुटपाठ पर सोइए

अपना तिलक, तराजू और जनेऊ दे दीजिए।"[110]

निष्कर्ष

समकालीन दलित कविता जिसने सम्पूर्ण साहित्यिक जगत को प्रभावित किया है। वह अचानक उत्पन्न नहीं हुई, बल्कि इसके पीछे, दलित शोषण का लम्बा इतिहास जुड़ा हुआ है । समाज में व्याप्त श्रेष्ठता, शुद्धता और ब्राह्मणवादी मानसिकता ने ऐसा कुचक्र रचा कि मनुष्य-मनुष्य के बीच भेद उत्पन्न हो गया और वह कालांतर में वर्ण, जाति, वर्ग में बँटकर लड़ता रहा। इस वर्ण-व्यवस्था और जाति व्यवस्था के चलते मनुष्य का एक वर्ग चाण्डाल, अस्पृश्य, अछूत, हरिजन एवं आज का दलित बना, इसलिए इसके ध्वस्त हुए बिना एक 'राष्ट्र का निर्माण' नहीं हो सकता। वह इसलिए भी क्योंकि इससे एक जाति से दूसरी जाति के बीच मतभेद सदियों से होता रहा है । दलित कविता के उत्पत्ति के मूल में इस शोषणवादी इतिहास का प्रतिरोध कर, एक नए समाज के निर्माण का संकल्प है।

हिंदी साहित्य में दलितों की समस्या जैसे, अस्पृश्यता, छुआछूत , ऊँच-नीच को लेकर चर्चा बहुत पहले से होती रही है। आदिकाल में तो 84 'सिद्धों' में 30 'शूद्र' थे। भक्तिकाल में संत साहित्य के अंतर्गत कई संत निम्न जाति के थे जो समाज को स्पष्ट सन्देश दे रहे थे कि-

'वामन मत पूजिये, जऊ होवे गुन हीन,

[110] डॉ. गुणशेखर, दलित साहित्य का स्वरूप विकास और प्रवृत्तियों, पृष्ठ संख्या-189

पूजहिं चरण चांडाल के, जऊ होवे गुन प्रवीन।' (संत रविदास)

इस क्रम में रीतिकाल एक ऐसा काल है। जिसमें मानव समस्या लगभग गायब रही तो दलित समस्या कहाँ दिखाई देगी।

आधुनिक काल में भारतेंदु हरिश्चंद और बदरी नारायण भट्ट एवं द्विवेदी युग में मैथिलीशरण गुप्त, सियाराम शरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' आदि ने दलित समस्या पर लिखा है।

छायावादी युग में पन्त और निराला, प्रगतिवादी युग में प्रगतिशील कवियों ने समाज में व्याप्त सामाजिक असमानताओं पर त्रिलोचन, नागार्जुन, मुक्तिबोध आदि ने शोषित-वर्ग की आवाज उठाई थी। परन्तु साठ-दशक के बाद दलितों द्वारा लिखित दलित कविता में जो चेतना और प्रतिरोध दिखाई देता है, वह उसके पूर्व किसी काल में नहीं।

उसमें भी गैर-दलित कविताओं में परम्परागत ब्राह्मणवादी छाप दिखाई पड़ती है, जबकि दलित कविताओं में इन सब से मुक्ति के लिए लिखा जाता है। इस क्रम में साठ के दशक में जो दलित कविता लिखी गई वह परम्परागत बंधनों को तोड़कर दलित जीवन के यथार्थ से जुड़ी। जिसमें न किसी प्रकार के शास्त्र का बंधन न किसी प्रकार के मिथकीय कल्पना का चित्रण होता है बल्कि समाज के सबसे निचले व्यक्ति की आवाज उठी मनुष्य की उपयोगिता पर बल देता है, न कि सौन्दर्य की।

इस मनुष्यता के मार्ग को सही रास्ता दिखाने वाले प्रमुख विद्वानों में महात्मा गौतम बुद्ध, महात्मा फुले, डॉ. अम्बेडकर के विचारों का पालन किया जाता है। इन महापुरुषों के जीवन-दर्शन को आधार बनाकर वर्तमान में अनगिनत दलित रचनाकार, दलित चेतना को जाग्रत करने के लिए लिख रहे हैं। जिनमें से कुछ प्रमुख कवि

स्व.ओमप्रकाश वाल्मीकि, स्व.मलखान सिंह, जयप्रकाश कर्दम, श्यौराज सिंह बेचैन, कँवल भारती, मोहनदास नैमिशराय एवं दलित कवियत्रियाँ सुशीला टाकभौरे, स्व.रजनी तिलक, रजत रानी 'मीनू', कावेरी, नरेश कुमारी इत्यादि ।

द्वितीय अध्याय

भारतीय आलोचना और हिंदी दलित कविता आलोचना

प्रस्तावना

आलोचना साहित्य का अनिवार्य तत्व है, जिसके माध्यम से किसी कृति या रचना का उचित मूल्यांकन होता है। परन्तु इसके मूल्यांकन-सिद्धांत में, समयानुसार परिवर्तन हुआ है। हिंदी आलोचना का, जो स्वरूप प्रारम्भ में संस्कृत और पाश्चात्य आलोचना से प्रभावित रहा। वह आचार्य रामचंद्र शुक्ल से प्रभावित होकर, शुक्ल युग में नए स्वरूप में स्थापित हुआ। इस प्रकार यह कह सकते हैं कि आलोचना का विकास कई चरणों में युगानुरूप होता रहा है। आलोचना के क्षेत्र में अगर कोई चीज सबसे महत्त्वपूर्ण है, तो वह है 'पाठ' जो विभिन्न युगों में अलग-अलग पाठक और आलोचक तैयार करता है।

दलित साहित्य ने सबसे पहले यही काम किया, इसने परम्परा से भिन्न, साहित्यिक जगत में एक नए पाठ का निर्माण किया, जिसमें परम्परागत विषयों से भिन्न, विषय वस्तुओं का चित्रण हुआ। इन परिवर्तित विषयों से ही साहित्यिक जगत में दलित विमर्श, स्त्री-विमर्श और आदिवासी विमर्श इत्यादि विमर्शों का जन्म हुआ है। इसलिए इसके मूल्यांकन के लिए परम्परागत सौन्दर्यशास्त्र से भिन्न आलोचकीय दृष्टि की आवश्यकता हुई। जिसका अध्ययन और विश्लेषण इस अध्याय में क्रमानुसार किया गया है।

2.1. आलोचना की परिभाषा और स्वरूप

2.1.1. 'आलोचना' शब्द की परिभाषा

'आलोचना' 'लोच्' धातु से बना है- आ+लोच्+अन+आ= आलोचना। लोच् का अर्थ होता है देखना। इसलिए किसी वस्तु या कृति की सम्यक व्याख्या या मूल्यांकन आदि करना ही आलोचना है।"[111]

हिंदी आलोचना के विकास का प्रारम्भिक दौर संस्कृत काव्य शास्त्र और अंग्रेजी की आलोचना का मिश्रण था। "इस शताब्दी के आरंभिक तीन दशकों में आलोचना की तीन प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं: एक प्राचीन संस्कृत काव्यशास्त्र का निरूपण या उस पर आधारित व्याख्यान; दूसरी, पश्चिम की विशेषत: अंग्रेजी प्राप्त समालोचना-सिद्धांत और पद्धतियों का विचार; और तीसरी, इन सिद्धांतों को किसी विशिष्ट रचनाकार की कविता पर घटित करना।"[112]

साहित्य के क्षेत्र में हिंदी आलोचना की स्थापना 1920 के आस-पास होती है। जिसका उल्लेख नामवर सिंह ने 'आलोचना की परम्परा' नामक लेख में इस प्रकार किया है कि "आचार्य रामचंद्र शुक्ल सच्चे अर्थों में हिंदी के पहले आलोचक थे। उनके पहले समीक्षक हुआ करते थे, जो पुस्तकों की समीक्षा या टिप्पणियाँ लिखा करते थे। सच्चे अर्थों में हिंदी की आलोचना 1920 के आस-पास स्थापित हुई थी।"[113]

---

[111] डॉ. अमरनाथ, हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, पृष्ठ-संख्या-66

[112] डॉ. प्रभाकर माचवे, हिन्दी आलोचना का अतीत और वर्तमान, पृष्ठ संख्या-13

[113] नामवर सिंह (संपा) आशीष त्रिपाठी, आलोचना और विचारधारा, पृष्ठ संख्या-141

2.1.2. **आलोचना: भारतीय आलोचकों की दृष्टि में**

आलोचना और समीक्षा आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार "काव्य में रहस्यवाद, चिंतामणि, भाग, 2 पृष्ठ 93 में वे लिखते हैं कि न तो रुचि के स्थान पर विद्वता काम कर सकती है और न विद्वता के स्थान पर रुचि । अत: विद्वता से सम्बन्ध रखने वाली निर्णयात्मक आलोचना (जुडिशियल क्रिटिसिज्म) और रुचि से सम्बन्ध रखने वाली प्रभावात्मक समीक्षा दोनों आवश्यक हैं। एक पुरुष है, दूसरी स्त्री। एक सक्रिय है, दूसरी निष्क्रिय।"[114]

डॉ. श्यामसुन्दरदास के अनुसार "यदि हम साहित्य को जीवन की व्याख्या मानें तो आलोचना को उस व्याख्या की व्याख्या मानना पड़ेगा।"[115]

बाबू गुलाब राय के अनुसार "कवि की कृति का सभी दृष्टियों से आस्वादकर पाठकों को उस प्रकार के आस्वाद में सहायता देना।"[116]

नामवर सिंह के अनुसार "आलोचना एक सहयोगी प्रयास है। वह पंचायत नहीं है और सरपंच नहीं है। आप ऐसे वकील हैं जो बहस के लिए पहल कर सकते हैं। यह वैयक्तिकता भी और सामाजिकता भी है।"[117]

2.1.3. **आलोचना: पाश्चात्य आलोचकों की दृष्टि में**

ड्राइडन के अनुसार आलोचना "परख का मानक या परख की कसौटी"[118] है।

---

[114] डॉ. प्रभाकर माचवे, हिन्दी आलोचना का अतीत और वर्तमान, पृष्ठ संख्या-2

[115] http:// hi.wikipedia.org/ wiki, साभार- अंतिम परिवर्तन, 22 मई 2020, समय 15:25 pm

[116] डॉ. अमरनाथ, हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, पृष्ठ संख्या-67

[117] नामवर सिंह (संपा) आशीष त्रिपाठी, आलोचना और विचारधारा, पृष्ठ संख्या-151

[118] रेने बेलेक, आलोचना की धारणाएं, संपा. और भूमिका, स्टीफन जी. निकोलस, जूनियर, रूपांतरण, इंद्रनाथ मदान, पृष्ठ संख्या-16

ऑस्कर वाइल्ड के अनुसार "दि हाइएस्ट क्रिटिसिज्म इज मोर क्रिएटिव दैन क्रिएशन (सर्वोत्तम आलोचना रचना से अधिक रचनाशील है)"[119]

2.1.4. **हिंदी साहित्य कोश**

'हिंदी साहित्य कोश' में निर्णयात्मक आलोचना के विषय में बताया गया है कि "वह कृतियों की श्रेष्ठता या अश्रेष्ठता के सम्बन्ध में निर्णय देती है । इस निर्णय में वह साहित्य तथा कला सम्बन्धी नियमों से सहायता लेती है किन्तु ये नियम साहित्य और कला के सहज रूप से संबंध न रख बाह्य रूप से आरोपित है ।"[120]

2.1.5. हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली

'हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली' में डॉ. अमरनाथ ने आलोचना के विषय में लिखा है कि "हिंदी आलोचना के आरम्भिक युग में सामान्यत: यह धारणा प्रचलित थी कि आलोचना का अर्थ कृति विशेष का गुण-दोष विवेचन मात्र है । व्युत्पत्तिपरक अर्थ लेने पर भी तात्पर्य में कोई बाधा नहीं पड़ती । इसलिए चिरकाल से आलोचक, कृति विशेष गुण-दोष निर्णय मात्र अपना धर्म समझते रहे, पर आज हिंदी आलोचना का क्षेत्र-विस्तार हो जाने के परिणामस्वरूप 'समीक्षा','आलोचना', 'समालोचना' प्रभृति शब्दों का अर्थ-विस्तार हो गया है ।"[121]

[119] डॉ. प्रभाकर माचवे, हिन्दी आलोचना का अतीत और वर्तमान, पृष्ठ संख्या-2

[120] http:// hi.wikipedia.org/ wiki, साभार- 22 मई 2020, time-11:00 am

[121] डॉ. अमरनाथ, हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, पृष्ठ संख्या-67

2.1.6. हिंदी आलोचना का स्वरूप

हिंदी आलोचना के प्रारम्भिक स्वरूप का निर्माण संस्कृत साहित्य से हुआ है। जबकि वर्तमान में हिंदी आलोचना का स्वरूप समृद्ध है, जिससे साहित्य को देखने और परखने का दृष्टिकोण बदल गया है। आलोचना के इस विकसित स्वरूप का निर्माण एक दिन में नहीं हुआ बल्कि इसका लम्बा इतिहास है। इसे इस प्रकार समझ सकते हैं कि "हिंदी में शुद्ध व्यावहारिक आलोचना का सूत्रपात भारतेंदु युग में, गद्य के विकास के साथ-साथ प्राप्त होता है। इसके पूर्व हिंदी आलोचना के जो रूप प्रचलित थे उसका श्रेय संस्कृत साहित्य को है। रीतिकाल में लक्षण ग्रंथों के प्रणयन की लंबी परम्परा प्राप्त होती है। इसका क्रम हमें संस्कृत साहित्य से प्राप्त होता है। संस्कृत में सैद्धांतिक आलोचना के छह प्रमुख सिद्धांत प्रचलित थे। रस, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि, अलंकार और औचित्य।"[122]

परन्तु भारतेंदु युग में इन सिद्धांतो से इतर आलोचना के नवीन रूप प्राप्त होते हैं। जिसका वर्णन डॉ. अमरनाथ ने इस प्रकार किया है कि "इस प्रकार भारतेंदु काल के आरंभ में हिंदी आलोचना के यही तीन रूप प्राप्त होते हैं। (क) लक्षण-ग्रंथों की रचना और उनके आधार पर अलंकार आदि का उदाहरण प्रस्तुत करना। (ख) टीका-पद्धति और उसमें कवि के विषय में प्रशंसात्मक उक्तियाँ। (ग) सूक्तियों के रूप में कवि से सम्बंधित उक्तियाँ।"[123] इस प्रकार आलोचना के क्षेत्र में समयानुसार नए-नए अनुसन्धान हुए और यह रचना, पाठक और लेखक को मार्ग दिखाने वाला विषय सिद्ध हुआ। जिसका प्रभाव आगे चलकर हिंदी साहित्य में दिखाई देता है।

कालांतर में आलोचना के अंतर्गत नए-नए विषय समाहित हुए, जिसमें पत्र-पत्रिकाओं की समीक्षा, पुस्तक समीक्षा, तुलनात्मक आलोचना, कृति की महत्ता,

[122] डॉ. अमरनाथ, हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, पृष्ठ संख्या-67
[123] डॉ. अमरनाथ, हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, पृष्ठ संख्या-68

कृतिकार की श्रेष्ठता आदि रूप दिखाई देते हैं। परन्तु हिंदी आलोचना की प्रौढ़ शुरूआत आचार्य शुक्ल से ही होती है। "आचार्य रामचंद्र शुक्ल की आलोचना को दो रूपों में देखा जा सकता है सैद्धांतिक आलोचना और व्यावहारिक आलोचना। सैद्धांतिक आलोचना की प्रौढ़तम कृति 'रसमीमांसा' है और उनकी व्यावहारिक आलोचना का प्रौढ़तम रूप तुलसी एवं जायसी ग्रंथावली की भूमिकाओं, 'भ्रमरगीतसार' की भूमिका और 'हिंदी साहित्य का इतिहास में देखा जा सकता है।"[124] आचार्य रामचंद्र शुक्ल के बाद हिंदी आलोचना में बहुत बदलाव हुए हैं। जिससे एक तरफ साहित्य का विस्तार हुआ दूसरी तरफ आलोचना के नए-नए सिद्धांत भी विकसित हुए। इसका उल्लेख डॉ. अमरनाथ ने इस प्रकार से किया है कि "आचार्य शुक्ल के बाद हिंदी आलोचना की कई पद्धतियाँ विकसित हुईं। इसमें मार्क्सवादी आलोचना, स्वच्छंदतावादी आलोचना, ऐतिहासिक-सांस्कृतिक आलोचना, प्रभाववादी आलोचना, नयी आलोचना, मनोविश्लेषणवादी आदि मुख्य हैं।"[125] अन्तत: यही कहा जा सकता है कि हिंदी आलोचना का क्षेत्र बहुत व्यापक है, जिसमें साहित्य और समाज को देखने की अनेक दृष्टियाँ मौजूद हैं।

[124] डॉ. अमरनाथ, हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, पृष्ठ संख्या-69

[125] डॉ. अमरनाथ, हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, पृष्ठ संख्या-70

2.2 भारतीय आलोचना के विकास चरण और हिंदी दलित कविता आलोचना

2.2.1 भारतीय आलोचना के विकास चरण

भारतीय आलोचना का स्वरूप, प्रारम्भिक अवस्था में चाहे जिस प्रकार का रहा हो, परन्तु वर्तमान में यह बहुत समृद्ध विधा है । इसके विकास का बृहद इतिहास हिंदी साहित्य में मौजूद है । भारतीय आलोचना का यहाँ संक्षिप्त अध्ययन करना इसलिए आवश्यक है क्योंकि इससे दलित आलोचना के दृष्टिकोण को समझने में सहायता मिलेगी। 'संस्कृत' जिसे हिंदी भाषा की 'जननी' कहा जाता है । वह हिंदी आलोचना का आधार स्तम्भ है । जिसके अंतर्गत निम्न सिद्धांतो का प्रतिपादन और खंडन-मंडन, समय-समय पर होता रहा है । जिसे हम इस प्रकार समझ सकते हैं कि "भरतमुनि से लेकर पंडितराजजगन्नाथ तक लगभग डेढ़ हजार वर्ष तक फैली हुई संस्कृत काव्यशास्त्र की परम्परा में अनेक काव्य सिद्धांतो का प्रतिपादन एवं खण्डन-मंडन होता रहा । ये सिद्धांत 'संप्रदाय' कहे जाते हैं । ये संप्रदाय मुख्य रूप से छह हैं, जिनके प्रणेता आचार्यों के नाम उनके सम्मुख अंकित हैं-

1. रस संप्रदाय-भरतमुनि

2. अलंकार संप्रदाय-भामह

3. रीति संप्रदाय-वामन

4. ध्वनि संप्रदाय-आनंदवर्धन

5. वक्रोक्ति संप्रदाय-कुंतक

6. औचित्य संप्रदाय-क्षेमेन्द्र

यहाँ 'संप्रदाय' का अर्थ संकुचित नहीं हैं। बल्कि इसका आशय है एक विचार को स्वीकार करते हुए उसे आगे बढ़ाने वाले विद्वान एक संप्रदाय के कहे जाते हैं। संप्रदाय का अर्थ है धरोहर। वैचारिक धरोहर। अंग्रेजी में इसे हम school of thought कहेंगे।"[126] इन सम्प्रदायों का प्रभाव हिंदी के आलोचकों पर इस प्रकार पड़ा कि वे लोग इसका प्रयोग निरंतर करते रहे हैं। इस सन्दर्भ में विश्वनाथ त्रिपाठी ने लिखा है कि "रीतिकाल लक्षण ग्रंथों का उपजीव्य संस्कृत का काव्यशास्त्र है। संस्कृत काव्यशास्त्र के चार संप्रदाय प्रसिद्ध हैं- 1-भामह, उद्भट आदि का अलंकार सप्रदाय; 2-कुंतक का वक्रोक्ति संप्रदाय; 3-वामन का रीति संप्रदाय; 4-आनन्दवर्धन का ध्वनि संप्रदाय। रीतिकाल में हिंदी का जो काव्यशास्त्र रचा गया वह इन्हीं सम्प्रदायों की नक़ल पर।"[127]

इस प्रकार इन सिद्धांतो , रस, छन्द और अलंकार का प्रभाव रीतिकाल को प्रभावित करता रहा, परन्तु 19वीं सदी तक आते-आते इस क्षेत्र में काफी परिवर्तन दिखाई देता है "19 वीं सदी के दूसरे भाग में भारतीय आलोचना पश्चिमी आलोचना से जुड़ी। भारतेंदु हरिश्चंद का लेख 'नाटक' भारतीय और पश्चिमी नाटक के तुलनात्मक अध्ययन का एक उदाहरण है। इसके साथ-साथ उन्होंने भक्ति और वात्सल्य जैसे नए रसों को जोड़ने का आग्रह किया। इस काल में कई अंग्रेजी आलोचना के निबंधों (जैसे जोसेफ एडिसन के 'इमैजिनेशन') का हिंदी अनुवाद किया गया। रामचंद्र शुक्ल ने 'रसमीमांसा' में रस को आई. ए. रिचर्डस के मनोवैज्ञानिक मानव के सन्दर्भ में देखा। परिणामस्वरूप , 'रसमीमांसा' संस्कृत, हिंदी और आलोचना परम्परा का संगम बनती है।"[128] यही कारण है कि वास्तविक भारतीय आलोचना की शुरूआत आचार्य रामचंद्र शुक्ल को केंद्र मानकर हुई थी। भारतीय आलोचना के इस विकास क्रम को आचार्य रामचंद्र शुक्ल के

---

[126] प्रो.हरिमोहन, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र की पहचान, पृष्ठ संख्या-2

[127] विश्वनाथ त्रिपाठी, हिन्दी आलोचना, पृष्ठ संख्या-15

[128] अवधेश कुमार सिंह, संस्कृत आलोचना की भूमिका, पृष्ठ संख्या-120

समय को आधार पर बाँटकर देखा जाता है, जिसे हम इस प्रकार समझ सकते हैं-"हिंदी साहित्य को युगीन परिस्थितियों ने नए आयाम और नए सन्दर्भ दिए, फलत: आलोचना के पुराने मानदंड अपर्याप्त दिखाई देने लगे और पाश्चात्य समीक्षा साहित्य से प्रेरणा प्राप्त करके हिंदी आलोचना ने नए युग में प्रवेश किया। आलोचना के प्रारम्भिक काल में निन्दा-स्तुति की अधिकता रही। भारतेंदु काल की आलोचना में भी यही हुआ। इस युग के बाद पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रयत्नों से हिंदी आलोचना में विश्लेषण और मूल्यांकन की प्रवृत्ति तेजी से बढ़ी। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी आलोचना को शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक धरातल पर प्रतिष्ठित किया। इसलिए हिंदी आलोचना के विकास के केंद्र में आचार्य रामचंद्र शुक्ल को मानते हुए हम उसे तीन युगों में बाँट सकते हैं-

1. शुक्ल पूर्व हिंदी आलोचना (1850 से 1920 ई.)
2. शुक्ल युगीन हिंदी आलोचना (1920 से 1940 ई.)
3. शुक्लोत्तर हिंदी आलोचना (1940 से अब तक)।"[129]

इस सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि भारतीय आलोचना का स्वरूप कभी एक समान नहीं रहा बल्कि इसमें समय-समय पर युगानुरूप परिवर्तन होता रहा है। जिसे हम इस प्रकार समझ सकते हैं। "शुक्लोत्तर हिंदी आलोचना अपने युग के प्रभावों को ग्रहण करती हुई विकसित होती रही। दो विश्व युद्धों का विनाशकारी प्रभाव पश्चिमी देशों में दिखाई पड़ने लगा था। यूरोप में वैज्ञानिकता और भौतिकता के व्यापक होने से नैतिक मूल्यों का महत्त्व दिया जाने लगा। फ्रायडवादी, मार्क्सवादी और अस्तित्ववादी विचारधारा का प्रभाव पाश्चात्य साहित्य पर पड़ने लगा। विश्वव्यापी इन चिंतन धाराओं से भारत भी अछूता नहीं रह सका। भारत के जीवन में नैतिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों का कुछ सीमा

[129] www.egyankosh, हिन्दी आलोचना का विकास, फारुकी नीलम, चतुर्वेदी, स्मिता, IGNOU, acess date 22/11/2020

तक विघटन हुआ। फलस्वरूप साहित्य में संघर्ष चेतना की अभिव्यक्ति के लिए तरह-तरह के प्रयोग किए जाने लगे। हिंदी आलोचना भीं उन्हीं के अनुरूप ढलती गई और शुक्लोत्तर युग में आलोचना अनेक धाराओं में विकसित हुई:-स्वच्छंदतावादी समीक्षा, ऐतिहासिक समीक्षा, मनोविश्लेणात्मक समीक्षा, मार्क्सवादी आलोचना।"[130]

आलोचना के इस विकसित चरण में पिछले कुछ वर्षों में दलित विमर्श, स्त्री विमर्श और आदिवासी विमर्श ने नए तरह के साहित्यिक विमर्श को जन्म दिया है। जिसमें परम्परागत शास्त्रवाद से मुक्ति के साथ-साथ नई साहित्यिक निर्मिति को देखा गया है। इस सन्दर्भ में कँवल भारती ने लिखा है "मैं हिंदी आलोचना पर कुछ चर्चा करूँगा। हम लोगों ने, मेरा मतलब है, दलित लेखकों ने हिंदी आलोचना को स्वीकार नहीं किया। जिस सौन्दर्यशास्त्र या शास्त्रवाद पर हिंदी आलोचना खड़ी है वह हमारे साथ न्याय नहीं करती। दलित चेतना शास्त्रवाद में विश्वास नहीं करती है। उसकी परम्परा भंजक परम्परा रही है।

हिंदी आलोचना शास्त्रवाद से ग्रस्त होने के कारण ब्राह्मणवादी दिखाई देती है। इसलिए हिंदी के किसी भी आलोचक ने, चाहे वह रामचंद्र शुक्ल हों, हजारी प्रसाद द्विवेदी हों, परशुराम चतुर्वेदी हों, रामविलास शर्मा हों, या आज के डॉ. नामवर सिंह हों, दलित रचना धर्मिता के साथ न्याय नहीं किया है। वे कबीर को नहीं समझ सके।"[131] वह इसलिए भी क्योंकि दलित समाज का जीवन सदियों से शोषण और उत्पीड़न भरा रहा है एवं उनकी समस्याएँ भी मुख्यधारा से भिन्न रहीं हैं, जिस कारण उन्होंने परम्परा से अलग साहित्यिक मूल्यांकन की तरफ ध्यान आकर्षित किया है। जिसे इस प्रकार समझ सकते हैं कि "दलित साहित्य की आत्मा 'समाज' और उस समाज में व्याप्त दलित शोषण की

---

[130] www.egyankosh, हिन्दी आलोचना का विकास, फारुकी नीलम, चतुर्वेदी, स्मिता, IGNOU, acess date 22/11/ 2020

[131] कँवल भारती, दलित साहित्य और विमर्श के आलोचक, पृष्ठ संख्या-82

सामाजिक समस्या है। अत: दलित साहित्य समीक्षा की कसौटी के रूप में दलित समाज का समाजशास्त्रीय अध्ययन अनिवार्य पहलू है। दलित-परिवेश, दलित-जीवन, दलित समस्या (आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक) का समग्रता में मूल्यांकन करना पड़ेगा। उनके भाषा संस्कार से भी परिचित होना पड़ेगा। उनके सपनों की दुनिया में प्रवेश करना होगा। तब कहीं जाकर रचना का वास्तविक मूल्यांकन संभव होगा। दलित सौन्दर्य शास्त्रीय मानक बिन्दुवार निम्नलिखित है, जिनके आधार पर दलित साहित्य की प्रभावी आलोचना संभव है।

1. भौतिकवादी सौन्दर्य शास्त्र
2. आंबेडकर-चिन्तन
3. लेखकीय प्रतिभा
4. सौन्दर्य मूल्य-स्वतंत्रता
5. समाजशास्त्रीय अध्ययन
6. कृति में निहित आशय को महत्त्व देना

इन मानकों के आलोक में ही दलित साहित्य मूल्यांकन की माँग करता है।"[132] इस प्रकार भारतीय आलोचना के विकास चरण और दलित आलोचना के सन्दर्भ में यही कहा जा सकता कि "उपनिवेशवाद के अंत में देश की स्वाधीनता के बाद दलित-चेतना का विकास भारतीय समाज की बड़ी परिघटना है-भले ही अनेक सामाजिक और राजनैतिक कारणों से इतनी दीर्घावधि में भी इस दिशा में हुई उपलब्धियाँ बहुत संतोषजनक न हों। हिंदी में नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि, डॉ. धर्मवीर, तुलसीराम, तेज सिंह, कँवल भारती, श्यौराज सिंह 'बेचैन' आदि ने दलित-चिंतन की सैद्धांतिकी और

---

[132] www.egyankosh.com, IGNOU (PDF) विमल थोरात, दलित साहित्य की अवधारणा और स्वरुप, access date: 22/09/2020

उसके सौन्दर्य शास्त्रीय विकास की दिशा में पर्याप्त कार्य किया। डॉ. धर्मवीर का कबीर सम्बन्धी चिंतन, ओमप्रकाश वाल्मीकि का सौन्दर्यशास्त्र, श्यौराज सिंह 'बेचैन' का पत्रकारिता के सन्दर्भ में अम्बेडकर का योगदान, तुलसी राम का वैचारिक निबंध आदि के माध्यम से किया गया काम इस दिशा में अनेक संभावनाएँ जगाता है।"[133] वर्तमान समय में इस क्षेत्र में लगातार विकास हो रहा है। जिसका अध्ययन हम निम्न रूप में करेंगें।

2.2.2. दलित-आलोचना का स्वरूप

हिंदी आलोचना का स्वरूप संस्कृत साहित्य और उसके सिद्धांतो से प्रभावित रहा जो आचार्य रामचंद्र शुक्ल की आलोचकीय दृष्टि प्राप्त कर प्रौढ सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक रूप में स्थापित हुआ। इसलिए आचार्य रामचंद्र शुक्ल से हिंदी आलोचना का वास्तविक विकास माना जाता है। परन्तु इन सबसे भिन्न दलित आलोचना की निर्मिति है। इसमें परम्परागत साहित्य से असहमति के साथ-साथ प्रतिरोध का स्वर अभिव्यक्त होता है। शरण कुमार लिम्बाले ने लिखा है कि "साहित्य की यात्रा जैसे अलग-अलग युग में बदलती आ रही है वैसे ही समीक्षा का स्वरूप भी बदलता आ रहा है। किसी के लेखन को साहित्य कहना हो तो उस पर हमारे साहित्य की कसौटियाँ ही लागू होंगी, ऐसी भूमिका लेना सांस्कृतिक तानाशाही का लक्षण है। साहित्य की कसौटियाँ सभी कालों में स्थिर नहीं रहतीं। बदलते काल के साथ साहित्य भी बदलता है उसकी समीक्षा में भी बदलाव की संभावना होती है।"[134]

[133] मधुरेश, हिन्दी आलोचना का विकास, पृष्ठ संख्या-289
[134] शरण कुमार लिम्बाले, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, अनुवाद (रमणिका गुप्ता), पृष्ठ संख्या-108

दलित साहित्य बदलाव से उपजा, बदलाव के लिए लिखा जाने वाला साहित्य है। जिसमें समाज के उन उपेक्षित वर्गों का चित्रण हुआ है, जिन्हें सदियों दरकिनार किया गया। परन्तु कालांतर में दलित रचनाकारों ने अपने जीवन अनुभव लिखकर साहित्यिक जगत में नया विमर्श खड़ा किया, जिससे नए साहित्यिक स्वरूप का निर्माण हुआ। इसके केंद्र में कविता, कहानी, आत्मकथा, नाटक, उपन्यास आदि विधाएँ हैं। जिसे पढ़कर दलित दंश की भावभूमि तक पहुँचा जा सकता है। जिसे इस प्रकार समझ सकते हैं "दलित समीक्षा यह आग्रह करती है कि दलित साहित्य की समीक्षा करने से पहले समीक्षक खुद दलित दंश की भावभूमि पर अवतरित करें तभी वह कृति के साथ न्याय कर सकेगा। वर्ना दलित वेदना उसे 'बैठे ठाले का रोना ही लगेगा' और वह अपनी वर्णीय अवधारणा के कारण उन बिन्दुओं पर पर्दा डाल देगा या उससे आँख मूँद लेगा जो कृति के जीवन्त और ज्वलंत पक्ष हैं। उसे इन पक्षों से टकराने का साहस और न्याय बुद्धि का प्रयोग करना पड़ेगा वर्ना उसे वहाँ कुछ भी प्राप्त नहीं होगा।"[135] दलित साहित्य ने सामाजिक जीवन के उन अनछुए पहलुओं को चित्रित किया है। जिनसे हिंदी के विद्वान रचनाकार बचते रहे हैं। कुछ लोगों ने लिखा भी तो उन्होंने उस परम्परागत धार्मिक जड़ता, सामाजिक विसंगति, वर्णिय व्यवस्था, जातिवादी मानसिकता से वैसे टकराए जैसे दलित रचनाकार टकराते हुए सवाल करते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि की यह कविता जिसने मुख्यधारा से सवाल किया है कि-

"चूल्हा मिट्टी का

मिट्टी तालाब की

तालाब ठाकुर का ।

---

135 www.egyankosh.com, एम. एच डी-18-दलित साहित्य की अवधारणा का स्वरुप, विमल थोरात, दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र खण्ड-4, प्रकाशक इग्नू नई दिल्ली, जून-2014, पृष्ठ संख्या-50

भूख रोटी की

रोटी बाजरे की

बाजरा खेत का

खेत ठाकुर का।

बैल ठाकुर का

हल ठाकुर का

हल की मूठ पर हथेली अपनी

फसल ठाकुर की।

कुँआ ठाकुर का

पानी ठाकुर का

खेत-खलियान ठाकुर के

गली-मोहल्ले ठाकुर के

फिर अपना क्या?

गाँव?

शहर?

देश?"[136]

---

[136] ओमप्रकाश वाल्मीकि, सदियों का संताप, पृष्ठ संख्या-13

अब इस प्रकार की कविताओं के लिए परम्परागत सौन्दर्यशास्त्र और प्रतिमानों की कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि यह कविता अपनी बात बहुत ही साधारण तरीके से अभिव्यक्त कर देती है। जिन परिस्थितियों को इन रचनाकारों ने आँखों से देखा, भोगा उस वास्तविकता को व्यक्त करने के लिए वे किसी निर्मित सौन्दर्य शास्त्र के गुलाम नहीं हैं। तब यही कहा जा सकता है कि "यह सौन्दर्य 'स्वर' सौन्दर्य है। इसमें हिंदी साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र की तरह किसी नारी का नख-शिख वर्णन, अभिसारिका गमन, उसकी मांसलता का चित्रण नहीं है और न ही अलंकरण से युक्त शरीर का वर्णन है। दलित साहित्य स्वांत: सुखाय, उपदेश और 'मनोरंजन का शगल' का साहित्य नहीं हैं। यह परिवर्तन कामी चेतनाशील अभिव्यक्ति की अभिव्यंजना है। अत: दलित साहित्य की कसौटी उसकी मार्मिक अभिव्यक्ति की सच्चाई और सफलता तथा सहज भाषा, सरल शैली, मानववादी दृष्टिकोण दलित स्थिति से मुक्ति का आह्वान करना।"[137]

दलित साहित्य में सौन्दर्य और कला की जगह समानता का स्वरूप मुखरित होता है। यह केवल साहित्य ही नहीं बल्कि एक आन्दोलन है जो समाज में परिवर्तन के लिए प्रतिबद्ध है। जिस कारण इसके स्वरूप में कई प्रकार से भिन्नता है। इस संदर्भ में शरण कुमार लिम्बाले का दृष्टिकोण महत्त्वपूर्ण है वे कहते हैं कि "दलित साहित्य की समीक्षा में दो सुर मिलते हैं। एक यह कि दलित का मूल्यांकन चिरंतन साहित्य के मूल्यों के आधार पर किया जाना चाहिए और दूसरा यह कि साहित्य की कसौटियाँ सभी काल खण्डों में स्थिर नहीं रहतीं और रूढ़ साहित्यिक कसौटियों के आधार पर दलित साहित्य की समीक्षा नहीं की जा सकती। दलित समीक्षक दूसरे सुर के साथ सहमत हैं।"[138]

---

[137] प्रवीण कुमार, दलित आलोचना के प्रतिमान, दलित साहित्य की वार्षिकी, 2014, पृष्ठ संख्या-55
[138] www.Egyankosh,Access date: 22/9/2020

2.2.3. दलित-आलोचना के मानदंड

साहित्य का स्वरूप सदैव एक समान नहीं रहता बल्कि यह समय और परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित होता रहा है । हिंदी साहित्य के जिस मानदंड से साहित्य का मूल्यांकन होता रहा है । उसके आधार पर दलित साहित्य का मूल्यांकन नहीं हो सकता है। जिस पर दलित आलोचकों के बीच काफी बहस हुई है कि दलित साहित्य के मानदंड किसे कहा जाए?

साहित्य को 'समाज का दर्पण' कहा जाता है । जिसका उद्देश्य होता है समाज को उचित मार्ग दिखाना । प्रेमचंद का मानना था कि "साहित्य समाज के आगे चलने वाली मशाल है ।"[139] मतलब यह समाज के लिए वह मशाल है जो मार्ग में आगे-आगे चलती है । परन्तु यह मशाल दलित साहित्य में देर से पहुँची और जब पहुँची तो साहित्य की परिभाषा ही बदल दी । जिससे उसके मूल्यांकन और आलोचना के मानदंड बदल गए और मुख्यधारा के सामने चुनौती खड़ी हुई । इस सन्दर्भ में मुद्राराक्षस लिखते हैं कि "रचना के जिन मूल्यों को वह (सवर्ण) शाश्वत और सार्वभौम समझता है, उसके बारे में वह कभी कोई सन्देह नहीं करता है, उसे भी वह अपने खाते में जमा कर लेता है ।"[140] दलित साहित्य ने उन शाश्वत मूल्यों को बदल दिया है जिसे अपरिवर्तनीय समझा जाता था । उन पर सवाल करते हुए तार्किक बहस शुरूकर साहित्य के लिए नया सिद्धांत और मानदंड निरूपित किया, जिससे मुख्यधारा अपरिचित रही है । इस संदर्भ में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने लिखा है कि "हिंदी समीक्षा की यह एक वैचारिक त्रासदी है कि जिस कृति की भाषा गूढ़, आध्यात्मिक, तत्वज्ञान से भरी हो, वह कृति समीक्षकों को श्रेष्ठ लगती है और जिसमें आम आदमी अपनी सामान्य धारणा रोजमर्रा की भाषा में, अपना दुःख-सुख

---

[139] सूरज बडत्या, सत्ता संस्कृति और दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या-79

[140] ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या-99

व्यथा व्यक्त कर रहा है, वह समीक्षकों को कमजोर, कच्चेपन की रचना लगती है। यानी जिसमें साधारण भाषा हो, वह निकृष्ट है। यह समीक्षा की वास्तविकता है, जो साहित्य की व्यापकता को नष्ट कर रही है।"[141] परन्तु दलित साहित्य में न तो गूढ़ भाषा मिलेगी न ही आध्यात्मिक और धार्मिक जड़ता मिलेगी बल्कि दलित रचनाकार सामान्य भाषा में अपना अनुभव जनसामान्य तक पहुँचाते हैं। ये शब्दों की ताकत को समझ गए हैं इसलिए वह शब्दों को ऊर्जा समझते हैं।

"शब्दों के आन्दोलन की धार
तुम्हें और तेज करनी होगी,
क्योंकि तुम्हारे पास जख्मों को
फिर से कुरेदा जा सकता है।
तुम्हारे पास केवल शब्द हैं
संघर्ष को जारी रखने के लिए
वही तुम्हारी ऊर्जा है।"[142]

दलित साहित्य के लिए एक मान्यता यह भी है कि यह एक आन्दोलन है केवल साहित्य नहीं। इसलिए लेखक शब्द की धार तेज करने की तरफ इशारा कर रहा है जो कहीं न कहीं शिक्षा की महत्ता पर प्रकाश डालता है। इस सन्दर्भ में शरण कुमार लिम्बाले ने लिखा है कि "दलित साहित्य एक आन्दोलन है। यह दलित-लेखकों की मान्यता है। दलित लेखक अपने साहित्य को अपनी व्यथा, वेदना, प्रश्न एवं समस्याओं की

[141] ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या-99
[142] कँवल भारती, दलित-निर्वाचित कविताएं, पृष्ठ संख्या-106

अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में देखता है, लेकिन दलित साहित्य का पाठक दलित लेखन की पुस्तक को 'साहित्य' के रूप में ही पढ़ता है, जिस कारण लेखक और पाठक के बीच होने वाली 'समानधर्मिता' टूट जाती है।"[143]

दलित साहित्य के लिए यह एक महत्त्वपूर्ण सवाल है कि पाठक उसे महज 'साहित्य' समझ लेता है जबकि वह दलित की वेदना से फूटा हुआ यथार्थ है। जिसके लिए किसी रूप, रंग और सजावट की नहीं बल्कि स्वतंत्रता की आवश्यता है। इस सन्दर्भ में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने लिखा है कि "साहित्य के माध्यम से हमें समाज और वस्तुजगत् को वैज्ञानिक और समाजशास्त्री ढंग से समझने की कोशिश अथवा मनुष्य की स्वतंत्रता, गरिमा और व्यक्तित्व का विकास करने के लिए समान अधिकारों जैसे मानवीय मूल्यों की पक्षधरता स्थापित करना चाहिए था।"[144] साहित्य ऐसा विषय है जो सामाजिक यथार्थ को गहराई से अभिव्यक्त करता है। मनुष्य के लिए अस्मिता, स्वतंत्रता, समानता और भाईचारा से बढ़कर कोई वस्तु नहीं इसलिए साहित्य के यही सरोकार होने चाहिए। दलित आलोचना के मानदंड के विषय में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने लिखा है, जिसे दलित आलोचना के मानदंड भी समझ सकते हैं कि "दलित-चेतना डॉ. अम्बेडकर के जीवन-दर्शन से मुख्य ऊर्जा ग्रहण करती है। इस तथ्य से सभी दलित एकमत हैं। दलित चेतना के प्रमुख बिंदु हैं-

1.मुक्ति और स्वतंत्रता के सवालों पर डॉ. आंबेडकर के दर्शन को स्वीकार करना।

2.बुद्ध का अनीश्वरवाद, अनात्मवाद, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, पाखंड-कर्मकांड विरोध।

---

[143] शरण कुमार लिम्बाले, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या-107

[144] ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या-100

3.वर्ण-व्यवस्था का विरोध, जातिभेद-विरोध, साम्प्रदायिकता विरोध।

4.अलगाववाद का नहीं भाईचारे का समर्थन।

5.स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय की पक्षधरता।

6.सामाजिक बदलाव के लिए प्रतिबद्धता।

7. आर्थिक क्षेत्र में पूँजीवाद का विरोध।

8. सामन्तवाद, ब्राह्मणवाद का विरोध।

9. अधिनायकवाद का विरोध।

10.महाकाव्य की रामचन्द्र शुक्लीय परिभाषा से असहमति।

11.पारम्परिक सौन्दर्यशास्त्र का विरोध।

12.वर्णविहीन, वर्गविहीन समाज की पक्षधरता।

13.भाषावाद, लिंगवाद का विरोध।"[145]

2.2.4 दलित-कविता आलोचना का विकास

इस प्रकार के अनेक सवालों को लिए हुए दलित साहित्य के अंतर्गत दलित कविता आलोचना का उदय होता है। 'सिद्ध सहित्य' को लेकर डॉ. धर्मवीर भारती द्वारा किया गया शोध जो आर्य और ब्राह्मण के माध्यम से भारतीय तथ्यों को उजागर करता है कि "समकालीन अंग्रेज इतिहासकारों के इराडालोजिस्ट ग्रुप के प्रमुख सदस्य जान इर्विन का मत है कि भारतीय इतिहास में ऐसे समय आते रहे हैं जब आर्य लोग अपनी

[145] ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या-31

आत्मसात् कर लेने की प्रवृत्ति को खो देते हैं और परिणाम यह होता है कि ब्राह्मणों की सत्ता निर्ममता से जन साधारण पर लाद दी जाती थी। जनता पहिले से अधिक दमन की शिकार होती थी ऐसी परिस्थितियों में संकट आना अनिवार्य था। दलित जनशक्तियाँ परम्परागत रूढ़ियों के स्तर से नीचे ही नीचे वेग से संगठित होने लगती थीं और एक खुले विद्रोह की भूमिका प्रस्तुत करने लगती थीं।

बौद्ध धर्म का प्रारम्भिक इतिहास यही था। ब्राह्मण कर्मकांड के विरूद्ध उसने जनव्यापी विद्रोह का रूप ग्रहण किया और विगत सामूहिक जीवन की प्रत्यागत स्मृति का आश्रय ग्रहण कर सारे भारत में फैल गया"[146] स्पष्ट रूप में कहा जा सकता है कि दमन और शोषण के इतिहास को कभी भी बर्दाश्त नहीं किया गया। सदियों से उसका विरोध होता रहा है और होता रहेगा। इस प्रकार भारतीय चिन्तन पद्धति में एक नया मोड़ आता है, जिससे आगे चलकर दलित साहित्यकार भी प्रभावित होते हैं। कालांतर में शूद्रों एवं स्त्रियों आदि के लिए एक तरफ बौद्ध विहार खुले तो दूसरी तरफ पाखंड और अन्धविश्वास पर प्रहार भी हुए। जिससे सदियों से चली आ रही मिथकीय परम्परा खण्डित होती हुई दिखाई देती है और समाज में संत साहित्य का उदय होता है।

परिवर्तन की जो धारा बौद्ध साहित्य से चली वह संत साहित्य से होते हुए ब्रिटिश हुकूमत के दौरान अलग रूप में दिखाई देती है। दलित आलोचना की शुरूआत ब्रिटिश हुकूमत के दौरान ही शुरू हो चुकी थी। इसका उल्लेख कँवल भारती इस प्रकार करते हैं कि 'अछूत की शिकायत का रचनाकाल भारत के औपनिवेशिक काल...महाराष्ट्र में ज्योतिबा फुले, उत्तर प्रदेश में स्वामी अछूतानन्द और बंगाल में चाँदगुरु दलित वर्गों में नवजागरण कर रहे थे। नवजागरण भारतीय समाज का एक ऐसा आन्दोलन रहा है। जिसने मनुष्यों की चेतना पर प्रहार किया है। नवजागरण का भारतीय समाज पर काफी

---

[146] डॉ. धर्मवीर भारती, सिद्ध साहित्य, पृष्ठ संख्या-78

प्रभाव पड़ा है। इस जागरण ने समाज को प्रभावित करने वाले उस नए बीज को अंकुरित किया जिस तरफ लोगों का ध्यान नहीं गया ।' आधुनिक भारत में इस परिवर्तन की नींव डालने वाले प्रमुख विद्धानों में राजा राममोहन राय, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द आदि ने जिस तरह से लोगों के जनमानस को परिवर्तित किया, वैसे ही एक दूसरी धारा चल रही थी जिसे दलित साहित्यकार सम्पूर्ण समाज के लिए महत्त्वपूर्ण मान रहे हैं। हालाँकि देश में विधवा-पुनर्विवाह, बाल-विवाह निषेध और सती-प्रथा जैसी बुराइयाँ कम खतरनाक नहीं थीं, जिसे बंगाल के पुरोधा जड़ से मिटाने की वकालत कर रहे थे। जिसका जिक्र यहाँ किया जा रहा है, वह भी किसी नवजागरण से कम नहीं है। इसी से दलित चेतना का निर्माण होता है।

'दलित साहित्य के समाजशास्त्र' की भूमिका में हरिनारायण ठाकुर द्वारा लिखित यह विचार सटीक बैठता है कि "आधुनिक काल में नवजागरण और स्वतंत्रता-संग्राम के दिनों में महात्मा जोतीराव फुले, शाहू जी महाराज, डॉ.अम्बेडकर, पेरियार, भीमा भोई, नारायण गुरु, अछूतानन्द, बिरसा मुण्डा, तिलका मांझी, सिद्दू-कान्हू, उदा देवी, झलकारी बाई, अजीजन बाई, महावीरी देवी भंगी, लोचन मल्लाह, चेतराम जाटव, बल्लू मेहतर, सरदार ऊधम सिंह, जुब्बा सहनी, पृथ्वी सिंह आजाद, बगुला कुर्मय्या आदि के संघर्ष और त्याग बलिदान से एक मुकम्मल दलित चेतना बनती दिखाई देती है, जो साहित्य, संस्कृति समाज और राजनीति में विभिन्न रूपों में विद्यमान है।"[147]

दलित आलोचना के विकास क्रम में आधुनिक काल के ही अंतर्गत कथादेश में 'दलित आलोचना की आरम्भिकी' नाम से छपा एक लेख विचारणीय है। इस लेख में दलित साहित्य के कुछ विचारों का मूल्यांकन किया गया है। यह लेख 1927-1928 में 'दलित जातियों के द्वारा हिंदी साहित्य की सेवा' नाम से प्रस्तुत किया गया है जो बाद में

[147] दलित साहित्य का समाजशास्त्र, हरिनारायण ठाकुर, पृष्ठ संख्या-15

धीरेन्द्र वर्मा के संपादन में सम्पादित भी हुआ था। इस लेख की महत्ता को दीनदयाल ने इस प्रकार से स्पष्ट किया है कि "जिन व्यक्तियों के अवदान को महत्त्वपूर्ण माना जाता है वे हैं क्रमश: कबीर, रैदास, सदना, सेन, नामदेव, दाददयाल, कमाल, नाभादास, कृष्णदास एवं खगानियाँ तेलिन। निश्चय ही यह सूची अपूर्ण। पर फिर भी इस निबंध का अपना महत्त्व है। यह दलित आलोचना की आरम्भिकी है।"[148] इस लेख को 1927 में लिखा गया है तो और कई प्रकार सवाल उठते हैं। इस समय दलित साहित्य की प्रथम कविता 'अछूत की शिकायत' जिसकी रचना 'हीराडोम' द्वारा लिखी, उसके विषय में लेखक क्यों भूल गया? या फिर दूसरा उदाहरण क्रांतिकारी आन्दोलन कर्मी और लेखक अछूतानन्द थे, इस लेख में उनका भी नाम शामिल नहीं है इसलिए इस लेख को आलोचना की आरम्भिकी मानना थोड़ा आश्चर्य चकित करने वाला है।

दलित आलोचना से पहले सबसे बड़ा मुद्दा आलोचना के पाठ को लेकर है। दलित कविताओं का पाठ शम्भुनाथ दयाल के समय भिन्न था। अगर हिंदी साहित्य की बात करें तो उसके केंद्र में छायावाद रहा है। जिसमें दलित समाज के मुद्दे गायब थे। हाँ यह जरूर कह सकते है कि निराला जैसे लेखकों ने दलित जीवन के कुछ मुद्दों को अवश्य उठाया है। इसलिए दलित आलोचना के पाठ के यथार्थ को देखना आवश्यक है। इस विषय में 'शम्भुनाथ गुप्त' का यह कथन विचार योग्य है। जिसमें उन्होंने कहा था कि "आलोचना के मानदंड सदैव रचना के बाद निर्मित होते हैं।"[149]

दलित साहित्य में किसी भी परम्परा को नहीं ढोया जाता है। इसका उल्लेख सूरज बडत्या ने इस प्रकार किया है कि "दलित साहित्य का सौन्दर्य न तो रीतिकालीन नख-शिख वर्णन की परम्परा को ढोता है और न ही शास्त्रीय कला मानकों को लेकर

---

148 हरिनारायण, कथादेश, अगस्त, 2005, पृष्ठ संख्या-42

149 हिन्दी दलित साहित्य, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ संख्या-279

चलता है। दलित साहित्य जाति मुक्त समाज के सपनों को लेकर चलता है। अनुभव अलग हैं अंतर्वस्तु अलग है तो साहित्यिक रूप भी अलग ही है।"[150]

दलित आलोचना को लेकर जब कई प्रकार के सवाल उठने लगते हैं, तब डॉ.एन.सिंह का उल्लेख करना आवश्यक हो जाता है- "दलित समीक्षकों द्वारा समीक्षा का प्रारम्भ तो पुस्तक समीक्षाओं से ही हुआ है। डॉ. एन. सिंह, ओमप्रकाश वाल्मीकि, कँवल भारती, जयप्रकाश कर्दम, तथा पुरूषोतम 'सत्य प्रेमी' आदि ने हिंदी साहित्य की महत्त्वपूर्ण पुस्तकों की समीक्षा की, लेकिन जब सवर्ण आलोचकों ने बार-बार यह कहना शुरू किया कि हिंदी में दलित साहित्य है ही नहीं, तब डॉ. एन. सिंह ने 'दलित साहित्य चिंतन के विविध आयाम' नामक पुस्तक का संपादन किया, दलित साहित्य आलोचना की पहली पुस्तक मानी जाती है।"[151]

दलित आलोचना की दर्जनों पुस्तक आ चुकी हैं। माताप्रसाद की पुस्तक 'हिंदी काव्य में दलित काव्यधारा', डॉ. एन. सिंह की 'दलित साहित्य चिंतन के विविध आयाम', और 'दलित साहित्य के प्रतिमान', 'दलित कविता का संघर्ष', और 'दलित विमर्श की भूमिका' कँवल भारती की 'दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र', ओमप्रकाश वाल्मीकि आदि।

गैर-दलित आलोचकों में कुछ नाम इस प्रकार हैं। राजेंद्र यादव, रमणिका गुप्ता, चौथीराम यादव, बजरंग बिहारी तिवारी, हरपाल सिंह अरुष आदि। इसलिए अब यह कहा जा सकता है दलित साहित्य अपनी साख मजबूत कर चुका है। इसे मैनेजर पाण्डेय ने अपने शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया है कि "मुझे लगता है कि आने वाले समय में भारतीय साहित्य का प्रतिनिधित्त्व अगर दलित साहित्य करने लगे तो आश्चर्य की बात

[150] सूरज बड़त्या, सत्ता संस्कृति और दलित सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या-153
[151] डॉ. एन सिंह, दलित साहित्य के मान प्रतिमान, पृष्ठ संख्या-42

नहीं होगी। इसलिए दलित साहित्य को भारतीय साहित्य के रूप में ही देखने-समझने की जरूरत मुझे महसूस नहीं होती।"[152]

2.3 भारतीय आलोचना के प्रतिमान और हिंदी दलित कविता आलोचना

2.3.1.**भारतीय काव्य शास्त्र और हिंदी कविता के प्रतिमान**

साहित्य की विविध विधाओं, कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास में कविता सबसे प्रभावी विधा है, इसलिए साहित्यकारों की रुचि सदियों से कविता में अधिक रही है। कविता के माध्यम से रचनाकार अपने युग के समाज को व्यक्त करता है। साहित्य में काव्यशास्त्र की शुरूआत कब हुई और इसका आदि ग्रन्थ क्या है? इस विषय में यह कथन ज्यादा उपयोगी है कि "भरतमुनि को ही भारत का आदि काव्यशास्त्री माना जाता है एवं 'नाट्यशास्त्र' को काव्यशास्त्र का आदि ग्रन्थ माना जाता है।"[153]

भरतमुनि के अनुसार "रसमुखी, सुखबोध, मृदुललित, पदावली को काव्य कहते है"[154] भामह के अनुसार "शब्द और अर्थ के सामंजस्य से पूर्ण युक्ति ही काव्य हैं"[155] दंडी के अनुसार "अभिलक्षित अर्थ को व्यक्त करने वाली पदावली ही काव्य है।"[156] वामन के अनुसार "गुणों तथा अलंकारों से भूषित शब्द और अर्थ के लिए काव्य शब्द का प्रयोग

---

[152] मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और दलित दृष्टि, संपादक, सर्वेश कुमार मौर्य, पृष्ठ संख्या-143

[153] जगदीश प्रसाद कौशिक, भारतीय काव्य शास्त्र के प्रतिमान, जयपुर साहित्य घर, प्र.सं 1988, पृष्ठ संख्या-i

[154] जगदीश प्रसाद कौशिक, भारतीय काव्य शास्त्र के प्रतिमान, पृष्ठ संख्या-3

[155] जगदीश प्रसाद कौशिक, भारतीय काव्य शास्त्र के प्रतिमान, पृष्ठ संख्या-3

[156] जगदीश प्रसाद कौशिक, भारतीय काव्य शास्त्र के प्रतिमान, पृष्ठ संख्या-3

किया जाता है।"[157] पण्डितराज जगन्नाथ के अनुसार "रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य कहते हैं।"[158]

इन आचार्यों द्वारा दी गई काव्य की परिभाषा से पता चलता है कि इस दौर में रस, छंद, अलंकार और शब्द को लेकर गंभीर बहस थी। सामान्य नागरिक, दलित, आदिवासी, शोषित-पीड़ित समाज का बहुत बड़ा हिस्सा उनके चिंतन से दूर था। हाँ, इतना आवश्य है कि आचार्य मम्मट जैसे विद्वान 'काव्य को अलंकार विहीन' होने की वकालत कर रहे थे। मम्मट के अनुसार "दोष रहित तथा गुण युक्त शब्द और अर्थ का सामंजस्य ही काव्य है। उसमें अलंकारों का होना आवश्यक नहीं है।"[159] कहना जरूरी है कि जिन सिद्धांतो को काव्यशास्त्र का प्रमुख अंग बनाया गया था, उन सिद्धांतो का खंडन-मंडन भी हुआ था।

हिंदी साहित्य का इतिहास संस्कृत साहित्य से जुड़ा हुआ है। इसे इस प्रकार समझ सकते हैं कि-"हिंदी साहित्य उस भारतीय साहित्य परम्परा का अंग है जो शताब्दियों से संस्कृत काव्यशास्त्र की परम्परा से अनुप्राणित, प्रेरित और परिपोषित होती रही है। काव्यशास्त्र के जिन सिद्धांतों (रस-सिद्धांत, नायिका-भेद, अलंकार आदि) के आधार पर रीतिकालीन ब्रजभाषा काव्य अपनी सरणि बनाता रहा तथा मूल्यांकन के आधार पर स्थापित करता रहा वे सीधे संस्कृत के काव्य शास्त्र से आए थे।"[160]

साहित्य और समाज का विषय अचानक नहीं बदलता बल्कि इस परिवर्तन के पीछे लम्बा इतिहास होता है। जिसमें पुराने का खंडन और नए का निर्माण होता रहता है। जिसका उल्लेख 'लक्ष्मीकान्त वर्मा ने 'नई कविता के प्रतिमान' में इस प्रकार किया है कि

[157] जगदीश प्रसाद कौशिक, भारतीय काव्य शास्त्र के प्रतिमान, पृष्ठ संख्या-5
[158] जगदीश प्रसाद कौशिक, भारतीय काव्य शास्त्र के प्रतिमान, पृष्ठ संख्या-8
[159] जगदीश प्रसाद कौशिक, भारतीय काव्य शास्त्र के प्रतिमान, पृष्ठ संख्या-6
[160] जगदीश प्रसाद कौशिक, भारतीय काव्य शास्त्र के प्रतिमान, पृष्ठ संख्या-i

"साहित्य का इतिहास इस बात का साक्षी है कि उसके प्रत्येक नये मोड़ के प्रति आलोचकों ने सन्देह प्रकट किये हैं, किन्तु उन मोड़ों में यदि ईमानदारी और सच्चाई रही है तो उन्होंने कटु से कटु आलोचना के बावजूद भी अपना नया मार्ग प्रशस्त किया है।"[161]

छायावाद जिसमें निराला जैसे कवियों ने कविता को 'छंद मुक्त' कहा वह युग भी रहस्यवाद तक ही सीमित होकर समाप्त हो गया। कविताओं के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण दौर में अज्ञेय का दौर रहा। जिसमें उन्होंने 'तारसप्तक' के माध्यम से तत्कालिक समाज और साहित्य के परिवर्तित स्वरूपों का उल्लेख करते हुए कवियों को 'राहों का अन्वेषी' कहा। तथा 'दूसरे तार सप्तक' के कवियों को 'प्रयोग' से जोड़ा और कहा कि बिना प्रयोग के कोई कवि आगे नहीं बढ़ सकता। "प्रयोग का हमारा कोई वाद नहीं है, इसको और भी स्पष्ट करने के लिए एक बात हम और कहें, प्रयोग निरंतर होते आये हैं, और प्रयोगों के द्वारा ही कविता या कोई कला, कोई भी रचनात्मक कार्य, आगे बढ़ सकता है।"[162]

आदिकाल से लेकर आज तक परिवर्तन का यह क्रम जारी रहा है और यह आगे भी निरंतर जारी रहेगा। नई कविता भी उसी परिवर्तन का हिस्सा है, जिसने पुराने मार्ग को त्यागकर नया अपनाया है। इन कविताओं में जीवन की अनुभूति और यथार्थ पर अधिक बल दिया गया है, जिसके विषय में नामवर सिंह ने इस प्रकार लिखा है कि "महाभारत के बाद अर्जुन का गांडीव जिस तरह दस्युओं के सम्मुख व्यर्थ हो गया था, उसी प्रकार नई कविता के समक्ष पुरानी अनुभूतियों से निर्मित सहृदयता की विफलता निश्चित है। सैद्धांतिक स्तर पर इस सहृदयता को चाहे जितने नए शब्दों एवं युक्तियों से सुसज्जित किया जाए, किन्तु एक छोटी-सी नई कविता भी सिद्धांत के बड़े-बड़े गुब्बारे के लिए आलपीन हो जाती है। उदाहरण के लिए रस-सिद्धांत में अज्ञेय की 'सोन-मछली' कविता का निम्नलिखित विवेचन:

---

[161] नई कविता के प्रतिमान, लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृष्ठ संख्या-1

[162] अज्ञेय, दूसरा तारसप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ, 1970, पृष्ठ संख्या-7

हम निहारते रूप,

काँच के पीछे

हाँफ रही है मछली

रूप तृषा भी

(और काँच के पीछे)

है जिजीविषा।"[163]

कविता में काँच के पीछे छिपी सोन-मछली की जिजीविषा मानवीय जीवन की जिजीविषा है। मनुष्य हर सम्भव जीवन को सफल और कारगर साबित करना चाहता है। उसकी स्वयं की अनुभूति ही उसके जीवन के मूल में है, जिसे कविता के माध्यम से भली-भाँति व्यक्त किया जा सकता है।

2.3.2 हिंदी दलित कविता के प्रतिमान

दलित कविता का इतिहास तो पुराना है, लेकिन इसकी मुकम्मल और सशक्त शुरूआत 1980 के बाद होती है। दलित कविता के केंद्र में समाज का दबा, कुचला और उपेक्षित वर्ग है जिसकी आवाज सदियों तक गायब रही है। परन्तु जब उठी तो उसने सम्पूर्ण परम्परागत साहित्य को बदल दिया। जिससे समाज में व्याप्त भेदभाव, दमन और शोषण की यथास्थिति से टकराहट हुई एवं सौन्दर्य के मायने बदल गए। हिंदी साहित्य के वे प्रतिमान जिन पर विशाल साहित्य रचा-बसा है। वह दलित साहित्य से भिन्न है, इसलिए उसके मानदंड और सिद्धांत के बल पर दलित साहित्य का मूल्यांकन होना असंभव है। इसमें पुराने बिम्ब, मिथक, प्रतीक और रूपक से इतर शिल्प और विषय-वस्तुओं का वर्णन हुआ है। दिन भर खेत-खलियानों में थका-हारा श्रमिक समाज और

[163] नामवर सिंह, कविता के नए प्रतिमान, पृष्ठ संख्या-22

सिर पर मैला से भरी टोकरी ढोती महिलाओं का सौन्दर्य परम्परागत साहित्य से एकमेव कैसे हो सकता है?

दलित साहित्य के लेखकों ने अपने लेखन के बल पर जिन नए प्रतिमानों, अनुभवों, प्रतीकों का उल्लेख किया है। वह समाज को विभाजित नहीं, बल्कि एकजुट करने का प्रयास करता है। जबकि हिंदी साहित्य में जो प्रतिमान उपलब्ध है, उसमें अधिकतर संस्कृत भाषा से है, जिसे 'देववाणी' कहा जाता था। परन्तु यह भाषा दलित समाज के लिए घातक रही थी, जिसे सुन लेने मात्र से दलितों को क्षत-विक्षत कर दिया जाता था।

2.3.2.1 'दलित' कविता के बिम्ब

दलित कविता कें विषय अनुभव आधारित हैं, जिसमें उस समाज के तंग जीवन संघर्ष की झलक मिलती है। इस समाज में गरीबी और उपेक्षा का शिकार हुई, किसी महिला का दर्द कैसा होता है, उसे रघुनाथ प्यासा के एक लोक गीत 'कच्चे नीम की निबोली' के एक अंश से समझा जदा सकता है-

"कच्चे नीम की निबोली/सामण इभी ना आइये रे

मेरे बालम की बिक गयी खोली,

सामण इभी ना आइये रे/जब जब बैरन बरखा बरसे, जियरा खाए उचाट,

कहाँ पड़े मेरे याने बालक, कहाँ बलम की खाट/मेरे भीगे दामन चोली,

सामण इभी न आईये रे/महाजन की आँख में खटके, मेरा जोबन गोरा,

रोज भेड़िया बनकर ताके, ज़मींदार का छोरा/बाके लगे दुनाली गोली,

सामण इभी न आइये रे।"[164]

एक तो सावन का महीना जिसमें अभाव के चलते जीना दूभर है। दूसरा उन महाजनों और भेड़ियों का डर, जिनके चलते दलित समाज की बहन-बेटियाँ असुरक्षित हैं। इस प्रकार के शोषण और अपमान के चलते दलितों के अन्दर आक्रोश की चेतना मुखरित होती है, जिसे निम्नलिखित कविता में देखा जा सकता है-

"तुम्हें क्यों शर्म नहीं आई

गल चुकी मोमबत्तियाँ

आज वह जंगल की आग है

बुझाए न बुझेगी

आग का दरिया बन जाएगी

उसके तेवर पहचानो

सँभालो पुराने जेवर

थान के थान परिधान

नंगेपन पर उतरकर

पुरुष के सर्वस्व को नकार कर

नीचा दिखाएगी।"[165]

---

[164] डॉ. एन. सिंह, दलित कविता के प्रतिमान, पृष्ठ संख्या-269

[165] ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या-86

दलित साहित्य में जो बिम्ब उभरकर सामने आते हैं, उनमें रोजमर्रा के उपयोगी वस्तुओं की अधिकता होती है। जिसका उपयोग वह खेत-खलियान या जीविकोपार्जन के लिए करता है। झाड़ू, बाल्टी, तसला, हँसिया, खुरपी, रापी, सुतारी इत्यादि। सबसे प्रमुख बात तो यह है कि दलितों की पहचान जिन वस्तुओं से की जाती है वह उसे ही अपना हथियार बना रहा है। इस विषय में मोहनदास नैमिशराय की 'झाड़ू और कलम' ज्यादा प्रासंगिक है–

"कल मेरे हाथ में झाड़ू था

आज कलम

कल झाड़ू से मैं तुम्हारी गन्दगी हटाता था

आज कलम से।"[166]

2.3.2.2 'दलित' कविता के प्रतीक

प्रतीक जिसका उपयोग किसी विचार को प्रभावशाली तरीके से व्यक्त करने के लिए किया जाता है। यह दो शब्दों से मिलकर बना है वे हैं: प्रति (ओर)+ इक (झुका हुआ या प्रवृत्त), अर्थात् किसी वस्तु की ओर अभिमुख या झुका हुआ। चूंकि दलित समाज का सम्बन्ध सदियों से श्रमिक वर्ग से रहा है इसलिए वे किसी चुनौती से मुख नहीं मोड़ते हैं। कविता में एक ऐसी स्त्री का वर्णन किया गया है जो दलित समाज की कर्मठ महिला का प्रतीक है।

"अब वृक्ष की कटी-छँटी टहनियाँ

पुन: प्रस्फुटित होने लगी हैं

द्रुत गति से

[166] कँवल भारती, दलित निर्वाचित कविताएँ, पृष्ठ संख्या-111

बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में।"[167]

भारतीय दलित साहित्य अकादमी के अध्यक्ष तथा हिंदी दलित कविता के सुप्रसिद्ध हस्ताक्षर डॉ. सोहनपाल 'सुमनाक्षर' ने लिखा है कि-

"फूलन/दलित समाज का प्रतीक है

चाहे उसे कितना ही बदनाम करो

तोहमत धरो/ वह/ हमारी ही नहीं/

सारी नारी जाति की शौर्यगाथा है।"[168]

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि दलित रचनाकारों ने साहित्य से भिन्न प्रतीकों को चुना है, जिनके मायने ही भिन्न है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इस विषय में लिखा है कि "दलित कविता में 'पेड़', 'लोकतंत्र', 'भेड़िए', 'जंगली सूअर', 'कुत्ते' शोषण और दमन, गुलामी के प्रतीक हैं। सामाजिक जीवन की घोर अमानुषिकता को रेखांकित करते हैं।"[169] समाज में जगह-जगह आए दिन शोषण और उत्पीड़न होता रहता है इसलिए चुने हुए यह प्रतीक ब्राह्मणवाद का खात्मा चाहते हैं। दलित रचनाकारों को यह आशा है कि यह एक दिन अवश्य मिटेगी। इस विषय में निर्मला पुतुल की यह कविता प्रासंगिक है-

"आग फैलेगी धीरे-धीरे/आदमी के जंगल में

और जल उठेंगे खामोश अचल खड़े पेड़

योग समाधि लिए बैठा बरगद भी

---

[167] ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या-84

[168] डॉ. एन. सिंह, दलित साहित्य के प्रतिमान, पृष्ठ संख्या-274

[169] ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या-85

नहीं बचेगा हमारी लपटों से ।"[170]

2.3.2.3 'दलित' कविता के मिथक

मिथकों का इतिहास बहुत प्राचीन है। इसने मानव सभ्यता के विकास को समय-समय पर प्रभावित किया है। 'मिथक' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'मिथ' शब्द से हुई है। 'मिथ' में 'क' प्रत्यय जोड़कर मिथक बनाया गया है। संस्कृत में 'मिथ' शब्द से दो अर्थों का प्रकटीकरण होता है। एक तो प्रत्यक्षज्ञान के लिए, दूसरा तत्वों के परस्पर मेल मिलाप के लिए।

वेद-पुराण, 'महाभारत'-गीता, 'मनुस्मृति', 'रामायण', 'रामचरितमानस' आदि के अतिरिक्त अन्य ग्रंथ, बौद्ध, जैनधर्म और इतिहास में भी मिथक का चित्रण मिलता है। यह सदियों पुरानी एक ऐसी संरचना है, जिसका इस्तेमाल करते-करते मनुष्य उसमें 'यथार्थ' की तलाश करने लगता है। ब्रिटानिका विश्वकोश के अनुसार "मिथक को एक 'पवित्र' इतिहास की सत्ता दी गयी है जो आदिकाल की एक घटना है जो अप्राकृतिक व्यक्तियों के कायाकल्प द्वारा 'यथार्थ' के अस्तित्व को रेखांकित करती है ।"[171] इन्हीं मिथकों ने भ्रम भी बहुत फैलाए हैं। ईश्वर, स्वर्ग, नर्क, ऊँच-नीच, छोटा-बड़ा आदि का रोचक और अद्भुत संसार जो कहीं न कहीं मिथक से प्रभावित हैं। शायद यही कारण है कि ब्राह्मणवाद की जड़ आज तक मिटी नहीं। दलित साहित्य उन परम्परागत मिथकों से टकराता है, जिनके चलते उन्हें अपमानित होना पड़ा। तदोपरांत सदियों से दबाए गए अपने पुरखों की पड़ताल करते हुए उस परम्परा के प्रति आक्रोश व्यक्त करते हैं। मनुवादी व्यवस्था जिसने उनका जीवन पशुओं से बदतर बना दिया। उन्हें मिटाकर नए समाज निर्माण का आह् वान करता है। मिथक के विषय में प्रेमसिंह का मानना है कि "मनुवादी

---

170 डॉ. एन. सिंह, दलित साहित्य के प्रतिमान, पृष्ठ संख्या-273

171 डॉ. वीरेंद्र सिंह, मिथक दर्शन का विकास, प्र. सं : 1984, पृष्ठ संख्या-4

ब्राह्मणवादी परम्परा में दलितों की पशुओं से भी हीन स्थिति बनाये रखने में धार्मिक, सांस्कृतिक, मिथकों की भूमिका सबसे अहम् है। यही कारण है कि प्रत्येक दलित लेखक अपनी रचनाओं और विचारों में उदात्त से उदात्त कहे और माने जाने वाले मिथकों पर प्रहार करता है। ईश्वर से लेकर करोड़ों देवी-देवताओं तक दलित लेखकों के प्रहार के निशाना बने हैं। एक वाक्य में कहें तो दलित साहित्य मिथकमार साहित्य है।"[172] दलित रचनाकार सदियों से समाज और हिंदी साहित्य में व्याप्त ईश्वर, आत्मा-परमात्मा आदि के रहस्य को उठाकर कर उन्हें तर्क के कसौटी पर कसते हुए इस पर विचार करने की वकालत करते हैं।

भारतीय समाज में 'धर्म' एक बहुत बड़ी शक्ति के रूप में व्याप्त है। जिसके पीछे लोग आँख बंद करके भागते हैं। परन्तु दलित रचनाकार उससे निर्भीकता पूर्वक टकराकर चोट करते हैं। जिसका उल्लेख डॉ. एन. सिंह ने इस प्रकार किया है कि "दलित साहित्यकारों ने हिन्दू धर्म के लगभग सभी मिथकों पर चोट की है और उन्हें तोड़ा हैं। सबसे पहले ईश्वर से ही प्रारम्भ करते हैं। ईश्वर एक ऐसा मिथक है जिस पर धर्म का पूरा कारोबार अवलंबित है। अस्पृश्यता को ईश्वरीय विधान बताकर दलितों का उत्पीड़न शताब्दियों से होता रहा है। अत: सबसे पहली चोट दलित साहित्यकार ने ईश्वर पर ही की है। वरिष्ठ कवि 'मोहनदास नैमिशराय', अपने कविता के माध्यम से 'ईश्वर की मौत' की घोषणा इस प्रकार करते हैं-

ईश्वर की मौत/ उस दिन होती है

जब बनता है कोई मंदिर या मठ

जहाँ बैठता है कोई

[172] डॉ. एन. सिंह, दलित साहित्य के प्रतिमान, पृष्ठ संख्या-279

ठग/लुटेरा/ गुमराह करने वाला

ईश्वर की मौत उस दिन होती है

जब किसी महिला को बनना पड़ता है

देवदासी, जाना पड़ता है वेश्यालय।"[173]

ईश्वर जिसका भय दिखाकर दलितों का शोषण किया गया। वे पहला सवाल उन्हीं को सम्बोधित करके करते हैं, जिन्हें साहित्य का प्रमुख नायक माना गया था। परन्तु दलित समाज का उन्होंने बड़ा नुकसान किया। किसी खास वर्ग द्वारा निर्धारित मिथक दूसरे समाज के लिए घातक रहे तो वह कैसे सर्वमान्य हो सकता है।

दलित कवियों ने अपनी रचनाओं में मिथकों का प्रयोग बेशक किया है। परन्तु ब्राह्मणवादी व्यवस्था से भिन्न है। कर्ण, एकलव्य, शम्बूक जिनका मनुवादी समाज ने शोषण किया, वही दलित समाज के नायक हैं। मर्यादा पुरूषोत्तम राम, गुरू द्रोणाचार्य आदि पौराणिक मिथकों को प्रतिनायक की भूमिका में रखा गया है। इसे कँवल भारती की इन पक्तियों से समझा जा सकता है-

"शम्बूक (हम जानते हैं)

तुम उलटे होकर तपस्या नहीं कर रहे थे

जैसा कि वाल्मीकि ने लिखा है।

तुम्हारी तपस्या एक आन्दोलन थी

जो व्यवस्था को उलट रही थी।"[174]

[173] डॉ. एन. सिंह, दलित साहित्य के प्रतिमान, पृष्ठ संख्या-281

कवि मलखान सिंह ने स्पष्ट रूप में चेतावनी दी है कि-

“देखो !

बंद किले से बाहर

झाँक कर तो देखो

बरफ पिघल रही है।

बछेड़े मार रहे हैं फुर्री

बैल धूप चबा रहे हैं

और एकलव्य

पुराने जंग लगे तीरों को

आग में तपा रहा है।”[175]

‘डॉ. एन. सिंह’ जैसे प्रबुद्ध विद्वान ‘अभिमन्यु’ में अपनी मुक्ति कैसे देख लेते हैं-

“आखिर!

ऐसा क्या गुनाह किया था तुमने

कि जिसकी सजा

अब तक भुगत रहा हूं मैं

इस एक झोपड़ी की जमीन के रूप में

लिए गए कर्ज का

ब्याज ही नहीं चुका पाई

तीन पीढ़ियां!

अंगूठे का निशान लगाकर

जमींदार की बही में

---

[174] डॉ. रामचंद्र, डॉ. प्रवीण कुमार (सम्पा), दलित चेतना की कविताएं, पृष्ठ संख्या-119

[175] मलखान सिंह, सुनो ब्राह्मण, पृष्ठ संख्या-102

बंधक बनती रहीं

इस झोपड़ी में कब पैदा होगा

अभिमन्यु।"[176]

अभिमन्यु 'महाभारत' का एक ऐसा मिथकीय चरित्र है जिसने माँ के पेट में ही सारी युद्ध कला सीख ली थी और आवश्यकता पड़ते ही जंग के मैदान में कूद गया था। परन्तु तब से लेकर आज तक समाज में कई-कई पीढ़ियां बर्बाद हो गईं लेकिन दूसरा अभिमन्यु नहीं पैदा हुआ।

2.3.2.4 'दलित' कविता के रस और छन्द

रस काव्य के ऐसे तत्व को कहा जाता है, जिसमें आनंद की अनुभूति हो। परन्तु दलित कविता एक ऐसी कविता हैं, जिसमें आनंद जैसे कोई तत्व नहीं पाए जाते, इसलिए इस कविता में रस का अभाव होता है। माता प्रसाद ने लिखा है कि "दलित साहित्यकार अपने या अपने समाज के दलन, उत्पीड़न, शोषण, अपमान, महिलाओं के साथ बलात्कार, व्यभिचार की बातें सामने रखकर उसके विरोध, प्रतिरोध के लिए उकसाता है, इसलिए उसकी भाषा में कड़वाहट, रोष, क्रोध, चिल्लाहट, आन्दोलन और संघर्ष को बढ़ाने वाले शब्द होते हैं। ऐसी भाषा में रस, छन्द, और अलंकार का अभाव होता है। उनकी कविता में छन्द का नकार होता है।"[177] ज्वलंत सवाल यह है कि दलित आलोचक रस विहीन कविताओं की वकालत क्यों कर रहे हैं? क्या उन्हें रस-सिद्धांत का ज्ञान नहीं है। तब उसका जवाब देना जल्द बाजी होगी, क्योंकि हिंदी साहित्य के आलोचक और दलित साहित्य के आलोचकों के जीवन में विभिन्नता है। दोनों के जीवन में जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत तक अंतर है। मोहनदास नैमिशराय ने अपनी पुस्तक 'दलित साहित्य' में रस के विषय में उल्लेख किया है कि "यदुनाथ थत्ते ने यह घोषणा की

---

[176] डॉ. रामचंद्र, डॉ. प्रवीण कुमार (सम्पा), दलित चेतना की कविताएं, पृष्ठ संख्या-99

[177] चौथीराम यादव, उत्तरशती के विमर्श और हाशिये का समाज, पृष्ठ संख्या-40

है कि 'आचार्य जावडेकर द्वारा 'क्रांति' को दसवाँ रस माने जाने के क्रम में ही 'आक्रोश' को भी ग्यारहवाँ रस माना जाना चाहिए।"[178] '

अगर दलित साहित्य में 'आक्रोश' को रस माना जायेगा तो उत्पीड़न, 'विद्रोह', 'शोषण' को कहाँ रखा जायेगा? मोहनदास नैमिशराय ने इसको इस प्रकार लिखा है कि "दलित साहित्य में 'आक्रोश' को रस मानने के बाद 'विद्रोह' को भी रस मानना पड़ेगा, क्योंकि दलित साहित्य ने 'विद्रोह' का नए मूल्य के रूप में निर्माण किया है। इस प्रकार रसों की संख्या बढ़ाने से क्या लाभ होगा? मूलत: रस की संख्या बढ़ाना क्या प्रचलित रसचर्चा को अपूर्ण सिद्ध करना नहीं होगा? माधव आचवल का मानना है कि "यह कौन सा रस है-यह रसास्वादन करते हुए, धीरे-धीरे घूँट भरते हुए और हर घूँट के साथ उसका स्वाद, स्पर्श, गंध, मुँह में घोलते हुए, उसकी 'रसमयता' चखते हुए ही जाना जा सकता है।"[179] किसी भी नई स्थापना के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण होता है, उसका परिवेशगत अध्ययन, जहाँ से रचनाएं निकलकर आती है। दलित साहित्य का परिवेश सर्वविदित है जिसमें कला और सौन्दर्य के लिए कोई जगह नहीं हैं। इसलिए ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा लिखित यह विचार महत्त्वपूर्ण है-"परम्परिक सौन्दर्य शास्त्र पंडित जगन्नाथ के 'वाक्यं रसात्मकं काव्यं' को सूत्र की तरह दोहराता है जबकि दलित लेखकों की दृष्टि में साहित्य आचार्यों द्वारा निर्मित 'रस' अधूरे एवं पूर्वग्रहों से पूर्ण हैं। दलित साहित्य विद्रोह और नकार के संघर्ष से उपजा है। घोषित रसों के द्वारा दलित रचनाओं के इस केन्द्रीय भाव का मूल्यांकन नहीं हो सकता है।"[180]

---

[178] मोहनदास नैमिशराय, दलित साहित्य, पृष्ठ संख्या-244

[179] मोहनदास नैमिशराय, दलित साहित्य, पृष्ठ संख्या-244

[180] ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या-48

दलित कविता की पहचान उसके 'आक्रोश' और 'विद्रोह' की वजह से अवश्य है, लेकिन उसमें केवल कुछ लेखों के माध्यम से रस का निर्धारण करना उचित प्रतीत नहीं होता।

छन्द-: छन्द का स्थान कविता में प्रमुख है लेकिन दलित कविता में इसका स्थान गौण है। स्पष्ट शब्दों में कहें तो 'दलित कविता छंद-मुक्त हैं। परन्तु वर्तमान में दलित साहित्य में कई ऐसे रचनाकार हैं जिन्होंने छन्दबद्ध रचना की है। इस विषय में डॉ. एन. सिंह ने लिखा है कि "हिंदी दलित साहित्य के प्रथम दलित कवि संत रैदास ने अपने काव्य में दोहों तथा पदों का प्रयोग किया था, लेकिन औपचारिक शिक्षा के अभाव में उन्हें छन्द शास्त्र का ज्ञान होना सम्भव नहीं था। आगे बढ़ने से पूर्व रैदास के दोहों को देख लेना उचित होगा-

जा देष्यां घिन उपजै, नरक कुण्ड मंह वास।
प्रेम भागति सौ उबरै, प्रकट जन रैदास।।

*   *   *   *   *

रैदास तूं कांवचि फलि, तुझ हूँ न छवै कोई।
ते निज नांव न जानियाँ, भला कहाँ ते होई।।"[181]

माता प्रसाद जिन्होंने कहा था कि दलित कविता में छन्द का अभाव रहता है, उन्होंने स्वयं दोहों की रचना की है। "दलित कवि में पद तो किसी और कवि ने नहीं लिखे, लेकिन दोहों की रचना माताप्रसाद ने की है। उनकी पुस्तक 'राजनीति की अर्द्धसतसई' में उनके 350 दोहे संकलित हैं, जो शास्त्रीय दृष्टिकोण से भी ठीक हैं-

"मनुष न पैदा होत यहाँ, जाति पेट से आय।
कंटक बनि वह गड़ि रही, मित्र कष्ट में पाय।।"[182]

---

[181] डॉ. एन. सिंह, दलित साहित्य के प्रतिमान, पृष्ठ संख्या-274

दलित कविताओं में रस और छन्द की अनिवार्यता नहीं है, फिर भी छन्द के विविध रूप देखे जा सकते हैं। स्वामी अछूतानंद ने गज़ल, माता प्रसाद ने कवित्त और छन्द, रघुनाथ प्यासा ने नवगीत में कविताएँ रची हैं। "मुक्त छन्द का प्रयोग करने वाले कवियों में- सर्व श्री मोहनदास नैमिशराय, जयप्रकाश कर्दम, ओमप्रकाश वाल्मीकि, सी.बी. भारती, चन्द्रकुमार वरठे, पुरूषोत्तम सत्यप्रेमी, सूरजपाल चौहान, श्यौराजसिंह 'बेचैन' आदि के नाम लिए जा सकते हैं। डॉ. प्रेमशंकर एक सिद्धहस्त दलित कवि हैं। उनकी कविता का एक अंश यहाँ प्रस्तुत है-

"हम मानसिक शोषण के शिकार
तुम्हारी दानवी शक्तियों को एवं
चालाकियों को देखते रहे
महसूसते रहे/ युगों से/
हमारे हाथ में कलम
मुख में जीभ/ और हाथ बन्धनहीन नहीं थे।"[183]

निष्कर्ष

दलित आलोचना वहीं से शुरू होती है, जहाँ से बुद्ध ने वर्णवादी व्यवस्था का खंडन किया। आधुनिक काल में कुछ निबंध और लेखों से दलित आलोचना की शुरूआत होती है। डॉ. एन. सिंह की पुस्तक 'दलित साहित्य के विविध आयाम' पहली पुस्तक है, जिसमें लिखे लेखों से दलित कविता आलोचना की शुरूआत होती है।

---

[182] डॉ. एन. सिंह, दलित साहित्य के प्रतिमान, पृष्ठ संख्या-274
[183] डॉ. एन. सिंह, दलित साहित्य के प्रतिमान, पृष्ठ संख्या-277

अब तक इस क्षेत्र में दर्जनों पुस्तकें आ चुकी हैं, इनमें माताप्रसाद की पुस्तक ‘हिंदी काव्य में दलित काव्यधारा’, डॉ. एन. सिंह की ‘दलित साहित्य चिंतन के विविध आयाम’, और ‘दलित साहित्य के प्रतिमान’ कँवल भारती ‘दलित कविता का संघर्ष’, और ‘दलित विमर्श की भूमिका,’ ओमप्रकाश वाल्मीकि ‘दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, आदि उल्लेखनीय पुस्तकें और आलोचक हैं।

दलित कविता में प्रतीक के रूप में शम्बूक, एकलव्य, कर्ण, फूलन देवी, झलकारी बाई, उदादेवी पासी आदि का प्रयोग किया गया है, जबकि राम, कृष्ण, गुरु द्रोणचार्य और अन्य पौराणिक पात्रों को प्रतिनायक के रूप में दिखाया गया है।

दलित साहित्य में ‘नौ’ रसों की संख्या का अभाव है किन्तु कुछ रस विषयक लेखों में ‘क्रांति, आक्रोश, ‘विद्रोह’ नामक रसों पर पर्याप्त बहस मिलती है। छन्दबद्ध कविता रचने वालों में स्वामी-अछूतानंद और माता प्रसाद का नाम उल्लेखनीय है।

तृतीय अध्याय

हिंदी दलित कविता आलोचना की वैचारिक पृष्ठभूमि

प्रस्तावना

विचारधारा और साहित्य का अटूट सम्बन्ध रहा है। इसलिए साहित्य में विचारधारा का प्रभाव समयानुसार अपने परिवर्तित स्वरूपों के साथ जुड़ा रहा है। हिंदी साहित्य पर सबसे अधिक प्रभाव 'संस्कृत' साहित्य का रहा है क्योंकि इसे हिंदी भाषा की 'जननी' कहा जाता है। परन्तु आधुनिक काल तक आते-आते इन विचारों का प्रभाव कालक्रमानुसार मद्धिम पड़ा और एक समय ऐसा भी आया जब साहित्य और विचारधारा के अंत की घोषणा कर दी गई। परन्तु 19 वीं शताब्दी में दलित साहित्य और दलित आलोचना ने महात्मा बुद्ध, महात्मा फुले और डॉ. अम्बेडकर के विचारों के आधार पर एक ऐसे विशाल साहित्य का निर्माण किया, जिसमें उपेक्षित समुदाय को नया मार्ग मिला और साहित्य में पुन: वैचारिक बहस की शुरूआत हुई। इस अध्याय में संस्कृत साहित्य की वैचारिकी से लेकर आधुनिक काल में दलित साहित्य तक वैचारिक प्रभाव का अध्ययन और विश्लेषण किया गया है।

3.1.1. संस्कृत कविता आलोचना की वैचारिकी

'संस्कृत' साहित्य को सबसे प्राचीन और समृद्ध साहित्य माना जाता है। संस्कृत भाषा में वेद-पुराण, रामायण, महाभारत के अतिरिक्त अनेक दार्शनिक और धार्मिक विश्व प्रसिद्ध ग्रंथों की रचना हुई है। इसकी उत्पत्ति के विषय में यह कहा जाता है कि "संस्कृत' शब्द की व्युत्पत्ति सम् उपसर्ग पूर्व कृ धातु के साथ क्त प्रत्यय के योग से होती है, जिसका अर्थ है-परिमार्जन किया हुआ, संस्कार किया हुआ, अथवा परिष्कृत, अप्रकृत। इस प्रकार संस्कृत परिनिष्ठित तथा नियमबद्ध भाषा है। संभवत: देवनागरी लिपि में लिखे जाने

के कारण देवों के द्वारा व्यवहृत होने के कारण इसे देव भाषा भी कहा गया है। यहाँ 'देवों' से तात्पर्य आर्यों से है।"[184]

संस्कृत आलोचना के बीज शब्द आधुनिक भारतीय भाषाओं ने यथावत् अपना लिए हैं, इससे इस भाषा की वैचारिक निरंतरता और शक्ति का अंदाजा लगाया जा सकता है। इस सन्दर्भ में यह युक्ति प्रासंगिक है कि "विश्व में केवल दो ही संस्कृतियाँ ऐसी हैं, जिन्होंने साहित्यिक सैद्धान्तिकी के बारे में गंभीर चिंतन किया है। इसमें से एक पश्चिमी संस्कृति के समकालीन साहित्यिक विचारों का स्रोत व आधारभूमि ग्रीक चिन्तन में मिलती है, जिसकी करवटें लैटिन में लिखित रोमन तथा मध्यकालीन ईसाई चिंतन में पाई जाती हैं। दूसरी, मुख्यत: संस्कृत और तमिल आलोचना सिद्धांत पर आधारित बहुभाषी भारतीय परम्परा है, जो लंबे समय में विभिन्न चरणों में विकसित होकर बाद में वर्तमान आधुनिक भारतीय भाषाओं के साथ विभिन्न समुदायों के 'मौखिक' साहित्यों में भी पाई जाती है, जिन्हें आजकल संरक्षक-भाव से आदिवासी साहित्य भी कहा जाता है।"[185] इससे यह स्पष्ट होता है कि बाद में विकसित हुई भाषाओं, सभ्यताओं एवं साहित्यिक, सांस्कृतिक विकास में इसका विशेष योगदान रहा है। यही नहीं, इसके उदेश्य और प्रयोजन भी बहुत स्पष्ट रहे हैं। "काव्य को परिभाषित करने वालों में भामह प्रमुख हैं। भामह ने शब्द और अर्थ की सहितता को काव्य कहा है-'शब्दार्थो सहितो काव्यम्'। शब्द और अर्थ एक दूसरे पर आश्रित हैं।... कुंतक ने आनन्द प्रदान करने वाली व्यवस्थित रचना को काव्य कहा है।"[186]

आचार्य मम्मट के अनुसार काव्य-प्रयोजन हैं-

---

[184] egyankosh.ac.in/bitstream/123456789/13945/1/Unit-2.pdf, Access date: 28/11/2020

[185] अवधेश कुमार सिंह, संस्कृत आलोचना की भूमिका, पृष्ठ संख्या-7

[186] अवधेश कुमार सिंह, संस्कृत आलोचना की भूमिका, पृष्ठ संख्या-38

"काव्य यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदेशिवेतरक्षतये

सद्य:परनिवृत्तये कान्तासम्मिततयोपदेश युजे।।

काव्य यश के लिए, धन के लिए, व्यवहार ज्ञान के लिए, अकल्याण नाश के लिए, शीघ्र ही पराशांति के लिए और कान्ता सम्मित उपदेश के लिए होता है।"[187]

संस्कृत काव्य के इन प्रयोजनों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उस समय काव्य यश और आनन्द तक ही सीमित था। इस विषय में अवधेश कुमार सिंह ने अपनी पुस्तक 'संस्कृत आलोचना की भूमिका' में लिखा है कि "राजशेखर ने परम्परागत मत का वर्णन करते हुए काव्य उत्पत्ति के जिन स्रोतों का उल्लेख किया है, वे हैं: "(1) वेद, (2) स्मृति अर्थात धर्मशास्त्र, (3) इतिहास, (4) पुराण (5) प्रमाण विद्या अर्थात दर्शन, (6) राजसिद्धांत वेदी अर्थात कला/समाज, राजनीति, अर्थ, काम सम्बन्धी विधाएँ (जैसे अर्थशास्त्र, नाट्यशास्त्र तथा काव्यशास्त्र), (7) लोक अर्थात व्यावहारिक ज्ञान, (8) विरचना अर्थात् कविता, नाटक, कथा, महाकाव्य आदि रचनाएं, (9) प्रकीर्ण अर्थात् चौसठ कलाएँ तकनीकि विधाएँ (जैसे आयुर्वेद, ज्योतिष, वृक्षशास्त्र आदि) यहाँ सवाल खड़ा होता है कि जिन सभ्यताओं में वेद, स्मृति, पुराण तथा विधाएँ नहीं होगी उनके यहाँ काव्य की उत्पत्ति तथा सृजन अनुभव, उसका अर्थ-निर्धारण तथा आनंद मिलेगा कि नहीं?"[188] समय और काल के अनुसार किसी भी कृति की उपयोगिता, विषय की प्रासंगिकता में परिवर्तन होना स्वाभाविक है इसलिए हमेशा आनंद की तलाश भी व्यर्थ है। वह इसलिए क्योंकि काव्य के प्रयोजन सर्वथा सीमित नहीं हैं।

---

[187] सच्चिदानंद चतुर्वेदी, भारतीय काव्य शास्त्र (एक शिक्षक के क्लास-नोट्स), पृष्ठ संख्या-5

[188] अवधेश कुमार सिंह, संस्कृत आलोचना की भूमिका, पृष्ठ संख्या-60

संस्कृत साहित्य और संस्कृत काव्य के इतना समृद्ध होने के बावजूद यह भी स्पष्ट है कि यह जनसमुदाय से दूर रही है। मनुस्मृति के अनुसार दलित तो इस भाषा को सुन भी नहीं सकता था। मैनेजर पाण्डेय ने इस विषय में लिखा है कि "संस्कृत काव्य और काव्यशास्त्र दोनों अभिजन समाज के जीवन तक सीमित थे। इसलिए उनमें व्यापक समाज की चिंता कम है। कहीं-कहीं तो उस अभिजन समाज के बाहर स्थित व्यापक जनसमुदाय के प्रति असम्मान का भाव दिखाई देता है।"[189] इस विषय में अगर प्रमाण देना हो भरतमुनि का 'नाट्यशास्त्र' सबसे सटीक बैठता है क्योंकि उन्होंने स्पष्ट रूप में कहा है कि शूद्र आदि वेदों का अध्ययन नहीं कर सकते थे। इसलिए पंचम वेद 'नाटक' की रचना की गई है-

"न वेद व्यवहारोऽयं संश्राव्य: शूद्रजतिषु।
तस्मात् सृजापरं वेदं पञ्चमं सार्ववर्णिकम्।।"[190]

3.1.2. हिंदी कविता आलोचना की वैचारिकी

साहित्य का स्वरूप प्रारम्भिक अवस्था से लेकर अब तक युगानुरूप, अनगिनत बार परिवर्तित हुआ है और भविष्य में होता रहेगा। यह महज कथन नहीं बल्कि यथार्थ है कि साहित्य का विकास, सदैव परिवर्तित होने में ही निहित है। हिंदी कविता आलोचना की वैचारिकी भी युगानुरूप समयानुसार परिवर्तित हुई है। यह परिवर्तन आदिकाल (वीरगाथा काव्य), भक्तिकाव्य, रीतिकाल की मध्ययुगीन प्रवृत्तियों से भिन्न आधुनिक युग में भी दिखाई देता है। आदिकाल के सन्दर्भ में विश्वनाथ त्रिपाठी ने लिखा है कि "आदिकाल विविध और परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों का काल है। हर्षवर्धन के बाद किसी

---

[189] मैनेजर पाण्डेय, साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, पृष्ठ संख्या-55
[190] हरिनारायण ठाकुर, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या-508

ने केन्द्रीय सत्ता स्थापित नहीं की। युद्ध या बाहरी हमलों का कोई प्रभाव जनता पर नहीं पड़ा था। भूमि और नारी का हरण राजाओं पर लिखे गए काव्यों के विषय हैं। सामंतवादी व्यवस्था में भूमि सम्पत्ति का स्रोत होती है।"[191] मोटे तौर पर यही कहा जा सकता है कि इस युग में काव्य का विषय सामान्य जनमानस से इतर राजदरबार तक सीमित था जहाँ राजा-रानी अपने आपसी कलह में उलझे हुए थे। इस विषय में जगनिक की काव्य पंक्ति बहुत सटीक है कि-

"बारह बरिस लै कूकर जीऐं, औ तेरह लै जिऐं सियार।
बरिस अठारह छत्री जिऐं, आगे जीवन को धिक्कार।"[192]

परन्तु आगे चलकर 'मध्यकाल' में यह धारणा परिवर्तित हो जाती है। इस काल को जिसे 'भक्तिकाल' भी कहा जाता है, यह साहित्य की दृष्टि से इतना समृद्ध था कि इसे 'स्वर्ण युग' नाम से परिभाषित किया गया। वह भक्ति भावना के समीप अधिक रहा है। "भक्तिकाव्य भक्ति आन्दोलन पर आधारित है। यह आन्दोलन सामाजिक और वैचारिक है। भक्ति में धर्म साधना का नहीं, भावना का विषय बन गया है। इसीलिए उसे धर्म का रसात्मक रूप कहा जाता है।"[193]

3.1.3. **छायावादी-कविता आलोचना की वैचारिकी**

छायावाद का समय मोटे तौर पर 1918 ई. से 1936 ई. तक माना जाता है। इस समय हिंदी कविता में नई प्रवृत्ति का उदय हुआ जो पूर्व में चली आ रही प्रवृत्तियों से भिन्न थी। जिस पर तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव अधिक था। पूरी दुनिया को प्रथम

---

[191] विश्व नाथ त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास, पृष्ठ संख्या-1
[192] आचार्य रामचंद शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ संख्या-46
[193] विश्वनाथ त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास, पृष्ठ संख्या-11

विश्वयुद्ध (1914 से 1918) ने प्रभावित किया। देश में ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ आन्दोलन चल रहे थे और उसी समय हिंदी साहित्य में इस नवीन प्रवृत्ति का उदय हो रहा था। जिसके प्रमुख चार स्तम्भ थे जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' और महादेवी वर्मा। कविता के विषय में पन्त ने कहा है कि "कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी है।"[194] और निराला ने कहा है कि "गद्य जीवन-संग्राम की भाषा है' और कविता परिवेश की पुकार है'।"[195]

छायावाद की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि इसमें नवीन प्रवृत्तियों के उदय के साथ-साथ राष्ट्रीय जागरण की चेतना और रूढ़ियों से मुक्ति की झलक है। इस विषय में नामवर सिंह ने अपनी पुस्तक 'छायावाद' में लिखा है कि "छायावाद वस्तुत: कई काव्य प्रवृत्तियों का सामूहिक नाम है और वह उस राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है जो एक ओर पुराने रूढ़ियों से मुक्ति पाना चाहता था और दूसरी ओर विदेशी पराधीनता से।"[196] छायावाद के उदय के समय देश ब्रिटिश हुकूमत के शिकंजे में फँसा हुआ था। इसलिए विदेशी हुकूमत से लड़ने के लिए राष्ट्रीय चेतना का होना स्वाभाविक था।

इस युग की कविता-वैचारिकी किस प्रकार की थीं यह समझने के लिए उस युग की प्रवृत्तियों का अध्ययन करना आवश्यक है। छायावादी कवियों ने रहस्यवाद, प्रकृति-प्रेम और व्यक्तिगत कविताएँ लिखी हैं। जिसमें हम 1.वैयक्तिकता 2.जिज्ञासा 3.प्रकृति-प्रेम 4.नारी स्वतंत्रता की भावना 5.राष्ट्रीय स्वाधीनता एवं शक्ति का काव्य 6.कला पक्ष आदि प्रवृत्तियों को देखते हैं।

[194] विश्वनाथ त्रिपाठी, हिन्दी आलोचना, पृष्ठ संख्या-89

[195] विश्वनाथ त्रिपाठी, हिन्दी आलोचना, पृष्ठ संख्या-90

[196] विश्वनाथ त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास, पृष्ठ संख्या-128

इस युग में 'स्व' और 'मैं' की प्रवृत्ति दिखाई देती है जो स्वर भक्ति काल में सुनाई पड़ा था। इस सन्दर्भ में विश्वनाथ त्रिपाठी ने लिखा है कि "छायावादी काव्य ने निर्वैयक्तिकता का आवरण उतार फेंका है। छायावादी कवि निजी ढंग से बातें करता है, पाठक आत्मीय बनकर। वह साहसपूर्ण काव्य में व्यक्त अनुभूतियों को अपनी अनुभूतियाँ कहकर प्रस्तुत करता है। इस कविता में 'मै' 'मेरा उसी प्रकार सुनाई देने लगा जिस प्रकार भक्तिकाल में सुनाई पड़ा था। निराला ने लिखा- मैंने 'मै' शैली अपनाई या देखा उस दृष्टि से। पन्त ने लिखा-बालिका मेरी मनोरम मित्र थी।"[197] महादेवी वर्मा ने भी तत्कालीन समाज और अपने जीवन की पीड़ा को व्यक्त करते हुए लिखा है कि-

"मै नीर भरी दुःख की बदली!

स्पंदन में चिर निस्पंदन बसा

क्रंदन में आहत विश्व हँसा।"[198]

इसी समय दलित साहित्य का प्रवेश भी धीरे-धीरे होने लगा था। डॉ. अम्बेडकर का उदय हो रहा था, हीराडोम की कविताएँ 'सरस्वती' पत्रिका में छपने लगी थीं और स्वामी अछूतानन्द का आन्दोलन शुरू हो गया था।

3.1.4. प्रगतिवादी-कविता आलोचना की वैचारिकी

प्रगतिवादी हिंदी कविता में पहली बार किसानों-मजदूरों के जीवन की अभिव्यक्ति दिखाई पड़ी। इस युग के विषय में डॉ. नामवर सिंह ने लिखा है कि "छायावाद के गर्भ से सन् 1930 के आसपास नवीन सामाजिक चेतना से युक्त जिस साहित्य धारा का जन्म हुआ उसे सन् 36 में प्रगतिशील साहित्य अथवा प्रगतिवाद की संज्ञा दी गयी और तब से

---

[197] विश्वनाथ त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास, पृष्ठ संख्या-128

[198] शम्भुनाथ सिंह एम.ए, छायावाद युग, पृष्ठ संख्या-105

इस नाम के औचित्य-अनौचित्य को लेकर काफी वाद-विवाद होने बावजूद के छायावाद के बाद की प्रधान साहित्य-धारा को प्रगतिवाद नाम से ही पुकारा जाता है ।"[199] प्रगतिवाद काव्य में शोषण और उत्पीड़न से मुक्ति के लिए सामूहिक प्रयासों का रेखांकन किया गया और बहस शुरू हुई की 'जनक्रांति' ही एकमात्र मुक्ति का रास्ता है । "प्रगतिवाद कवि शोषित में शक्ति देखता है, क्योंकि शोषण इतिहास की गति और सामाजिकता के विपरीत है । अत: प्रगतिवादी कवि को शोषित की संगठित शक्ति और भविष्य पर आस्था है-

"मैंने उसको जब-जब देखा-लोहा देखा

लोहा जैसा तपते देखा, ढलते देखा ।

मैंने उसको गोली जैसे चलते देखा ।"[200]

इस साहित्य के विषय में प्रसिद्ध दलित चिन्तक कँवल भारती का मानना है कि "प्रगतिशील साहित्य अपने मार्क्सवादी सरोकारों के कारण कहीं-कहीं अति यथार्थवादी हो गया है, जिस तरह वर्तमान दलित साहित्य अम्बेडकरवादी सरोकारों के कारण कहीं-कहीं आदर्शवादी हो गया है । लेकिन मार्क्सवादी दलित विमर्श जिस वर्ग चेतना का सवाल उठाता है, वह महत्त्वपूर्ण है और उसे ख़ारिज नहीं किया जा सकता ।"[201] साथ ही कँवल भारती यह भी चिंता जाहिर करते है कि "भारतीय समाज में एक महान क्रांति होगी यदि सारे गरीब मजदूर एक विशाल वर्ग-शक्ति बन जाएं । प्रगतिशील साहित्य का दलित विमर्श वस्तुत: इसी अर्थवत्ता का है । लेकिन मुख्य समस्या यही है कि सारे गरीब मजदूर

[199] नामवर सिंह, आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां, पृष्ठ संख्या-59
[200] विश्वनाथ त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास, पृष्ठ संख्या-137
[201] कँवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, पृष्ठ संख्या-121

और दलित एक विशाल वर्ग-शक्ति कैसे बनें, जबकि उनके बीच सामाजिक स्तर पर गहरे जातीय भेदभाव हैं? मार्क्सवादी चिंतकों को इस सवाल का जवाब देना ही होगा।"[202]

3.1.5. प्रयोगवादी कविता आलोचना की वैचारिकी

हिंदी साहित्य में प्रयोगवाद का उदय 1943 में होता है। जिस पर अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'तारसप्तक' का प्रभाव माना जाता है। प्रयोगवाद से पहले छायावाद, प्रगतिवादी साहित्य ने नवीन विषय वस्तुओं पर बहस खड़ी की थी। प्रयोगवादी कवियों ने अपने अनुभव के बल पर नई 'राह का निर्माण किया'। इस सन्दर्भ में अज्ञेय ने लिखा है कि "प्रयोगवादी कविता का मूल तत्व स्वभावत: ही काव्य विषयक प्रयोग अथवा अन्वेषण है। दावा केवल यही है कि ये सातों अन्वेषी हैं। काव्य के प्रति एक अन्वेषी का दृष्टिकोण उन्हें समानता के सूत्र में बाँधना है। बल्कि उनके एकत्र होने का कारण यह है कि वे किसी एक स्कूल के नहीं हैं, किसी मंजिल पर पहुँचे हुए नहीं हैं, अभी राही है, राहों के अन्वेषी।"[203] इस युग के कवियों का विश्वास नवीन अन्वेषण में अधिक था। इसलिए अपने पूर्ववर्ती परम्परा पर सन्देह भी किया। इसका उल्लेख डॉ. नगेन्द्र ने इस प्रकार किया है कि "इस वर्ग के कवियों का विश्वास है कि जीवन की तरह काव्य में भी एक चिर गतिशील सत्य है जिसकी वास्तविक साधना शोध, अन्वेषण एवं प्रयोग है। अतएव वस्तु और शैली दोनों ही के क्षेत्र में ये काव्य के पूर्ववर्ती उपादानों को सन्देह से देखते हैं और नवीन उपकरणों को आग्रहपूर्वक ग्रहण करते हैं।"[204]

---

[202] कँवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, पृष्ठ संख्या-121

[203] डॉ. नगेन्द्र, आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, पृष्ठ संख्या-114

[204] डॉ. नगेन्द्र, आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ , पृष्ठ संख्या-114

प्रयोगवादी कवि नई सोच के साथ अग्रसित हुए थे, जिसे छायावाद और प्रगतिवाद की प्रतिक्रिया के रूप में भी देखा जा सकता है। इस युग की प्रवृत्तियों को समझना अति आवश्यक है क्योंकि प्रयोगवाद समाज की तुलना में व्यक्ति को, विचारधारा की तुलना में अनुभव को, विषयवस्तु की तुलना में कलात्मकता को श्रेयस्कर मानता है। जिसकी प्रवृत्तियाँ निम्न रूप में हैं 1.विचारधारा से मुक्ति 2. सत्य के लिए निरंतर अन्वेषण 3. व्यक्तिवाद 4. यथार्थ-दृष्टि।

3.2 दलित कविता आलोचना की वैचारिकी

दलित कविता आलोचना की वैचारिकी निम्नलिखित विचारधाराओं से प्रभावित है। उनका अध्ययन और विश्लेषण यहाँ क्रमानुसार किया जा रहा है:-

3.2.1. महात्मा गौतम बुद्ध की वैचारिकी

गौतम बुद्ध ऐसे प्रथम महान व्यक्ति थे जिन्होंने समाज में हो रहे भेदभाव का जमकर विरोध किया। उनका समय छठी शती. ई. पू. माना जाता है। जिस समय समाज में अंधकार छाया हुआ था और लोग धर्म-जाति के नाम पर परस्पर बँटे हुए थे, उस समय उन्होंने भ्रमण कर, स्वानुभव के ज्ञान के बल पर समतावादी समाज की नींव रखी थी।

समाज विरोधी इस अमानुषिक व्यवस्था का विरोध सदियों से होता चला आ रहा है। हरिनारायण ठाकुर ने इसका उल्लेख इस प्रकार किया है कि "वैसे तो वैदिक हिंसा और सामाजिक भेदभाव के विरूद्ध समानता और मानवतावाद की क्षीण शुरूआत उपनिषद काल में ही हो गयी थी, किन्तु जाति प्रथा का प्रत्यक्ष विरोध बौद्ध काल में शुरू

होता है।"[205] दलित चेतना और दलित वैचारिकी दोनों पर बौद्ध दर्शन का गंभीर प्रभाव पड़ा है।

बौद्ध-धर्म सामाजिक समानता का धम्म है। इस धम्म ने शोषित-पीड़ित जनता में नवचेतना भरने का प्रयास किया है। साथ ही समाज की जनसाधारण जनता को पाखंड, जातिवाद के खिलाफ जाग्रत किया है। जातिवाद का विरोध सबसे पहले बुद्ध ने ही किया था। "जाति प्रथा को चुनौती देकर बुद्ध ने इस देश में एक महान आन्दोलन को आरंभ किया, जो प्राय: गाँधी और आंबेडकर तक चलता आया है और आज भी चल रहा है। उन्होंने मनुष्य की मर्यादा को यह कहकर ऊपर उठाया की कोई मनुष्य केवल ब्राह्मण-कुल में जन्म लेने से ही पूज्य नहीं हो जाता, न कोई शूद्र होने से पतित होता है। उच्चता और नीचता जन्म नहीं कर्म पर अवलंबित हैं।"[206] भारतीय समाज में जन्म के आधार पर अपने आप को श्रेष्ठता का दंभ भरने वालों के सामने बुद्ध ने चुनौती खड़ी कर दी थी। उन्होंने ज्ञान और तर्क की जो मशाल जलाई वह दिन-प्रति-दिन तीव्र होती गई। इसलिए दलित साहित्य गौतम बुद्ध की वैचारिकी से प्रभावित है।

दलित साहित्य ने बुद्ध के उन तार्किक विचारों को अपनाया है, जिससे समानता, भाईचारा का प्रसार होता है। डॉ. आंबेडकर के सामाजिक दर्शन का मूल आधार, जिसे दलित साहित्य का मूल माना जाता है, वह भी बुद्ध के चिंतन से लिया गया है। जयप्रकाश कर्दम ने लिखा है कि "डॉ. अम्बेडकर के विचारों की ऊर्जा के अभाव में दलित साहित्य की कल्पना नहीं की जा सकती। डॉ. अम्बेडकर ने अपने सामाजिक दर्शन को 'समता', 'स्वतंत्रता' और 'बंधुता' इन तीन शब्दों में निहित माना है और इसके

---

[205] हरिनारायण ठाकुर, दलित साहित्य का समाजशास्त्र, पृष्ठ संख्या-182
[206] हरिनारायण ठाकुर, दलित साहित्य का समाजशास्त्र, पृष्ठ संख्या-184

बारे में उन्होंने स्पष्ट किया है कि ये शब्द उन्होंने फ्रांस की राज्यक्रांति से नहीं लिए हैं बल्कि बौद्ध धर्म से लिए है।"[207]

3.2.2. मक्खलि गोसाल की वैचारिकी

बुद्ध और महावीर ने मानव-जीवन को विविध रूपों में प्रेरित किया और नैतिक तथा त्यागपूर्ण शैली अपनाने की शिक्षा दी। ठीक उसी बीच आजीवक (नास्तिक दर्शन) रहा है, जिसके प्रवर्तक मक्खलि गोसाल थे। उनके विषय में कैलाश दहिया ने लिखा है कि "आगे बढ़ने से पहले मक्खलि गोसाल के जीवन पर नज़र डाली जा सकती है। पता लगता है कि गोसाल, महावीर की आयु में सात साल बड़े थे। महावीर 599 ईसा पूर्व में पैदा हुए थे। इससे गोसाल का जन्म 606 ई.पू. होता है। उधर, बुद्ध 563 ई.पू. पैदा होते हैं, इस तरह गोसाल बुद्ध से 43 साल बड़े थे। तत्कालीन समय में यह दो पीढ़ियों का अंतर होता है।"[208]

आजीवक दर्शन स्पष्ट करता है कि सभी 'मनुष्य समान' हैं और 'पुनर्जन्म एक बहकावा' है, इसलिए इसमें विश्वास करना व्यर्थ है। गुलामी के जीवन को मिटाया जाना चाहिए, मरने के बाद कोई संसार नहीं होता इत्यादि। परन्तु सवाल यह है कि यह 'दर्शन' बीच के वर्षों में विलुप्त हो गया था, पर आधुनिक काल में डॉ. धर्मवीर आदि के चिंतन ने इस धर्म को पुनर्जीवित किया। "कबीर की आलोचना, आजीवक, दर्शन की खोज और दलित स्त्रियों के विरूद्ध अपनी अपमानजनक टिप्पणियों से चर्चा में आये डॉ. धर्मवीर

[207] जयप्रकाश कर्दम, इक्कसवीं सदी में दलित आन्दोलन, पृष्ठ संख्या-59

[208] Media morcha.com/entries/18/may/2020/ कैलाश दहिया

एक कवि हैं। जिसका पहला काव्य संकलन 1987 में 'हीरामन' नाम से प्रकाशित हुआ था।"[209]

इस प्रकार दलित साहित्य में एक बार फिर 'आजीवक धर्म' की चर्चा शुरू हुई, लेकिन यह निश्चित मुकाम नहीं बना सका। परन्तु अब आजीवक परम्परा के माध्यम से 'दलित धर्म' का स्वर मुखरित हुआ। "हिंदी दलित लेखन एवं आलोचकों में बौद्ध धम्म के बरक्स 'दलित धर्म' का स्वर मुखरित हुआ है। फिलहाल इस पर गंभीर विमर्श नहीं चल रहा है। यहाँ महत्त्वपूर्ण यह है कि जो लोग अलग दलित धर्म की बात कर रहे हैं वे बौद्ध धर्म के विरोध की आड़ में बाबा साहब की बौद्ध दीक्षा का ही विरोध कर रहे हैं जिसे अम्बेडकरवादी विचारधारा के खिलाफ ही कहा जाएगा। कुछ लोग आजीवक धर्म की बात चलाए हुए हैं तो उधर पंजाब में 'रैदासी' और आदि धर्म की वकालत की जा रही है।"[210]

मक्खलि गोसाल कवि नहीं बल्कि भविष्यद्रष्टा थे। इसलिए वो समतावादी समाज बनाना चाहते थे। परन्तु समकालीन बौद्ध संघर्ष के चलते उनके हाथ विफलता लगी। गोसाल और बुद्ध के बीच इस द्वंद्व का वर्णन देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय ने इस प्रकार किया है-"गोसाल मात्र एक भाट या चारण कवि नहीं था। वह एक भविष्यद्रष्टा और दार्शनिक भी था। वह विश्व के सम्बन्ध में कोई दृष्टिकोण बनाना चाहता था, अर्थात् वह संसार को

---

[209] कँवल भारती, दलित काव्य में हासिए के कवि, संपा (डॉ. मनोहर भंडारे), दलित साहित्य समग्र परिदृश्य, पृष्ठ संख्या-75

[210] राम चंद्र, हिन्दी दलित लेखन, आलोचना और अम्बेडकरवादी विचारधारा, संपा (डॉ. मनोहर भंडारे), दलित साहित्य समग्र परिदृश्य, पृष्ठ संख्या-39

समझना चाहता था, जिसमें वह रह रहा था । यही परिस्थितियाँ थीं जो गोसाल के लिए घातक बंधन बन रही थीं और यही अनुभव बुद्ध ने भी किया ।"[211]

3.2.3. चार्वाक/लोकायत की वैचारिकी

चार्वाक का भौतिकवादी नास्तिक दर्शन है । इस दर्शन के संस्थापक आचार्य 'वृहस्पति' को माना जाता है । इस मत को मानने वाले पुनर्जन्म, परलोक, स्वर्ग-नरक और ईश्वर-आत्मा को नहीं मानते थे । ये परालौकिक सत्ता में विश्वास न कर प्रत्यक्ष को प्रमाण मानते थे । वेदों, पुराणों में जिस आत्मा, परमात्मा का उल्लेख है उसे चार्वाक नहीं मानते थे । "चार्वाकों ने वेदों के भीतर लिखी सारी चीजें नकारी और वेदों से कुछ भी ज्ञान नहीं मिलेगा, ऐसी उसकी निंदा की है । 'भूतान निधनं निष्ठा स्रोतसामिव सागर' :.16 मृत्यु ही देह का अंत है । यही देहात्मवाद असुर राज विरोचन के भीतर भी देखा सकते है ।"[212]

चार्वाक दार्शनिकों ने परलोकवाद, आत्मवाद और वर्णाश्रम व्यवस्था का खंडन किया है । उनके अनुसार यज्ञ और दूसरे कर्मकांड बुद्धि तथा पौरुष से हीन पुरोहितों की जीविका के साधन मात्र हैं, और कुछ नहीं । चार्वाकों ने श्राद्धकर्म और दान को लूट की व्यवस्था कहा है । उन्होंने कर्मफल के सिद्धांतो को भी अस्वीकार किया ।"[213] दलित साहित्य भी उस वैदिक-व्यवस्था का विरोधी है, जिसके विरोधी कभी चार्वाक, बुद्ध और मक्खलि गोसाल थे । बल्कि वर्तमान दलित रचनाकार स्पष्ट शब्दों में अपने साथ हुए दुर्व्यवहार को इस प्रकार व्यक्त करता है कि "धर्म, दर्शन, पौराणिक मिथकों की पुनर्व्याख्या दलित कविताओं की विशेषता है । हिन्दू दर्शन समस्त मानव की ही नहीं

---

[211] Forward press.in/2019/08/ history-india-makhkali goshal-ajivak, प्रेम कुमार मणि- 1 अगस्त 2019

[212] streekaal.com/2017/05/researchpapaer-lokayat-ashishpadwa

[213] मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और दलित दृष्टि, संपा-सर्वेश कुमार मौर्य, पृष्ठ संख्या-81

जीव मात्र की आत्मा को एक अंश मानता है। लेकिन दलितों के प्रति उसकी निर्ममता अमानवीय है-

तुम्हारे रचे शब्द

तुम्हें ही डसेंगे साँप बनकर

गंगा किनारे कोई वटवृक्ष ढूँढ़ लो,

कर लो भागवत का पाठ

आत्मतुष्टि के लिए

कहीं अकाल मृत्यु के बाद

भयभीत आत्मा

भटकते-भटकते

किसी कुत्ते या सूअर की मृत देह में

प्रवेश न कर जाए

या पुनर्जन्म की लालसा में

किसी डोम की आत्मा

ब्रम्हा का अंश क्यों नहीं है

मैं नहीं जानता

शायद आप जानते हो!"[214]

(बस्स बहुत हो चुका' से)

कवि का स्पष्ट सन्देश है कि जन्म एवं पुनर्जन्म के माध्यम से भेदभाव करने वालों सतर्क रहो, तुम्हारे रचे इन शब्दों की पोल खुल गयी है, इसलिए अब अपने लिए 'गंगा किनारे वटवृक्ष' ढूँढ़ लो, वही तुम्हारी मुक्ति का मार्ग है।

3.2.4 सिद्धों-नाथों की वैचारिकी

सिद्धों ने अपने समकालीन समाज में हो रहे पाखण्डों और आडम्बरों का पुरजोर विरोध किया था। वे जातिवाद और वर्ण-व्यवस्था में विश्वास नहीं रखते थे। सिद्धों में उच्चजाति और निम्न-जातियों के अलावा स्त्रियाँ भी सम्मिलित रही हैं। "चौरासी सिद्धों को गौर से देखने पर पता चलता है कि उनमें बहुत से सिद्ध शूद्र-अतिशूद्र हैं। हिन्दू तंत्र सम्प्रदायों की अपेक्षा चौरासी सिद्ध बौद्धों से अधिक निकटता रखते हैं और इसलिए वे समानतावादी थे। सिद्धों के कुछ नाम इस प्रकार है-चमरिपा (चर्मकार), खड़गपा शूद्र, मगध, शिलपा शूद्र, कम्परिपा लोहार, सलिपुत्र आदि।"[215]

समाज में वेद-पुराणों के माध्यम से जो भ्रम फैलाया जा रहा था, उसका सिद्धों ने विरोध किया और कहा कि यह सब दिखावा है। इस विषय में सिद्ध सरहपा ने तो ब्रह्मणों के वेद-मन्त्र और पाखंड के विषय में लिखा है कि

"ब्राह्मण ना जानते भेद। यों ही पंढेउ ये चारों वेद।

मट्टी, पानी, कुश लेई पठंत । घरही बैठी अग्नि होमंत।

---

[214] ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या-90

[215] www.egyankosh.ac.in, भारत की चिंतन परम्पराएं और दलित साहित्य:Access date: 22/09/2020

एकदंडी त्रिदंडी भगवा भेसे। ज्ञानी होके हंस-उपदेशे।

मित्थे ही जग वहा भूले। धर्म-अधर्म न जानत तूत्थे ।।"[216]

जिस प्रकार सिद्ध साहित्य ने समाज को प्रभावित किया उसी प्रकार नाथों ने भी किया था। इनकी संख्या सिद्धों के समान 84 नहीं थी बल्कि नौ थी। इस पन्थ से हिन्दू-मुस्लिम दोनों प्रभावित रहे हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि "नाथ संप्रदाय जब फैला, तब उसमें भी जनता की नीची और अशिक्षित श्रेणियों के बहुत से लोग आये जो शास्त्रज्ञान संपन्न न थे, जिनकी बुद्धि का विकास समान कोटि का था।"[217]

नाथपंथी योगी तीर्थयात्रा करने से अधिक मन की शुद्धता पर बल देते थे। उनका स्पष्ट सन्देश था कि तीर्थाटन से अच्छा है मन को शुद्ध रखें। "योगी के लिए मन शुद्धता और दृढ़ता आवश्यक है। उसे रात दिन चलते रहने की और नाना तीर्थों में भटकने फिरने की एकदम जरूरत नहीं हैं। क्योंकि पंथ चलने से पवन साधना रुक जाती है और नाद, बिंदु और वायु की साधना शिथिल हो जाती है। फिर जिसका विश्वास है कि सम्पूर्ण तीर्थ घट के भीतर ही है वह भला कहाँ भरमाता फिरेगा?

पंथी चलै चलि पवनां तुटै नाद बिंद अरू वाई।

घट ही भीतरि अडसठ तीरथ कहाँ भ्रमै रे भाई।।

मन यदि चंगा है तो कठौती में गंगा है। बंधन को अगर दूर कर दिया गया तो समस्त जगत् का गुरुपद अनायास मिल जाता है-

अवधू मन चंगा तो कठौती ही गंगा।

[216] माताप्रसाद, हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा, पृष्ठ संख्या-37

[217] आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ संख्या-26

बाड़्या बेल्हा तो जगत चेला।"[218]

3.2.5 संत साहित्य की वैचारिकी

संत साहित्य के विचारों से वर्तमान दलित साहित्य काफी प्रभावित है। यह महज एक कथन मात्र नहीं है, बल्कि सन्तों ने जिस वेद व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था, मूर्ति-पूजा, अवतारवाद, पाखण्डवाद, बाह्य आडम्बर एवं जातिवाद का विरोध किया था, उन्हीं आडम्बरों का विरोध वर्तमान दलित साहित्यकार कर रहे हैं। "आज के दलित विमर्श की शुरूआत भी शास्त्रों, धर्मग्रंथों के अम्बार को नकारने के साथ हुई है। डॉ. अम्बेडकर की काफी ऊर्जा इस कार्य में लगी। उन्होंने पाया होगा कि जिस शास्त्रवाद से संत मत जूझा उसकी परम्परा सिद्धों और फिर बौद्धों से आई है।"[219]

संत साहित्य के अंतर्गत अनेक संत और कवि हुए हैं, जिन्होंने जाति-पांति का विरोध किया है, परन्तु उसमें अधिकतर धार्मिक थे। "दलित जाति के कवियों में अधिकतर धार्मिक तथा वैष्णव संत कवि हुए हैं, और वे मुख्यत: दो सम्प्रदाय के हैं। कबीर, रैदास, सदना, सेन, कमाल, नामदेव और दादूदयाल रामानन्दी थे, नाभादास तथा कृष्णदास बल्लभी सम्प्रदाय के थे।"[220]

दलित कविता में आक्रोश है, तो वह सामाजिक समानता और भाईचारा के लिए जो उन्हें कबीर से मिलता है। 'श्रम' मनुष्य का गहना है जिसके बल पर मनुष्य अपने जीवन को संवार सकता है यह बात संत रैदास ने कही है। हिंदी साहित्य के अंतर्गत केवल कबीरदास और रैदास ही नहीं हैं, जिनसे दलित साहित्य प्रभावित हुआ है; बल्कि और भी अनेक संत हुए हैं जिनमें तुकाराम, दादू दयाल, सेना आदि संत उसी समय हुए हैं।

---

[218] हजारी प्रसाद, नाथ संप्रदाय, पृष्ठ संख्या-199

[219] बजरंग बिहारी तिवारी, दलित साहित्य एक अन्तर्यात्रा, पृष्ठ संख्या-33

[220] दीनदयाल गुप्ता, दलित जातियों के द्वारा हिन्दी साहित्य की सेवा, कथादेश-अगस्त, 2005, पृष्ठ संख्या-45

जिन्होंने समाज को नया मार्ग दिखाया है। परन्तु इन सब में कबीरदास और रैदास का नाम सर्वोपरि है।

3.2.6 मार्क्सवाद की वैचारिकी

इस क्रम में मार्क्सवादी सिद्धांत का उल्लेख करना आवश्यक है, जिसमें गैर-बराबरी और शोषण के खिलाफ़ आवाज उठाई गई है। मार्क्स ने पूंजीवादियों और मजदूरों के एक समान अधिकारों की बात की है। मजदूरों के लिए मार्क्स द्वारा मजदूर आन्दोलन चलाया गया जो 21वीं सदी में भी प्रासंगिक है। यह जर्मनी का महान चिन्तक और दार्शनिक था। जिसका जन्म 1818 और मृत्यु 1883 में हुई थी।

मार्क्सवाद के सन्दर्भ में दलित चिंतकों एवं दलित साहित्यकारों के बीच विविध मत हैं, जिसे हम उन्हीं विद्वानों की राय से समझने का प्रयास करेंगे। मार्क्सवाद मात्र एक सिद्धांत नहीं है, बल्कि शोषण से मुक्ति का साधन है, जिससे सम्पूर्ण शोषित समाज प्रेरित है। दलित समाज के शोषण का लम्बा इतिहास है, इसलिए इस विचारधारा को लेकर दलित साहित्यकार काफी चिंतित है।

कुछ लोग मार्क्स के सिद्धांत को नकार देते हैं, तो कुछ समन्वय की दृष्टि से देखते हैं। कुछ लोग आंबेडकरवाद को ही एक मात्र अपना प्रेरणा स्रोत मानते हैं। इस विषय में शरणकुमार लिम्बाले द्वारा वर्णित ये पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं। "दलित साहित्य की एक मात्र प्रेरणा अम्बेडकरी विचारों में है, दलित लेखकों द्वारा यह मान्य किए जाने पर भी उनकी भूमिका में होने वाले मतभेद निदर्शन में आते हैं। इस मत का पहला स्वरूप मार्क्स-विरोधी बौद्धवाद था। भाऊसाहेब आड़सूल, विजय सोनवणे और राजा ढाले ने बौद्ध विचार प्रणाली को स्वीकार कर बाबूराव बागूल, नामदेव ढसाल, दया पवार आदि

लेखकों को साम्यवादी कहकर उनके लेखन की आलोचना की है।"[221] इससे स्पष्ट होता है कि इन विद्वानों में मार्क्सवाद का नहीं, बल्कि अम्बेडकरवाद की पक्षधरता अधिक है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा लिखित यह विचार प्रासंगिक है, जिसमें उन्होंने कहा है कि "दलित साहित्य न मार्क्सवाद का विरोधी है, न जनवाद का। दलित रचनाकार उस दोहरी मानसिकता का विरोधी है जो बाहर से मार्क्सवादी, साम्यवादी और भीतर से फासिस्टों की पक्षधर है। शोषण विहीन समाज की परिकल्पना को साकार करने के लिए मार्क्सवादी विचारक 'वर्ग' के साथ 'वर्ण' को अपनी लड़ाई का लक्ष्य बनाने में ढुलमुल क्यों है।"[222]

प्रसिद्ध दलित साहित्यकार कँवल भारती ने अपने कविता संग्रह 'तब तुम्हारी निष्ठा क्या होगी? की भूमिका में लिखा है कि "वास्तव में जनवाद या प्रगतिवाद के साथ दलित लेखन का कोई मतभेद नहीं, बल्कि दलित लेखन इस का सहायक ही है। अंतर सिर्फ इतना है कि जहाँ जनवाद का एक शत्रु पूँजीवाद हैं, वहाँ दलित साहित्यकार एक कदम आगे बढ़कर पूँजीवाद के साथ-साथ ब्राह्मणवाद को भी अपना शत्रु मानता है। इस दृष्टि से जनवादी और दलित दोनों रचनाकार एक दूसरे के मित्र हैं। यदि ब्राह्मणवाद जनवादियों का निशाना नहीं हैं, तो सिर्फ इसलिये दलित साहित्य को नकारा जाना क्या यह साबित नहीं करता कि वे ब्राह्मणवाद से शासित हैं।"[223]

3.2.7 अम्बेडकरवाद की वैचारिकी

आधुनिक दलित कविता और दलित आलोचना की प्रमाणिकता और मानदंड का प्रमुख आधार अम्बेडकरवाद को माना जाता है। उनके विचारों को दलित साहित्यकारों ने पूरी मजबूती के साथ अपना लिया है। डॉ. अम्बेडकर की इन 22

---

[221] शरण कुमार लिम्बाले, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या-75
[222] ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या-97
[223] कँवल भारती, तब तुम्हारी निष्ठा क्या होगी, पृष्ठ संख्या-15

प्रतिज्ञाओं ने दलित साहित्य को ज्यादा प्रभावित किया है, जिसमें से कुछ सिद्धांतो का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है।

1. मैं ब्रम्हा, विष्णु, महेश को कभी नहीं मानूँगा और उनकी पूजा नहीं करूँगा।

2. मैं राम और कृष्ण को ईश्वर नहीं मानूँगा और न उनकी पूजा करूँगा।

3. मैं गौरी, गणपति, हिन्दू धर्म के किसी देवी-देवता को नहीं मानूँगा और न उनकी पूजा करूँगा ।

4. मैं इस बात पर विश्वास नहीं करूँगा कि भगवान ने कभी अवतार लिया है।

5. मैं यह विश्वास नहीं करूँगा की भगवान बुद्ध विष्णु के अवतार हैं। मैं इस प्रचार को धूर्तता का प्रचार समझूँगा।

6. मैं श्राद्ध नहीं करूँगा और न कभी पिण्डदान दूँगा।

7. मैं बौद्ध धर्म के विरूद्ध कोई बात नहीं मानूँगा।

8. मैं कोई क्रियाकर्म ब्राह्मणों के हाथों से नहीं कराऊँगा।

9. मैं इस सिद्धान्त को मानूँगा की सभी मनुष्य एक जाति के हैं।

10. मैं समानता की स्थापना के लिए प्रयत्न करूँगा।"[224]

दलित साहित्य के निर्माण में इन विचारधाराओं का असर अधिक है। इस साहित्य में धर्म, ईश्वर, अवतार, कर्मकांड, अन्धविश्वास आदि के लिए जगह नहीं है।

---

[224] डॉ. एन. सिंह, दलित साहित्य के प्रतिमान, पृष्ठ संख्या-257

परन्तु मनुष्य को बेहतर मनुष्य बनाने के लिए ये साहित्यकार प्रतिबद्ध हैं। इस साहित्य में पारम्परिक मानदण्ड खोजने वाले को निराशा ही हाथ आयेगी।

निष्कर्ष

वैचारिकी दृष्टि से हिंदी साहित्य के विकास में संस्कृत साहित्य का प्रभाव रहा है। संस्कृत साहित्य में काव्य के विकास का आधार वेद-पुराण, इतिहास और धर्मशास्त्र रहा है। जिसके स्वनिर्मित लक्षण और सिद्धांत हैं। संस्कृत से प्रभावित होकर हिंदी काव्य की वैचारिकी विकसित हुई है। परन्तु कालान्तर में परम्परागत सिद्धांतो में परिवर्तन हुआ है। हिंदी साहित्य के अंतर्गत आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल तक, कभी भी प्रवृत्तियाँ एक सामान नहीं रही हैं।

जिस काव्य-लक्षण को कविता का प्रमुख भाग माना जाता था। उसके विषय में यह कहा जाने लगा कि 'मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है'। उत्तर आधुनिक काल ने तो मनुष्य, ईश्वर, स्त्री-पुरूष के सम्बन्ध को ही बदल दिया है। इस दौर में भावुकता की जगह को बौद्धिकता और तार्किकता ने ले लिया है। उत्तर आधुनिकता ने निम्नलिखित घोषणाएं की हैं जो ल्योतार की विकेन्द्रित सोच के प्रभाव का परिणाम है- 1.विचारधारा का अंत 2. ईश्वर का अंत 3.मानव का अंत 4.इतिहास का अंत 5. साहित्य, साहित्यकार, आलोचना की मृत्यु।

परन्तु इसी दौर में 1980 में दलित साहित्य का उदय होता है। जिसमें कई विचारधाराओं का मिश्रण दिखाई पड़ता है या यह कहें की यह साहित्य विचारधारा के आधार पर ही इतना मजबूत स्तम्भ स्थापित कर सका। वैसे तो उत्पीड़न, शोषण और नई-नई प्रवृत्तियों का अन्वेषण तो छायावाद, प्रयोगवाद, प्रगतिवाद आदि मार्क्सवादी विचार धाराओं ने किया है।

परन्तु दलित साहित्य की विचारधारा परम्परा से भिन्न है। यह साहित्य उस विचारधारा को ग्रहण करता है जिसमें स्वत्रंत चिंतन, वैज्ञानिक-दृष्टिकोण और तार्किकता की भावना प्रबल है। अन्धविश्वास, पाखंड और ब्राह्मणवाद का खात्मा जिसका मुख्य उद्देश्य है। इस दृष्टि में दलित साहित्य महात्मा बुद्ध. मक्खलि गोसाल, आजीवक दर्शन, सिद्ध-नाथ और संत साहित्य के समीप है। महात्मा बुद्ध जिन्होंने सबसे पहले जाति प्रथा का विरोध कर मनुष्य को उसकी वास्तविकता से परिचित कराते हुए कहा कि किसी बात को तर्क की कसौटी पर कसकर विश्वास करो। महात्मा बुद्ध के ही समकालीन 'चार्वाक दर्शन' था जिसने वेदों के भीतर लिखी सारी चीजें नकारी और वेदों से कुछ ज्ञान नहीं मिलेगा, ऐसी उसकी निन्दा भी की है।

आगे चलकर परम्परा वर्णवादी व्यवस्था का खण्डन करने वाले सिद्धों और नाथों ने दलित समाज के अन्दर चेतना का संचार किया। हालाँकि संत साहित्य सगुन-निर्गुण में फंसा रहा लेकिन 'निर्गुणवाद' उनकी नवीन खोज थी जिसके बल पर उन्होंने एक बहुत बड़े वर्ग को संभाला था। जिसे दलित साहित्य के बहुत समीप माना जाता है। दलित साहित्य के विकास में मार्क्सवाद का भी प्रभाव दिखाई देता है परन्तु भारतीय मार्क्सवाद 'जातिवादी' मानसिकता से ग्रसित इसलिए वह दलितों के लिए बड़ा आन्दोलन नहीं खड़ा कर सका। भारत विविध जातियों और समुदायों वाला देश है, इसलिए दलित साहित्य के लिए अम्बेडकरवाद ही 'मुक्ति' की वैचारिकी है।

इसके अतिरिक्त अनेक संगठनों और आंदोलनों ने दलित साहित्य को मजबूत करने में भूमिका निभाई। भारतीय बौद्ध सभा, ब्लैक-पैंथर, दलित-पैंथर, आदि का विशेष प्रभाव पड़ा है। भारतीय बौद्ध महासभा से दलित साहित्य निकला है इस विषय में शरण कुमार लिम्बाले ने लिखा है कि बाबा साहब अम्बेडकर से पहले दलित साहित्य प्रकाशित हो रहा था। हलांकि 14 अक्टूबर, 1956 को दलितों का धर्मान्तरण हुआ फिर

2 मार्च, 1958 को दलित लेखकों का पहला साहित्य सम्मेलन संपन्न हुआ । यहाँ यहीं ध्यान देने योग्य है कि इसे बौद्ध साहित्य की बजाय 'दलित साहित्य' नाम से संबोधित किया गया।

दलित साहित्य मात्र साहित्य नहीं बल्कि 'एक आन्दोलन है' जो समता और स्वतंत्रता के लिए बाबा डा. अम्बेडकर के विचारों के साथ खड़ा होकर सामाजिक समानता से प्रतिबद्ध होकर उनके विचारों का अनुसरण करता है जो अनुभव के दंश पर निर्मित हुए हैं।

अंतत: यही कहा जा सकता है कि दलित साहित्य डॉ. अम्बेडकर के आदर्श लोक की स्थापना के लिए प्रतिबद्ध है । यह आदर्शलोक बहुत ही यथार्थवादी और व्यावहारिक था। यह न्याय का नगर था-इंसाफ का शहर-सांसारिक न्याय। उन्होंने एक प्रबुद्ध भारत की परिकल्पना की, जिसमें बौद्ध विचारों के साथ-साथ यूरोपीय ज्ञान के सर्वोत्तम विचारों को जोड़ा गया था । अपने जीवन के चार समाचार पत्र जो उन्होंने सम्पादित किए, आंबेडकर ने उनका नामकरण भी 'प्रबुद्ध भारत' नाम से किया था।

चतुर्थ अध्याय

हिंदी दलित कविता का आलोचना पक्ष

प्रस्तावना

हिंदी साहित्य में आलोचना एक ऐसी विधा है जिसे किसी रचना से कम नहीं माना जाता है। कहा जाता है 'साहित्य में आलोचना हंस' का काम करती है क्योंकि इसमें हंस के समान दूध को दूध और पानी को पानी करने की पूरी, क्षमता होती है। आलोचना के माध्यम से आलोचक साहित्य को देखने की उचित दृष्टि प्रदान करते हैं।

इस अध्याय में हिंदी आलोचना के नहीं बल्कि दलित आलोचकों के उन तत्वों को समझने का प्रयास करेंगे, जिससे दलित साहित्य को नई दिशा मिलती है। दलित साहित्य की उत्पत्ति, संरचना, मानदंड, वैचारिकी के इतिहास आदि को समझना हो तो दलित आलोचकों के बीच जाना ही होगा। हम निम्नलिखित दलित आलोचकों की आलोचना दृष्टि को समझने का प्रयास करेंगे-

हिंदी दलित कविता के प्रमुख आलोचक: मत-अभिमत

4.1 माता प्रसाद

माता प्रसाद द्वारा लिखित 'हिंदी काव्य में दलित काव्यधारा' एक ऐसा आलोचनात्मक ग्रन्थ है, जिसने दलित समाज से जुड़ी कई रचनाओं को हिंदी काव्य में से खोज निकाला है। इस ग्रन्थ के 'लेखकीय निवेदन' में उन्होंने स्वयं लिखा है कि "ग्रन्थ को दो भागों में बाँटा गया है- पहले भाग में 'दलित' शब्द का विवेचन तथा हिंदी काव्य में आरम्भ से अब तक दलित शब्द के समानार्थी शब्दों का जो प्रयोग किया गया है, उनके उदाहरण दिये गए हैं। दूसरे भाग में हिंदी में दलित काव्यधारा की स्थिति, दलितों

के असन्तोष, परम्परा का विरोध, आक्रोश, डॉ. आंबेडकर और दलितों से सम्बंधित काव्यों, महाकाव्यों तथा गीतों का संकलन है।"[225]

यह ग्रन्थ दलित साहित्य के इतिहास का परिचय कराने के साथ, दलित कविता के अनेक रूपों का विवरण प्रस्तुत करता है। "मैंने उनकी कृति का 'हिंदी काव्य में दलित एवं दलित काव्यधारा' का आद्यांत अवलोकन किया। मुझे भी लगा कि उनका दृष्टिकोण सर्वांगिक और एक रचनात्मक एवं सक्रिय स्तर पर संतुलित भी है। उन्होंने 'दलित समस्या' के पूरे इतिहास और ऐतिहासिकता को भी टटोला है। वैदिक वाङ्मय से लेकर अधुनातन लेखन की परतों को उभारा और सहानुभूति पूर्वक परखा है।"[226]

डॉ. अंबेडकर, महात्मा गाँधी और जगजीवन राम आदि के विचारों के सच को समेटने का अद्भुत प्रयास इसमें किया गया है। दलित समाज ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण मानवजाति समयानुसार परिवर्तित होती रहती है। मनुष्य अपने जीवन और समाज को सुखी-समृद्ध बनाने के लिए अपनी जाँच-पड़ताल करते रहता है और कई बार वह धर्म और ईश्वर में सबका समाधान खोजता है। इस सन्दर्भ में माता प्रसाद ने लिखा है कि "धर्म परिवर्तन समस्या का समाधान नहीं हैं। धर्म कितना ही उदार क्यों न हो वह जनता के संघर्ष की क्षमता को कुंठित करता है। जातिव्यवस्था सामंतवाद की देन है, जब तक सामन्तवाद है, जाति समस्या रहेगी। बिना जनवादी क्रांति के जाति व्यवस्था ध्वस्त नहीं होगी।"[227] धर्म का पाखण्ड और जाति का जहर जब तक समाज में है तब तक कितनी भी तरक्की हो जाये सब व्यर्थ ही है।

---

[225] माता प्रसाद, हिंदी काव्य में दलित काव्यधारा, पृष्ठ संख्या-4

[226] माता प्रसाद, हिंदी काव्य में दलित काव्यधारा, पृष्ठ संख्या-9

[227] माता प्रसाद, हिंदी काव्य में दलित काव्यधारा, पृष्ठ संख्या-12

दुनिया की सबसे अनमोल धरोहर मनुष्य है, जिसको लोगों ने बाँटकर बर्बाद किया है। जिसे मनुष्यता के लिए सबसे बड़ा खतरा कहा जा सकता है। हालाँकि समय-समय पर संतों ने रचनात्मक सहयोग देकर इस बुराई को दूर करने का प्रयास किया। इसका उल्लेख लेखक ने इस प्रकार किया है कि "जाति-पाँति की संकीर्ण भावना ने सामाजिक ढाँचे को जर्जर कर दिया है। विद्वान लेखक कबीर, रविदास, गुरुनानक, दादू, पलटूदास, नामदेव, सुन्दरदास एवं रज्जब आदि सन्तों का उदाहरण देकर सामाजिक बुराई को दूर करने का रचनात्मक सुझाव दिया है।"[228]

दलित आलोचकों और गैर-दलित आलोचकों के बीच सबसे गंभीर सवाल यही बना हुआ है कि आखिर इस वर्ण और जाति की उत्पत्ति कैसे हुई? इस साजिश का वास्तविक इतिहास क्या है? इस सवाल को लेखक ने वैदिककाल और उत्तर वैदिक काल के ग्रंथों में खोजने का प्रयास किया है। यहाँ तक कि शूद्र और दलित वर्ण संघर्ष आदि मुद्दों पर अपनी राय रखी है। शूद्र शब्द को संस्कृत शब्दकोश के अनुसार इस प्रकार लिखा है कि "आगे उन्होंने हिंदी-शब्दकोश का उदाहरण देकर बताया है कि शूद्र शब्द, दो शब्दों 'शू'+द्र से बना है। 'शू' का अर्थ है मार डालना या चोट पहुँचाना और द्र का अर्थ है दौड़ने वाला। इस प्रकार शूद्र का अर्थ दौड़कर मारने वाला बताया गया है। इसका दूसरा अर्थ एक प्रकार का दौड़ने वाला विषैला क्रिया या सर्प। इस प्रकार 'शूद्र' शब्द का अर्थ 'नाग' भी है अर्थात शूद्र भी नाग जाति के थे। वे अस्पृश्य भी थे।"[229] जाति-पाँति ढहाने के लिए बहुत बड़े बड़े-बड़े आन्दोलन होते रहे पर समस्या की निरंतरता आज भी बनी हुई है। लोगों ने धर्मांतरण किए परन्तु सामाजिक समस्या बरकरार है। इस मुद्दे पर बाबू जगजीवन राम का हवाला देते हुए लेखक ने कहा कि- "बाबू जगजीवनराम

[228] माता प्रसाद, हिंदी काव्य में दलित काव्यधारा, पृष्ठ संख्या-12

[229] माता प्रसाद, हिंदी काव्य में दलित काव्यधारा, पृष्ठ संख्या-9

'धर्मान्तरण' को अस्पृश्यों की समस्या का समाधान नहीं मानते थे। धर्मान्तरण को वह कायरता का प्रतीक मानते रहे। वह हिन्दू समाज में रहकर ही समानता की लड़ाई पर बल देते थे।"[230]

दलित समाज के शोषण होने का एक अन्य कारण उनका अलगावपन रहा है। जिस दिन ये लोग एक हो जाएँगे, उस दिन ब्राह्मणवादी व्यवस्था ढह जायेगी। इसे स्वामी विवेकानन्द भली-भाँति समझते थे, इसलिए उन्होंने कहा था- "सवर्णो, शूद्रों के साथ कायरता का व्यवहार छोड़ दो। अन्यथा एक दिन ऐसा भी आयेगा जब बहुसंख्यक शूद्र संगठित होकर एक फूँक से उड़ा देगा, वह दिन भारत में एक दिन अवश्य आयेगा। यही (शूद्र) वे लोग हैं, जिन्होंने आप को सभ्यता सिखाई है और आपको नीचे गिरा सकते हैं। सोचें कि किस तरह एवं शक्तिशाली रोमन सभ्यता मिट्टी में मिला दी गई थी।"[231]

स्वामी जी दूरदृष्टा थे इसलिए उन्होंने इस बात को समझ लिया था। परन्तु घमंड में मदमस्त समाज जिसने हमेशा से धर्म और पाखंड की आड़ में लोगों का शोषण किया कैसे बदल सकता है। इस सन्दर्भ में यह कथन महत्त्वपूर्ण है जिसका उल्लेख 'माता प्रसाद' ने 'हिंदी काव्य में दलित काव्यधारा' नामक पुस्तक में किया है कि "स्वामी विवेकानंद ने कहा था कि तुम्हारे सवर्णों के इतिहास को, साहित्य तथा पुराण इत्यादि सभी शास्त्र केवल मनुष्य को डराने का कार्य करते हैं। कभी तुमने इन गरीबों, दुखियों के बारे में सोचा हैं? जो हमारे राष्ट्र की रीढ़ हैं, जिनके परिश्रम से अन्य पैदा हो रहा है, जिन मेहतर डोमों के एक दिन भी काम बंदकर देने में शहर में हाहाकार मच जाता है। आप क्यों नहीं सोचते उनके बारे में।"[232] सच तो यही है कि जिस समाज को सदियों से लेकर

---

[230] माता प्रसाद, हिंदी काव्य में दलित काव्यधारा, पृष्ठ संख्या-30
[231] माता प्रसाद, हिंदी काव्य में दलित काव्यधारा, पृष्ठ संख्या-32
[232] माता प्रसाद, हिंदी काव्य में दलित काव्यधारा, पृष्ठ संख्या-32

अब तक कोई अधिकार न मिला हो, कभी उसने सम्मान की जिन्दगी न जी हो, उसे शास्त्र और धर्म की आड़ में बहुत दिनों तक नहीं डराया जा सकता।

दलित समाज को लेकर जो भी रचनाएँ समय-समय पर हुई हैं, उनका चित्रण माता प्रसाद ने इस प्रकार किया है "समाज में दलितों की विभिन्न स्थितियों, उनकी समस्याओं के सम्बन्ध में कविताएँ लिखी गई हैं। इस प्रकार हिंदी काव्य में दलितों की स्थिति का जो चित्रण काव्य के रूप में किया गया है, सुविधा के लिए इन्हें निम्न भागों में बाँट सकते हैं-

सिद्ध और नाथयोगियों द्वारा 'भेदभाव' का निवारण

सन्तों की वाणी में 'जाति-पाँति' की निंदा।

आर्य समाज काव्य-धारा में 'समता' का आमंत्रण।

राष्ट्रीय आन्दोलन और गांधीवाद से प्रभावित कवियों द्वारा 'अस्पृश्यता-विरोध।

स्फुट कविताओं में दलितों की स्थिति।"[233]

इस प्रकार लेखक ने उन सभी लोगों का जिक्र किया है जिन्होंने समाज में व्याप्त पाखंड को उजागर किया है। ब्राह्मणों के मिथ्या गर्व और पाखंड को उजागर कर समाज को सचेत किया है कि समाज में बुराई फैलाने वाले ये लोग कुछ नहीं जानते हैं। पाखंड और अन्धविश्वास फैलाकर लोगों को उपदेश देने वाले ये ब्राह्मण कुछ भी नहीं जानते हैं। घर में बैठकर मिथ्या ढोंग रचाते हैं–

"ब्राह्मण न जानते भेद। यों ही पढ़ें ये चारो वेद।

मट्टी, पानी, कुश, लेई पठंत। घर बैठी अग्नि होमन्त।"[234]

---

[233] माता प्रसाद, हिंदी काव्य में दलित काव्यधारा, पृष्ठ संख्या-35

[234] माता प्रसाद, हिंदी काव्य में दलित काव्यधारा, पृष्ठ संख्या-37

4.2. ओमप्रकाश वाल्मीकि

'दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र' ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा लिखित अलोचनात्मक पुस्तक है। जिसमें दलित साहित्य के अनिवार्य तत्वों का उल्लेख हुआ है। ये सभी तत्व बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। इन्हें पढ़ने के बाद दलित साहित्य की पुख्ता और मजबूत जानकारी पाठक को हो जाती है। दलित साहित्य के विकास में ओम प्रकाश वाल्मीकि का योगदान अद्वितीय है। अब तब उनके द्वारा लिखित दो आलोचनात्मक ग्रन्थ 'दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र', 'मुख्यधारा और दलित साहित्य; 'अनुभव संघर्ष एवं यथार्थ' आ चुके हैं। ये दलित चेतना के प्रखर और प्रबुद्ध लेखक माने जाते हैं। दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र में उन्होंने दलित साहित्य की अवधारणा क्या है? उसकी प्रासंगिकता क्या है? दलित चेतना का अर्थ क्या है? दलित की वास्तविक समस्या क्या है? उसे दलित साहित्य में प्रेरणा कहाँ से मिलती है? गैर-दलित और दलित के बीच अंतर और इसके केन्द्र में यह सवाल भी हैं कि दलित साहित्य किसे लिखना चाहिए किसे नहीं। दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र हिंदी साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र से भिन्न होने के पीछे क्या कारण है? आदि बहुत से मुद्दे उठाए हैं।

हिंदी साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र संस्कृत साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र है, जिसमें सामंतवाद और कुलीन घरानों का वर्णन हुआ है। उसके नायक उच्च-वर्ग के होते हैं जबकि दलित साहित्य का सौन्दर्य गाँव के गरीब मजदूर और सदियों से पीड़ित शोषित के मध्य से उत्पन्न होता है। ये भूख से बेहाल और अस्मिता के लिए लड़ते दिखाई देते हैं। इसे दलित साहित्यकार अपना सौन्दर्य मानता है। यहाँ प्रेमचन्द का यह कथन उल्लेखनीय है जिसमें उन्होंने कहा कि "हमें सुन्दरता की कसौटी बदलनी होगी और हमें निश्चय ही विलासिता के मीनार से उतरकर उस बच्चों वाली काली रूपवती का चित्र

खींचना होगा जो बच्चे को खेत की मेड़ पर सुलाकर पसीना बहा रही है"[235] अब क्रमवार पुस्तक में दिए गये कुछ बिंदुओं को समझना आवश्यक है। सवाल उठता है कि हिंदी साहित्य का विकास चरम अवस्था में पहुँच चुका हो तब दलित साहित्य की अवधारणा की आवश्यकता क्यों हुई? तब यह कहने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि इन शोषित-पीड़ित का दर्द कोई सुनने वाला नहीं था। परम्परागत साहित्य में कहीं भी इनको स्थान नहीं मिला है। अगर मिला भी तो वह अपनी पहचान नहीं बना पाया ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इस विषय में लिखा है कि "31 जुलाई 1992 को 'हंस' पत्रिका ने 'दलित चेतना: विशिष्ट सन्दर्भ प्रेमचंद' विषय पर नई दिल्ली में वार्षिक गोष्ठी का आयोजन किया, जिसकी चर्चा लम्बे समय तक चली और अंत में स्त्री दलित है या नहीं पर केन्द्रित हो गयी। लेकिन इस चर्चा का यह लाभ जरूर हुआ कि जो दलित साहित्य को अभी तक अनदेखा कर रहे थे, उनका ध्यान इस ओर गया। कुछ विद्वान हिंदी साहित्य से ढूँढ़-ढूँढ़कर कर दलित साहित्य की सूचियाँ दिखाने लगे। कल तक जहाँ दलित साहित्य का जिक्र नहीं था, वहाँ प्रेमचंद, नागार्जुन, धूमिल, अमृतलाल नागर, गिरिराज किशोर, यहाँ तक की तुलसीदास भी दलित कवियों की श्रेणी में आने लगे।"[236]

अब तक दलित साहित्य के लेखक को अपनी पहचान बनाने की जो जद्दोजहद करनी पड़ रही थी, वह अब लगातार कई पत्रिकाओं में अपनी जगह बनाने में सफल होती दिखी, जिसमें 'हंस', 'कथानक', 'इण्डिया टुडे', आदि पत्रिका में दलित कहानियाँ प्रकाशित होने लगी। साथ ही दलित साहित्य को लेकर बहुत सी गोष्ठियों में बहस भी होने लगी। तभी दलित साहित्य पर जातिवादी होने का आरोप भी लगाया जाने लगा। अब दिन प्रतिदिन दलित साहित्य की संभावनाएँ बढ़ती जा रही हैं।

[235] ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ-संख्या-47-48

[236] ओमप्रकाश वाल्मीकि ,दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या- 17

दलित चेतना को लेकर सभी दलित कवि आंबेडकरवादी चिंतन को लेकर सहमत हैं। जिसके विषय में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इस प्रकार लिखा है कि- "दलित चेतना डॉ.अम्बेडकर के जीवन-दर्शन से मुख्य उर्जा ग्रहण करती है। इस तथ्य से लेकर सभी दलित लेखक एकमत हैं। दलित चेतना के मुख्य बिंदु हैं- 1."मुक्ति और स्वतंत्रता के सवालों पर डॉ.अम्बेडकर के दर्शन को स्वीकार करना। 2. बुद्ध का अनीश्वरवाद, अनात्मवाद, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, पाखण्ड-कर्मकांड विरोध। 3. अलगाववाद नहीं भाईचारे का समर्थन। 4. सामाजिक बदलाव के लिए प्रतिबद्धता। 5. आर्थिक क्षेत्र में पूंजीवाद का विरोध। 6. सामंतवाद, ब्राहमणवाद का विरोध। 7. महाकाव्य में रामचन्द्र शुक्लीय परिभाषा से असहमति। 8.पारंपरिक सौन्दर्य शास्त्र का विरोध। 9. वर्ण विहीन, वर्ग विहीन समाज की पक्षधरता"[237]

साहित्य सदैव समाज-सापेक्ष होता है। यह समाज को प्रभावित करते हुए, मानव मस्तिष्क को सीधे असर करता है। इसलिए एक साहित्यकार को सदैव समाज के प्रति प्रतिबद्ध होना आवश्यक है। हाँ इतना अवश्य है कि भारतीय समाज व्यवस्था को तोड़ने के प्रयास सदियों से होते रहे हैं। पर वह अब तक टूट नहीं पायी है। इस विषय में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने लिखा है कि "भारतीय समाज-व्यवस्था ने वर्ण-व्यवस्था का एक ऐसा जिरहबख्तर पहन रखा है, जिस पर लगातार हमले होते रहे हैं फिर भी वह टूट नहीं पाई। बीसवीं सदी में सबसे बड़ा हमला डॉ. अम्बेडकर ने किया और बौद्ध धर्म को पुनर्जीवित किया। वर्ण व्यवस्था के स्वरूप में बदलाव दिखाई पड़ा। इस व्यवस्था को तोड़ने के लिए जाति-व्यवस्था का टूटना जरूरी है, तभी समाज में समरसता उत्पन्न हो सकती है, और साहित्य में उपजी विभ्रम की स्थिति से भी मुक्त हो सकते हैं।"[238]

---

[237] ओमप्रकाश वाल्मीकि ,दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या - 31

[238] ओमप्रकाश वाल्मीकि ,दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या- 59

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने राजनीति का चित्र इस प्रकार उकेरा है- "पंचायत राज के लुभावने और आकर्षक सब्जबाग दलितों के लिए षड्यंत्र बनकर उपस्थित होते हैं। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने गाँव को जातिभेद के कारखाने कहा था। दलित रचनाओं में पंचायती राज का नग्न यथार्थ पूरी शिद्दत से उद्घटित होता है,यथा-

संकीर्ण पतली गलियों में

कुनमुनाती गन्दगी से

टखनों तक सने पाँव से

सुना है

दहाड़ती आवाजों को

किसी चीख की मानिंद

जो हमारे हृदय से

मस्तिष्क तक का सफ़र तय करने में

थककर सो गई है।

दलित साहित्य ने हजारों साल से मूक बने जनमानस को वाणी दी है। संघर्ष की चेतना उत्पन्न की है। साहित्य को समाज से जोड़ा है।"[239] इस पुस्तक में भाषा को लेकर भी लेखक की दृष्टि साफ देखी जा सकती है। दलित साहित्य की भाषा को लेकर बहुत सी बहस अक्सर होती रहती है। जिसमें कहा जाता है की दलित साहित्य की भाषा ठीक नहीं है। लेकिन पुस्तक में दलित साहित्य की भाषा, शिल्प, बिम्ब, प्रतीक आदि का

[239] ओमप्रकाश वाल्मीकि ,दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र : 69

समुचित विवेचन किया गया है। साथ ही हिंदू मिथकों ने किस प्रकार दलितों का शोषण किया गया है, का भी वर्णन मिलता है। "धर्म, दर्शन, पौराणिक मिथकों की पुनर्व्याख्या दलित कविताओं की विशेषता है। हिन्दू दर्शन समस्त मानव की ही नहीं जीव मात्र की आत्मा को एक ही ब्रह्म का अंश मानता है, लेकिन दलितों के प्रति उनकी निर्ममता दर्शनीय है-

"तुम्हारे रचे शब्द
तुम्हें ही डसेंगे साँप बनकर
गंगा के किनारे कोई वटवृक्ष ढूँढ़ लो
कर लो भागवत का पाठ
आत्मतुष्टि के लिए
कहीं अकाल मृत्यु के बाद भयभीत आत्मा
भटकते-भटकते
किसी कुत्ते या सूअर की मृत देह में
प्रवेश न कर जाये।"[240]

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इस प्रकार लिखा है- "हिंदी साहित्य सवर्ण साहित्य है, इसे सिध्द करने के लिए बहुत ज्यादा शोध की जरूरत नहीं है। रामचन्द्र शुक्ल का हिंदी साहित्य का इतिहास ही काफी है। प्रसाद, पन्त, महादेवी वर्मा, निराला, नागार्जुन भी इसी परिधि में आते हैं।"

[240] ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र 89 :

4.3 कँवल भारती

कँवल भारती की दृष्टि अन्य आलोचकों से भिन्न है, दलित कविता के इतिहास के सन्दर्भ में उनके विचार इस प्रकार हैं- "दलित कविता का आत्म-संघर्ष' शीर्षक से एक आलोचनात्मक पुस्तक लिखने का विचार जनवरी 2004 में बना था। सोचा था कि 1900 से 2000 तक सौ वर्षों की हिंदी दलित कविता की भूमिका को एक जिल्द में रेखांकित किया जाए, यह परिचयात्मक भी हो और आलोचनात्मक भी।"[241] वे आगे कहते हैं- "इस पुस्तक में प्रतिष्ठित कवियों के 2000 काव्य-संकलनों को आधार बनाया गया है। 'उपसंहार' के अंतर्गत उन कवियों पर विचार किया गया है, जो हाशिए में डाल दिए गए हैं।"[242]

उन्होंने बताया है कि दलित कविता का इतिहास लगभग सौ वर्ष पुराना है और जो दलित साहित्य को मराठी की कलम मानते हैं। उन लोगों ने अछूतानन्द 'हरिहर', केवलानन्द, मंगलदेव विशारद, महाशय रूपचन्द, बिहारीलाल 'हरित' दुलारेलाल भार्गव आदि लोगों का नाम तक नहीं सुना है। ओमप्रकाश वाल्मीकि के लेख "हिंदी दलित कविता और संत साहित्य' जो 'दलित अस्मिता' प्रवेशांक (अक्टूबर-दिसंबर 2010) छपा था उसका का जवाब देते हुए कँवल भारती ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि "वाल्मीकि ने अज्ञान का परिचय दिया है। वे यदि ज्ञान की खोज करते, तो देख सकते थे कि कबीर और रैदास की वाणी में जो चुनौती ब्राह्मण को दी गयी है, वह तो आज की दलित कविता में भी दिखाई नहीं देती। ये कबीर ही थे जिन्होंने अस्पृश्यता से ग्रस्त ब्राह्मणवादी समाज को ललकारा था-

पाँडे बूझि पिहयु तुम पानी

[241] कँवल भारती, दलित कविता का संघर्ष (हिन्दी दलित कविता के सौ वर्ष), पृष्ठ संख्या-7

[242] कँवल भारती, दलित कविता का संघर्ष (हिन्दी दलित कविता के सौ वर्ष , पृष्ठ संख्या-9

जिहि मिटिया के घर मँह बैठे, ता यँह सिस्ट समानी।

तेहि मीटिया के भाँडे पाँडे, बूझि पिहयु तुम पानी।।"[243]

इस प्रकार कँवल भारती कबीर, रविदास के विषय में ओमप्रकाश वाल्मीकि को अनजान बताते हुए अनेक तर्क देते हैं और दलित साहित्य की जड़ उन्हीं सन्तों में देखते हैं।

उन्होंने ओमप्रकाश वाल्मीकि के उन तर्कों को भी गलत ठहराया हैं। जिसमें ओमप्रकाश वाल्मीकि ने कहा था कि संत साहित्य ने वर्ण-व्यवस्था को मजबूत किया है। उसका उल्लेख कँवल भारती ने इस प्रकार किया है कि "वर्ण-व्यवस्था, ब्राह्मण की सत्ता और ब्राह्मणों के शास्त्र को नकारने वाले दलित संतों के बारे में वाल्मीकि की जानकारी कितनी गलत है, यह इनके विचार से पता चलता है-बिखरती हिन्दू सत्ता व वर्णव्यवस्था को कमजोर करने के बजाय और ज्यादा मजबूत बनाने और उसका व्यापक प्रचार-प्रसार करने में संत साहित्य की भूमिका रही है। इससे वर्ण व्यवस्था की वैचारिकी को बल मिला।"[244] इस लेख के माध्यम से कँवल भारती ने एक तरफ दलित कविता के संत साहित्य के इतिहास को पुष्ट करने का प्रयास किया है तो दूसरी तरफ ओमप्रकाश वाल्मीकि के उन विचारों का खंडन किया है। संत साहित्य पर ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अनेक आरोप लगाये हैं कि सन्तों के पास दलित चेतना नहीं थी। दलित समाज का जो विकास होना चाहिए था वह नहीं हो सका था, लेकिन कँवल भारती ने संत साहित्य के विषय में लिखा है कि "सामंतवादी और ब्राह्मणवादी शोषण के जितने भी प्रपंच हो सकते हैं। कबीर और रैदास ने उन सबके खिलाफ आवाज उठाई है। इन्हीं प्रपंचों में गंगा तीरथ, हज, नमाज और शास्त्र आते हैं। जिन्हें कबीर ने माया कहा है। यथा-

---

[243] कँवल भारती, दलित कविता का संघर्ष (हिन्दी दलित कविता के सौ वर्ष), पृष्ठ संख्या-15

[244] कँवल भारती, दलित कविता का संघर्ष (हिन्दी दलित कविता के सौ वर्ष), पृष्ठ संख्या-15

तीरथ में तो सब पानी है, होवे नहीं कछु अन्हाय देखा।

प्रतिमा सकल तो जड़ हैं भाई, बोले नहीं बोलाय देखा।।

पुरान-कोरान सबै बात है, घटका पर्दा खोल देखा।

अनुभव की बात कबीर कहैं यह, सब है झूठी पोल देखा।।"[245]

संत साहित्य के माध्यम से कँवल भारती के आलोचना के केंद्र में भले ही ओमप्रकाश वाल्मीकि रहे हों, परन्तु कँवल भारती ने कई अनसुलझे सवालों को भी बल देकर, संतों के योगदान को स्पष्ट किया है।

इस प्रकार दलित साहित्य में संत साहित्य को देखने की नई दृष्टि उजागर होती है एवं वाल्मीकि की अज्ञानता भी। इसका उल्लेख कँवल भारती ने इस प्रकार किया है कि "अंत में वाल्मीकि मराठी के दलित लेखक बाबूराव बागुल के हवाले से संत साहित्य को नकारने की कोशिश करते हैं। यहाँ मैं यही कह सकता हूँ कि मराठी के दलित लेखक कबीर और रैदास के बारे में उतने ही अज्ञानी है जितने वाल्मीकि खुद हैं। उनका संत साहित्य का अध्ययन किसी तरह से गंभीर नहीं हैं और इतिहास पर तो उनकी कोई पकड़ नहीं हैं। आधुनिक-काल की दलित कविता में हीरा डोम और अछूतानन्द जी के कविताकर्म में भी किसी बदलाव की आकांक्षा नहीं देखते हैं।"[246]

4.4. डॉ. एन. सिंह

डॉ. एन सिंह का जन्म सहारनपुर (उ.प्र.) के चातारशाली ग्राम में 1 जनवरी 1956 ई. को हुआ था। उन्होंने पी.एच. डी मेरठ विद्यालय, मेरठ से 'आचार्य पद्म सिंह शर्मा : व्यक्तित्व एवं कृतित्व' विषय पर सन 1980 में प्राप्त की। पत्रकारिता साहित्य से अपने

---

[245] कँवल भारती, दलित कविता का संघर्ष (हिन्दी दलित कविता के सौ वर्ष), पृष्ठ संख्या-23

[246] कँवल भारती,दलित कविता का संघर्ष (हिन्दी दलित कविता के सौ वर्ष), पृष्ठ संख्या-32

जीवन का प्रारम्भ करने वाले डॉ. एन. सिंह के 20 वर्षों के साहित्यिक जीवन में प्रकाशित कृतियों का विवरण इस प्रकार है- 'सतह से उठते हुए' (काव्य संग्रह), 'संत कवि रैदास: मूल्यांकन और प्रदेय', (आलोचना) 'विचार ग्रंथावली', 'मेरा दलित चिंतन', व्यक्ति और विमर्श', (तीनों लेख संग्रह) 'रैदास ग्रंथावली', 'कठौती में गंगा' (नाटक) आदि। उनकी सम्पादित कृतियों में-'सम्पुट', 'दर्द के दस्तावेज', 'चेतना के स्वर', (तीनों कविता संग्रह) 'काले हाशिए पर', 'यातना की परछाइयाँ' (दोनों कहानी संग्रह) 'दलित साहित्य : चिंतन के विविध आयाम', 'दलित साहित्य और युगबोध' (लेख संग्रह), 'आचार्य पद्म सिंह शर्मा हिंदी आलोचना' (शोध-प्रबन्ध), 'शिखर की ओर' (श्री माता प्रसाद अभिनन्दन ग्रन्थ) महत्त्वपूर्ण हैं। उल्लेखनीय है कि उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को रेखांकित करते हुए लेखिका रमणिका गुप्ता ने 'हिंदी साहित्य में संघर्ष के उन्नायक : डॉ. एन सिंह। आदि के माध्यम से डॉ. एन. सिंह के लेखन, चिंतन और 90 के दशक में हुए दलित साहित्य के विविध विषयों के साथ दलित साहित्य के विकास का अवलोकन किया जा सकता है।

90 का दशक दलित साहित्य के लिए बहुत खास है। इस समय तक दलित-साहित्य, की साहित्यिक-दुनिया में अलग पहचान बना चुका था। इसलिए इस नए लेखन और मानदंड के चलते दलित साहित्य के लेखन, दलित साहित्य की उत्पत्ति, दलित-लेखन और गैर-दलित लेखन आदि की बहस दलित साहित्य के विविध विधाओं के माध्यम से छिड़ चुकी थी। उन्हीं विविध विधाओं के माध्यम से दलित कविता का नया स्वरूप उभरकर आया। जिसमें एक तरफ परम्परा का विरोध था तो दूसरी तरफ नए इतिहास का निर्माण हुआ होता दिखाई पड़ रहा था।

डॉ. एन. सिंह ने 'दलित साहित्य चिंतन के विविध आयाम' नामक पुस्तक लिखकर सभी आलोचकों का मुख बंद कर दिया था। इस पुस्तक में लिखे गए लेख दलित साहित्य के दस्तावेज बन गए। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इस विषय में लिखा है

कि- "आलोच्य पुस्तक में कुल बारह आलेख हैं जो दलित चिंतन के विविध आयामों की पड़ताल करते हैं, डॉ. एन. सिंह, कालीचरण स्नेही, डॉ. प्रेमशंकर, मोहनदास नैमिशराय, कँवल भारती, प्रेमकुमार मणि, डॉ. पुरुषोतम सत्यप्रेमी, डॉ. सत्य नारायण व्यास, डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर आदि ने ऐसे अनेक मुद्दों की चर्चा की है, जो वर्तमान परिप्रेक्ष्य में साहित्यिक राजनीतिक और वैचारिक स्तरों पर उठ रहे थे।"[247] इस परिवर्तन के विषय में डॉ. एन. सिंह ने अपनी अलग राय इस प्रकार थी, जिसे हम उन्हीं के शब्दों में समझने का प्रयास करेंगे। उन्होंने लिखा है कि "रैदास पहले दलित कवि ही नहीं हैं वह दलित चेतना के प्रथम कवि भी हैं।"[248]

हिंदी साहित्य के अंतर्गत मध्ययुग 'स्वर्ण-युग' के नाम से जाना जाता है। परन्तु यह भी स्पष्ट है कि दलित चेतना का युग वह कतई नहीं हो सकता। दलित चिंतन का विकास कई चरणों में हुआ है, जिसका एक चरण मध्ययुग भी था जिसमें मनुष्य को अपनेपन का एहसास हुआ। साथ ही मिथकीय चरित्रों और काल्पनिक दुनिया पर सवाल उठे।

डॉ. एन. सिंह का तो यह भी कहना है कि जिस कविता की शुरूआत मध्ययुग में हुई वह धीरे-धीरे सूखती चली गयी। इसका उल्लेख उन्होंने 'चेतना के स्वर' नामक पुस्तक में इस प्रकार किया है कि-"कबीर का काव्य रैदास की इस विचारधारा का ही विस्तार है। हिंदी दलित कविता की जो स्रोतस्विनी पंद्रहवी शताब्दी के मध्य बनारस में प्रवाहित हुई थी, वह धीरे-धीरे सूखती चली गई और लगभग पाँच सौ वर्षों तक दलित कविता के क्षेत्र में पूरी तरह सन्नाटा रहा! सन 1914 ई० में पटना के 'हीराडोम' ने भोजपुरी में एक कविता 'अछूत की शिकायत' लिखी।"[249]

---

[247] डॉ. एन. सिंह, दलित साहित्य चिंतन के विविध आयाम, पृष्ठ संख्या-25
[248] डॉ. एन. सिंह, दलित साहित्य चिंतन के विविध आयाम, पृष्ठ संख्या-119
[249] डॉ. एन. सिंह, चेतना के स्वर, पृष्ठ संख्या-8

दलित साहित्य के अंतर्गत अम्बेडकरवादी विचारधारा काम करती है और उसी पर सम्पूर्ण दलित साहित्य टिका है। जिसकी बाकायदा शुरूआत बीसवीं सदी में होती है। एन. सिंह ने लिखा है कि "हिंदी दलित कविता की बाकायदा शुरूआत बीसवीं शताब्दी के आठवें दशक में हुई। इसकी प्रेरणा डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा तो थी ही, महात्मा ज्योतिबा फुले का संघर्ष, मार्क्स की क्रांति दृष्टि तथा मराठी का दलित साहित्य भी रहा है।"[250] इस विचारधारा से प्रभावित प्रारम्भिक दौर के कवियों में डॉ. एन. सिंह ने माता प्रसाद, डॉ. राम शिरोमणि जैसे कवियों के सृजन को देखते हैं और श्री लालचन्द्र राही, डॉ. पुरूषोत्तम 'सत्यप्रेमी' डॉ. सोहनपाल 'सुमनाक्षर', मोहनदास नैमिशराय, डॉ. दयानन्द 'बटोही' जयप्रकाश कर्दम आदि कवियों ने बीसवीं सदी में कविता के पूरे स्वाद को बदल कर रख दिया है। जिसे डॉ. जयप्रकाश कर्दम की इन पक्तियों के माध्यम से देखा जा सकता है–

"तमाम विरोधों और दबाबों के बावजूद
जाति के जंगल का यह जीव
अपनी मुक्ति के लिए अड़ा
अपनी अस्मिता और अस्तित्व के लिए लड़ा है और आज
तमाम हौसलों के साथ
हाथों में खंजर लिए वह
दमन के दहलीज पर खड़ा है
और ललकार रहा है चीखकर
बाहर निकल हरामजादे

[250] डॉ. एन. सिंह, दलित साहित्य के मान प्रतिमान, पृष्ठ संख्या-24

तेरी ऐसी की तैसी।"[251]

दलित साहित्य के अंतर्गत बहुत से नए-नए स्वरूप स्थापित हुए हैं, परन्तु अभी भी इसमें सुधार की बहुत सी संभावनाएँ हैं। "हिंदी कविता की नित नयी संभावनाएँ खुल रही हैं, लेकिन उनकी कुछ सीमाएँ स्पष्ट भी होती जा रही हैं। जैसे प्रत्येक दलित कवि लगभग एक ही प्रकार की संवेदनाओं को अभिव्यक्ति दे रहा है। इस पुनरावृत्ति का कारण संभवतः सभी कवियों का एक ही प्रकार की स्थितियों और अनुभवों से गुजरना रहा है। सच मायने में यह कविता अपमानित पीढ़ियों के कोख से जन्मी है। बावजूद इसके दलित कवियों की कविताएँ आत्माख्यान से निकलकर अपने शिल्प को निखारने का प्रयास कर रही हैं। वे अब विकास की प्रारम्भिक सीढ़ियाँ पार कर चुकी हैं।"[252]

4.5. डॉ. तेज सिंह

दलित साहित्य के विकास में 'तेज सिंह' का अमूल्य योगदान है। तेज सिंह ने 'दलित साहित्य' के उद्भव, दर्शन, चिन्तन, विचारधारा, दलित साहित्य के नामकरण, दलित चेतना और उसकी उपयोगिता आदि को लेकर दलित साहित्यकारों को स्पष्ट मार्ग दिखाया है। जिसे उनके द्वारा प्रकाशित और सम्पादित पुस्तकों के माध्यम से समझा जा सकता है। नागार्जुन का कथा साहित्य, राष्ट्रीय आन्दोलन और हिंदी उपन्यास, उत्तरशती की हिंदी कहानी, आज का दलित साहित्य, अम्बेडकरवादी साहित्य का समाजशास्त्र (आलोचना); दलित समाज और संस्कृति (समाज); आज का समय-दलित कविता-संकलन, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की जब्दशुदा कहानियां, सबद विवेकी कबीर (संपादन); दलित आत्मवृतांत का इतिहास, अम्बेडकरवादी साहित्य आन्दोलन, प्रेमचंद

[251] डॉ. एन. सिंह, दलित साहित्य के मान प्रतिमान, पृष्ठ संख्या-26
[252] डॉ. एन. सिंह, दलित साहित्य के मान प्रतिमान, पृष्ठ संख्या-28

की रंगभूमि : एक विवाद एक संवाद, अम्बेडकरवादी विचारधारा और समाज आदि पुस्तकों में दलित चिंतन के विविध-पक्ष को उजागर किया गया है।

इतना ही नहीं उन्होंने 'अपेक्षा' पत्रिका के विशेषांकों के माध्यम से दलित साहित्य को विकसित किया है। जिसमें अम्बेडकरवादी और दलित कविता से संबंधित कई विशेषांक हैं। अंक-2 कबीर, अंक-3 संत रैदास, अंक-4 दलित आत्मवृत, अंक-8 अम्बेडकरवादी साहित्य आन्दोलन, अंक-9 जनकवि बिहारीलाल हरित, अंक-10 प्रेमचंद की रंगभूमि, अंक-12 अम्बेडकरवादी युवा कविता, अंक-14 अम्बेडकरवादी विचारधारा, अंक-15 दलित उत्पीड़न, अंक-15 अम्बेडकरवादी कहानी, अंक-26 भगवानदास, अंक-30-31 अम्बेडकरवादी साहित्य आलोचना उपन्यास, अंक-32-33 अम्बेडकरवादी संघ का घोषणा पत्र, अंक-39 दलित साहित्य बनाम अम्बेडकरवादी साहित्य, अंक-40-41 अपनी-अपनी अपेक्षाओं के दस साल, अंक-46-47 वरिष्ठ कथाकार ओमप्रकाश वाल्मीकि से सम्बंधित है।

इस प्रकार देखते हैं कि तेज सिंह ने दलित साहित्य को विविध रूपों में विकसित किया था और यही उन्हें अन्य दलित चिंतकों से भिन्न बनाता है। इनकी विचारधारा और चिंतन के केंद्र में पूर्णतया अम्बेडकरवाद है और इसे ही उन्होंने दलित मुक्ति का वास्तविक मार्ग माना हैं। इस सन्दर्भ में उनका मानना था कि इस व्यवस्था कि जड़ें खोदने की शुरूआत बहुत पहले शुरू हो चुकी थी। परन्तु इस विषय में विभिन्न दलित आलोचकों की अलग-अलग राय बनी हुई पर तेज सिंह का मानना है कि "पहला दलित जन-जागरण बुद्ध के समय में ही बुद्ध के चिंतन से सम्भव हुआ।"[253] बुद्ध का चिंतन वास्तविक दलित-चिंतन का प्रथम सोपान था जिसका प्रभाव आगे चलकर संत साहित्य

[253] तेज सिंह, अपेक्षा पत्रिका, जुलाई-सितम्बर- 2005, पृष्ठ संख्या-5

पर पड़ा, जिससे दलित समाज के अन्दर आत्मसम्मान की भावना का विकास हुआ और वह अपने ऊपर हुए शोषण का प्रतिरोध करने लगा।

इस चेतना के विकास के विषय में तेज सिंह ने इस प्रकार लिखा है कि “पहला जनतान्त्रिक प्रतिरोध बुद्ध के समय में, दूसरा बहुजन पुनर्जागरण काल में निर्गुण संत कवियों- कबीरदास, रैदास में हुआ और तीसरा आधुनिक युग में जोतिबा फुले के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आन्दोलन से हुआ और चौथा, डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक लोकतंत्र द्वारा संपन्न हुआ। भविष्य में ब्राह्मणवादी संस्कृति और दलित, पिछड़े और आदिवासियों की श्रमण संस्कृति के बीच और तेज होगा।”[254] आधुनिक-युग में इन सभी चिंतनों का इतना प्रभाव पड़ा की टुकड़ों-टुकड़ों में बँटें दलित समाज के अन्दर आत्मविश्वास जगा। जिससे ये लोग आधुनिक काल में आते-आते अपने अनुभव को स्वयं कलम बद्ध करने लगे। दलित चेतना की शुरूआत दलित कविता के रूप में कहाँ से शुरू होती है। इस विषय में दलित चिंतकों के बीच बड़ा मदभेद है। परन्तु डॉ. तेज सिंह का मत इस प्रकार है। जिसको हम उन्हीं के शब्दों में समझ सकते हैं। जिसका उल्लेख उन्होंने इस प्रकार किया है कि “आधुनिक युग में दलित पुनर्जागरण की चेतना का पहला कवि स्वामी अछूतानंद को माना जा सकता है। हालाँकि उसके आसपास ही पटना के हीराडोम ने भोजपुरी में ‘अछूत की शिकायत’ लिखकर दलित वर्ग की वेदना और पीड़ा की अभिव्यक्ति दी थी और जो अन्तत: एक शिकायत बन गई।”[255]

दलित साहित्य के अंतर्गत दलित कविता का विकास कई चरणों में हुआ है। परन्तु कुल मिलाकर यह स्पष्ट है कि आधुनिक दलित कविता अम्बेडकरवादी मूल्यों पर आधारित है। अम्बेडकरवादी चिंतन के विषय में तेज सिंह का मानना था। जिसका

---

[254] तेज सिंह, अम्बेडकरवादी विचारधारा : इतिहास और दर्शन, संपादक वेद प्रकाश, पृष्ठ संख्या-9

[255] तेज सिंह, अपेक्षा पत्रिका, जुलाई-सितम्बर -2005, पृष्ठ संख्या-7

उल्लेख रजनी अनुरागी ने 'मगहर' पत्रिका में इस प्रकार किया है। कि "अम्बेडकरवादी साहित्य और आलोचना की स्थापना की कोशिश ही वह चीज थी जो पहले जनवादी आलोचना से दलितवादी आलोचना दृष्टि तक लाती है और बाद में दलित आलोचना दृष्टि से अम्बेडकरवादी दृष्टि तक ले जाती है।"[256]

तेज सिंह के विचारों के आधार पर कोई यह नहीं कह सकता कि वे अम्बेडकरवाद को लेकर दुविधा में थे। "दलित साहित्य के स्थान पर अम्बेडकरवादी साहित्य की अवधारणा का प्रयोग किया जाना चाहिए। अम्बेडकरवादी साहित्य की अवधारणा का आधार अम्बेडकरवाद है यानी अम्बेडकरवादी चिंतन पर आधारित अम्बेडकरवादी समाज-दर्शन है, उसके अनुसार, "डॉ. अम्बेडकर के समाज-दर्शन के आधार पर ही 'अम्बेडकरवादी साहित्य का समाजशास्त्र' विकसित हुआ है।"[257]

इस प्रकार कह सकते हैं कि यही अम्बेडकरवादी समाज-दर्शन का प्रभाव 90 के दशक के बाद दलित साहित्य का मुख्य आधार बिंदु बन गया है। इसलिए दलित साहित्य के किसी भी विधा में अम्बेडकरवादी चिंतन की पड़ताल की जाती है। भले ही उसका लेखक दलित हो या गैर-दलित। दलित जागरण के शुरूआती दिनों में दलित चेतना को उन्होंने अछूतानन्द के साथ-साथ बिहारीलाल 'हरित' में भी देखा था। बिहारीलाल 'हरित' ऐसे कवि रहे हैं, जिन्होंने कविता रचना के साथ-साथ 'जय भीम' का नारा जन-जन तक पहुँचाया है। बिहारीलाल 'हरित' के पास अम्बेडकरवादी चेतना का अभाव दिखाई पड़ता है। ये एक तरफ जन-जागरण कर रहे थे दूसरी तरफ अपने कविताओं में भजन-कीर्तन शैली अपनाकर परम्परागत हिन्दूवादी मानसिकता का पोषण भी कर रहे थे। उदाहरण के लिए उनके द्वारा लिखित दो कविताओं का उल्लेख किया जा रहा है जिसमें

[256] रजनी अनुरागी, मगहर, पृष्ठ संख्या-6

[257] तेज सिंह, अम्बेडकरवादी विचारधारा : इतिहास और दर्शन, संपादक वेद प्रकाश, पृष्ठ संख्या-6

एक नवयुवकों के अन्दर जनचेतना का संचार है तो दूसरी में दीनदयाल का गुणगान। इन दोनों कविताओं का सृजन 1938 के आस-पास हुआ है।

"उठोगे गर अपने पैरों
जाति को सुधारोगे
डूबती हुई कौमी को किश्ती से उबरोगे
लेकर बल्ली विधा की तुम कौमी को उभारोगे।"[258]

इन पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि लेखक को भली-भाँति मालूम था कि अगर युवावर्ग आगे आयेगा तो पूरा समाज सुधरेगा। कौमों की स्थिति सुधरेगी और गर्त में गिर चुके मनुष्यों का जीवन बदलेगा। इसलिए उसने युवाओं को आगे बढ़ने के लिए आह्वान कर किया है। लेकिन वहीं दूसरी कविता जिसमें भजन-छन्द द्वारा दीनदयाल को सम्बोधित किया है–

"मेटो कष्ट तुम दास का म्हारी
सुनियो दीनदयाल जी
अब वार म्हारा आ गया है
बिल्कुल न होगी टाल जी।"[259]

बिहारीलाल 'हरित' के चिंतन का विषय केवल यही दो चीजें नहीं रहीं बल्कि वे अपने लेखन के दौरान कई बार बदले हुए रूप में दिखाई देते हैं। 1941-42 ई० के लेखन में डॉ. बाबा साहब का प्रभाव पड़ता है। जिससे उनके अन्दर नई सौंदर्य-चेतना विकसित होती है। लेकिन वे आगे और भी बदले हुए दिखाई देते हैं।

बिहारीलाल 'हरित' गाँधी, जगजीवन राम, महाराणा प्रताप, चाणक्य, चंद्रगुप्त, शिवाजी आदि की प्रशंसा में भी कविताएं लिख रहे हैं। इसलिए उनके लेखन में

---

[258] तेज सिंह, अपेक्षा पत्रिका, जुलाई-सितम्बर- 2005, पृष्ठ संख्या-8
[259] तेज सिंह, अपेक्षा पत्रिका, जुलाई-सितम्बर- 2005, पृष्ठ संख्या-8

रचनाकार के रूप में प्रसिद्ध होने की ललक तो थी। वे अम्बेडकरवाद के विचारों पर अडिग नहीं हो सके। इस विषय में कँवल भारती ने लिखा है कि "कवि दलित परम्परा और समस्याओं के प्रति भावुक तो था, पर उसकी सोच हिंदुत्व के दायरे को तोड़ नहीं पा रही थी। जो विश्वास जनता में जड़ जमाये हुए थे, वही विश्वास कवि के भी थे। उन्हीं विश्वासों के साथ वह जनता में रविदास की प्रतिष्ठा कर रहा था-

"चीर गाल को दिया न देर लगायी

तब सात जनेऊ काढ़ दिए दिखलायी।"[260]

दलित कविता के क्षेत्र में अब केवल पुरुष लेखक ही नहीं बल्कि स्त्री लेखिका भी सक्रिय होकर अपने जीवन अनुभव को शब्दों के माध्यम से व्यक्त कर रही हैं। जिसको रजनी तिलक के इन शब्दों से समझ सकते हैं कि "कविताएं मेरा शौक नही, मेरी पीड़ा हैं, उत्तेजना व ऊर्जा हैं। पीड़ा उत्पीड़न झेलने वाली करोड़-करोड़ बेज़ुबान औरतों की मैं भी एक इकाई हूँ।"[261]

रजनी तिलक की कविताओं पर तेज सिंह का आरोप है कि उनकी कविताएँ सिर्फ संवेदना के धरातल को स्पर्श करके रहे जाती हैं। किन्तु हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि जिस समाज ने महिलाओं को हमेशा कमतर देखा गया हो उस समाज से निकली महिलाओं का इतना भी करना किसी क्रांति से कम नहीं है।

4.6. डॉ. धर्मवीर

दलित साहित्य में डॉ. धर्मवीर का नाम सबसे विवादास्पद है। इनके द्वारा लिखित विभिन्न पुस्तकें इस प्रकार हैं। 'हिंदी की आत्मा और कबीर के आलोचक', 'दलित चिंतन का विकास :अभिशप्त चिंतन से इतिहास चिंतन की ओर', 'कबीर: खसम खुशी

---

[260] कँवल भारती, दलित कविता का संघर्ष (हिन्दी कविता के सौ वर्ष), पृष्ठ संख्या-98

[261] तेज सिंह, अपेक्षा पत्रिका, जुलाई-सितम्बर- 2005, पृष्ठ संख्या-32

क्यों होय', 'प्रेमचंद सामंत का मुंशी,' 'प्रेमचंद की नीली आँखें', 'मातृसत्ता, पितृसत्ता, और जारसत्ता', 'कबीर और रामानन्द: किंवदन्तियाँ', 'कबीर के कुछ और आलोचक', 'हजारी प्रसाद द्विवेदी का प्रक्षिप्त चिंतन', 'अशोक बनाम वाजपेयी', 'अशोक वाजपेयी', 'दूसरों की जूतियाँ', 'मेरी पत्नी और भेड़िया'(आत्मकथानक) इत्यादि। डॉ. धर्मवीर का स्वयं का चिंतन भी विवादास्पद रहा है।

उनका चिंतन अन्य दलित साहित्यकारों से भिन्न है। इसलिए इसे लेकर दलित और गैर-दलित आलोचकों के बीच सहमति और असहमति की टकरार है। उन्होंने दलित चिंतन को अपने अनुसार मोड़ने का भरसक प्रयास किया है।

डॉ. धर्मवीर की खास विशेषता यह रही है कि उन्होंने जहाँ एक तरफ हिंदी के कई प्रकांड विद्वानों से भिन्न दृष्टि प्रस्तुत करके कबीरदास को सबसे अलग दिखाया है, वहीं दूसरी तरफ उपन्यास सम्राट प्रेमचंद के ऊपर अनेक आरोप लगाकर हिंदी जगत् में हलचल मचा दी है। इतना ही नहीं उन्होंने अपने आलोचकीय दृष्टि से बुद्ध और आंबेडकर तक को नहीं छोड़ा है। वे कहते हैं- "वे अपनी कृपा दृष्टि दलित स्त्रियों या सवर्ण प्रगतिशीलों पर ही नहीं भगवान बुद्ध पर भी डालते हैं- 'प्राचीन भारत में बुद्धं शरणं गच्छामि करने वाले उन बौद्ध भिक्षुओं की इतनी लम्बी कतार क्यों थी? अध्यात्म की खोज और प्राप्ति की बात होती तो दो-चार लोग घर-बार छोड़ कर भिक्षु, अर्हत या संन्यासी बन जाते। इतने सारे लोग अपने घरों को छोड़कर आध्यात्मिक क्यों बन गए हैं? ध्यान रहे, संन्यासी ने घर-बार ही छोड़ा है, बल्कि समाज और राष्ट्र भी छोड़ा है। संन्यास का दूसरा नाम सामाजिक मृत्यु है। ऐसे कानून से व्यक्ति के लिए संन्यास से ही जिन्दा रहने का एकमात्र रास्ता निकलता है। लेकिन उससे राष्ट्र लुट जाता है- तथा विदेशियों के

हाथ में चला जाता है।"[262]

दलित साहित्य के निर्माण में बुद्ध के दर्शन और विचारों का योगदान किसी से छुपा नहीं है, लेकिन उन्हीं को डॉ. धर्मवीर ने शंका की नज़र से देखा है। डॉ. अम्बेडकर के चिंतन के बारे में भी वे कहते हैं कि- "कहना यह है कि दलित जातियों के पास पर्सनल कानून की इतनी बड़ी मोरल शक्ति थी लेकिन उन्होंने वैचारिक युद्ध में इसका हथियार के रूप में इस्तेमाल नहीं किया। वे ब्राह्मणों के खोदे अखाड़ों में भिड़कर अपनी ऊर्जा नष्ट करते रहे। पर मुझे दलित के शुद्ध और मूल चिंतन को भारत की जनता के सामने रखना है। दुर्भाग्य से रैदास, कबीर और मक्खलि गोसाल के सिवा ऐसा कभी नहीं हुआ है। बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर का चिंतन, उनके बौद्ध धर्म में जाने की वजह से स्वत्रंत दलित चिंतन नहीं रह सका। वैसे मोरल के मामले में वे भी हमारे लिए बेजोड़ हैं।"[263] अब इन विचारों से उनकी राय स्पष्ट रूप में समझ में आ जाती है।

यही सब लेखन उन्हें अन्य दलित साहित्यकारों से भिन्न बनाता है। उनके द्वारा खोजी परम्परा में दलित धर्म की खोज की महत्ता ही अधिक है। ऐसा लगता है डॉ. धर्मवीर सबसे भिन्न दृष्टि का निर्माण इसलिए कर रहे थे कि समाज में दलितों की अलग पहचान बन सके। परन्तु दलित साहित्यकार उनसे भिन्न साहित्य और समाज की कल्पना करते हैं। बल्कि यह कह सकते हैं कि वे सभी मनुष्य को समानता से देखने की वकालत करते हैं। किन्तु ऐसा लग रहा है कि डॉ.धर्मवीर को यह बिलकुल नहीं पसंद था। इसलिए उन्होंने अलग-अलग धर्म और चिंतन को प्रस्तुत किया और स्पष्ट शब्दों में कहा कि- "दलित से पूछा जाए कि किस दिन ब्राह्मण ने उन्हें अपने साहित्य में सम्मान से पुकारा है।

---

262 lokmitr.blogspot.com/2010/02/blog-post_17.html, post by ved Prakash, 17/02/2010, 2:10 am

263 डॉ. धर्मवीर, प्रेमचंद की नीली आँखें, पृष्ठ संख्या-7

दलित बताएगा की एक पुस्तक में भी नहीं और एक बार भी नहीं । और तो और जब गलियाँ शेष नहीं रही तो ब्राह्मण ने शूद्र और अछूत के शब्दों और सम्बोधनों को ही गाली बना दिया । हाँ यही हुआ है कि चमार और भंगी को गाली का पर्याय बनाया गया है ।"[264]

दलित साहित्य के विषय में उनकी राय स्पष्ट थी । चाहे वह दर्शन हो, दलित गैर-दलित लेखन या फिर अन्य । लेखन के विषय में उन्होंने स्वयं लिखा है कि "दलित पीड़ा के बारे में कहा जा सकता है कि जब बादशाह सामने हैं तो बादशाह के नाटक कैसे? जब भंगी लिख रहा है तो दूसरे को उनके तरफ लिखने से विरत हो जाना चाहिए । जब स्मृतियों के आदेश चले थे कि शूद्र को शिक्षा मत दो तो उनका एक उदारवादी उद्देश्य पहले भी था कि उनकी तरफ से द्विज ही लिख देगें । सही बात है, कोई गैर-दलित लेखक बेटी के ब्याह में कम दहेज देने की थोड़ी बहुत गरीबी का अनुभव कर के भंगी की तरफ से सहानुभूति वाला साहित्य लिख सकता है । लेकिन यहाँ सवाल यह है कि दूसरों का मैला ढोने वाली वह भंगन को कहाँ ले जायेगा ।"[265]

दलित साहित्य में लेखन और हिंदी दलित कविता के प्रथम कवि को लेकर भी लम्बी बहस चली है । परन्तु डॉ. धर्मवीर स्वामी अछूतानन्द से परिचित थे, इसलिए उन्हें दलित कविता के प्रथम कवि मानने में स्पष्ट राय रखी है- जिसे उनके इस कथन से समझा जा सकता है कि "वर्तमान दलित साहित्यकारों में साहस, बल और पराक्रम पैदा करने वाले स्वामी अछूतानन्द 'हरिहर' वह दलित साहित्य के जनक हैं उत्तरी भारत में हीराडोम से भी पहले दलित साहित्यकार की अद्वितीय भूमिका निभा चुके हैं, जिसे स्वीकार करने में बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने भी संकोच नहीं किया । स्वयं बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर जी स्वामी ने अछूतानंद 'हरिहर' का व्यक्तित्व और कृतित्व से प्रभावित होकर

[264] डॉ. धर्मवीर, कबीर नई सदी में एक कबीर, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का प्रक्षिप्त चिंतन, पृष्ठ संख्या-68
[265] डॉ. धर्मवीर, मातृसत्ता, पितृसत्ता और जारसत्ता : खंड तीन, प्रेमचंद : सामंत का मुंशी, पृष्ठ संख्या-27

स्वामी जी के लिए पत्र लिखा था। दलित साहित्यकारों के लिए इससे बड़ा और क्या प्रमाण मिलना है।"[266]

स्त्रियों के प्रति उनके दृष्टिकोण के विषय में अनीता भारती लिखती हैं कि "वे स्त्रियों पर पूरा कब्जा चाहते थे। डॉ. धर्मवीर किसी हिन्दू मनुस्मृति की तरह दलित औरतों को पितृसत्तामक समाज में उनके सामने ब्राह्मणवादी पितृसत्ता के संरक्षक बनकर उन्हें घर की चारदीवारी में सिमटा देखना चाहते हैं। इसके अलावा अगर किसी औरत ने उनके इस सामंतवादी लेखन के खिलाफ अवाज उठाई तो उनके खिलाफ फतवा जारी कर देगें। उनके विचार ऐसे सोच वाली स्त्री अपने अधिकारों के लिए लड़ना चाहती है लड़े। रखैल के रूप में अधिकार माँगे, वेश्या के रूप में अपने दाम बढ़वाए और देवदासी के रूप में पुजारी की सम्पति में हाथ मारे (प्रेमचंद : सामंत का मुंशी) असल बात यह है कि डॉ. धर्मवीर दलित स्त्री पर सौ फीसदी कब्ज़ा चाहते हैं। अगर वह काबू में आ जाती है तो ठीक है, नहीं तो उन्होंने उसके लिए वेश्या, रखैल, देवदासी आदि संबोधन तो रखे हैं ही।"[267]

4.7. डॉ. श्यौराज सिंह 'बेचैन'

श्यौराज सिंह 'बेचैन' की पहचान दलित चिन्तक, आलोचक और दलित साहित्य को स्थापित करने वाले विद्वानों में है। इसलिए उन्हें किसी पहचान की जरूरत नहीं है। दलित साहित्य के विकास में इनका अभूतपूर्व योगदान है। अब तक इनके द्वारा लिखित कविता संग्रह 'नई फसल', 'क्रौंच हूँ मैं', 'फूल की बारहमासी', 'भोर भी अँधेरा

---

[266] डॉ. धर्मवीर, मातृसत्ता, पितृसत्ता और जारसत्ता : खंड तीन-ख, प्रेमचंद : की नीली आँखें, पृष्ठ संख्या-203

[267] अनीता भारती, दलित महिला विरोधी डॉ. धर्मवीर, http://oppressedworld.blogspot.com/2011/04/blog

भी', 'चमार की चाय' इत्यादि । तथा 'उपन्यास साहित्य में दलित समस्या और समाधान', 'स्त्री विमर्श और पहली दलित शिक्षिका', 'सामाजिक न्याय और दलित साहित्य', 'अम्बेडकर गाँधी और दलित पत्रकारिता', 'उत्तरसदी विमर्श कथा साहित्य में दलित विमर्श', 'मीडिया और दलित' आदि।

कवि, आलोचक और दलित चिन्तक के साथ-साथ श्यौराज सिंह 'बेचैन' एक कुशल पत्रकार थे। अपने शुरूआती दिनों में वे दैनिक समाचार पत्रों में लिखा करते थे जिससे उनकी छवि स्तंभकार के रूप में बनी। "राष्ट्रीय सहारा' दैनिक समाचार पत्र में उन्होंने एक नियमित 'दलित उवाच' कॉलम लिखकर 'स्तम्भकार' के रूप में अपनी अलग-अलग जगह बनाई, वैसी पहचान नैमिशराय भी नहीं बना पाए।"[268] दलित समाज के जीवन और उनके ऊपर हो रहे जुल्म-ओ-सितम से और समाज को परिचित कराने का पत्रकारिता अच्छा माध्यम रहा है। शुरू में पेपर में स्तम्भ लिखने वाले केवल दो ही नाम रहे हैं। एक 'बेचैन' और दूसरा चंद्रभान प्रसाद, जिन्होंने दलित समाज को पत्रकारिता के माध्यम से जागरूक किया। चंद्रभान प्रसाद द्वारा उठाया गया यह सवाल कितना सार्थक है, उसे इस प्रकार समझ सकते हैं "वर्तमान ग्रन्थ में सम्मिलित रचनाएं मीडिया में दलित भागीदारी के प्रश्न को भारतीय चिंतन पद्धति के लोकतंत्रीकरण के प्रश्न के रूप में उठाती हैं। यह समय की मांग भी है। यदि दलित राष्ट्रपति बन सकता है, तो पत्रकार क्यों नहीं? यदि दलित लोकसभा का अध्यक्ष बन सकता है तो पत्रकार क्यों नहीं? यदि दलित उच्चतम न्यायालय का सर्वोच्च न्यायाधीश बन सकता है तो किसी समाचार पत्र का संपादक क्यों नहीं?"[269]

दलित साहित्य में विभिन्न लेखकों और विचारकों के चिंतन से प्रेरित हुआ और

[268] डॉ. श्यौराज सिंह 'बेचैन' पर विशेषांक, सम्यक भारत, पृष्ठ संख्या-127
[269] डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन पर विशेषांक, सम्यक भारत, पृष्ठ संख्या-139

इसने अपनी एक नई जमीन तैयार की जिससे परम्परागत साहित्य की जमीन खिसक गई। इसलिए इसके उद्भव, विषय वस्तु, विचारधारा और विस्तार के अतिरिक्त 'दलित' शब्द पर भी लम्बी बहस चली। किसी ने इस शब्द को दबा कुचला, किसी ने सर्वहारा, किसी ने समाज में सभी शोषित, किसी ने किसान तो किसी ने आदिवासी महिला के अतिरिक्त और आदि कई परिभाषाएं भी गढ़ी गई है लेकिन श्यौराज सिंह बेचैन का मानना है कि "दलित वह है जिसे भारतीय संविधान में अनुसूचित जाति का दर्जा दिया गया है।"[270] दलित शब्द को संविधान में मान्यता भले न हो लेकिन वर्तमान में यह शब्द समाज में रूढ़ हो चुका है। यह देश-विदेश के विभिन्न विश्विविद्यालयों में उपयोग किया जा रहा है। एक बात तो स्पष्ट है कि यह इतिहास में दलितों के स्थिति का बोध कराता है और भविष्य में यह उनको एकजुटता का सन्देश देता है। दलित साहित्य केवल साहित्य नहीं है बल्कि यह उस व्यवस्था के खिलाफ है जिसने समाज में मनुष्य को बांटा है। श्यौराज सिंह बेचैन की आलोचकीय दृष्टि समाज को जोड़ने वाली है। विद्यार्थी जीवन से ही दलित, किसान, मजदूर आदि के अधिकारों के लिए लड़ने वाले 'बेचैन' ने कम्युनिस्ट पार्टी के पूर्ण-कालिक सदस्य रहते हुए अनेक आंदोलनों में सक्रिय भागीदारी निभाई।

दलित साहित्य की उत्पत्ति को लेकर 'बेचैन' की मान्यता इस प्रकार है कि "यहाँ हम साहित्यिक दृष्टि से कुछ व्यक्तियों की प्रतिनिधि भूमिकाओं का अध्ययन कर रहे हैं। इसमें रैदास और कबीर की परम्परा में प्रमुख नाम स्वामी अछूतानंद का है जो संत थे। समाज सुधारक प्रतिभाशाली कवि थे और मिशनरी पत्रकार थे। अछूतानंद का वैचारिक विकास शनै: शनै: हुआ। डॉ. अम्बेडकर से पूर्व हिंदी व्यवस्था में बदलाव लाने के बजाय स्वयं को 'आदि हिन्दू' मान रहे थे। इनके लिए उनके पास पर्याप्त ऐतिहासिक ज्ञान था।

[270] ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या-13

स्वामी अछूतानंद आधुनिक दलित साहित्य के जनक हैं।"[271]

इस विषय को लेकर दलित चिंतकों और गैर-दलित चिंतकों के बीच लगातार बहस होती रही है। हीराडोम की कविता में दलित चेतना के सारे तत्व मौजूद थे, परन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि हीराडोम और अछूतानन्द जैसे लोगों के प्रभाव के बाद भी दलितों के अन्दर पंडित बनने की ललक बनी हुई थी। इसका उल्लेख श्यौराज सिंह 'बेचैन' ने इस प्रकार किया है कि "1950 के आस-पास दलितों में जो पीढ़ी अपनी थोड़ी बहुत पढ़ाई-लिखाई का उपयोग कर रही थी, यह कविता के साथ-साथ अपने नाम के साथ पंडित विशेषण जोड़कर ब्राह्मण जैसा दिखने का प्रयास कर रहे थे। आगरा क्षेत्र में पंडित दौजीनाथ, पंडित प्यारेलाल और पंडित रत्नकुमार ने ब्राह्मणों की पंडिताई के विकल्प में पंडिताई शुरू की थी।"[272] इसलिए जब यह कहा जाता है कि दलित साहित्य की मुकम्मल शुरूआत 90 के दशक के बाद होती है तो उसके मायने बदल जाते हैं, क्योंकि इसमें दिखावापन के लिए कोई जगह नहीं रह जाती। बल्कि समानता और अधिकार के लिए संघर्ष दिखाई देता है। जिसमें मनोरंजन नहीं बल्कि समाज की पीड़ा होती है। जिसे उनके रचनाकर्म के माध्यम से समझ सकते हैं। इसका उल्लेख कँवल भारती ने इस प्रकार किया है कि "बेचैन ने अपनी रचना-प्रक्रिया को भी अपनी एक कविता में व्यक्त किया है, 'दर्द समेट लिखा मैंनें।' यह संकलन की सबसे मार्मिक कविता है और इस मायने में सबसे महत्त्वपूर्ण भी, जहाँ यह कवि के जीवन के दुखद-यथार्थ से हमें रू-ब-रू कराती है, वहाँ इससे यह भी स्पष्ट होता है कि कविता का अर्थ मनोरंजन नहीं, बल्कि उत्पीड़ित समाज की पीड़ा को रेखांकित कर समाज-सम्मुख लाना है। कवि कहता है-

[271] डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन, चिंतन की परम्परा और दलित साहित्य, पृष्ठ संख्या-188

[272] डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन, चिंतन की परम्परा और दलित साहित्य, पृष्ठ संख्या-192

गिरता उठता चला

ज्ञान की कुछ ऊँचाई तक पहुँचा।

पर्वत राई लगा

स्वार्थ से ऊपर बैठ लिखा मैंनें।

मादक लगी न रात

चाँदनी साधक लगी न स्मृतियाँ।

सूरज ठंडा लगा

धूप में जिस दिन बैठ लिखा मैंनें।"[273]

4.8. मोहनदास नैमिशराय

दलित साहित्य आज जिस मुकाम पर पहुँचा है, उसके पीछे उसका लंबा जीवन संघर्ष है। इसके लिए अनेक विद्वानों ने समाज को मार्ग दिखाने का कार्य किया है। इनमें मोहनदास नैमिशराय का एक बड़ा नाम है। इनका जन्म मेरठ शहर (उ.प्र.) में हुआ था। दलित साहित्य के अंतर्गत अब तक इन्होंने आत्मकथा, कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास आदि को माध्यम बनाकर इन्होंने दलित साहित्य के लिए मुकम्मल मार्ग निर्मित किया है। 'सफदर का बयान', 'आग और आन्दोलन' (कविता-संग्रह), 'अदालतनामा', 'हैलो कामरेड', 'हिंदी रेडियो नाटक' (नाटक), 'दलित उत्पीड़न का विशेषांक' 1990, 'अपने-अपने पिंजरे' (आत्मकथा, दो भाग), 'आवाजें' (कहानी संग्रह), 'मुक्तिपर्व', 'झलकारी बाई', 'आज बाजार बंद है', 'क्या तुम मुझे खरीदोगे (उपन्यास)', 'भारतीय दलित आन्दोलन का संक्षिप्त इतिहास' 2004, 'हिंदी दलित साहित्य' 2018, आदि कई

[273] कँवल भारती, दलित कविता का संघर्ष (हिन्दी दलित कविता के सौ वर्ष), पृष्ठ संख्या-170

पुस्तकों का अनुवाद और पत्रिकाओं का संपादन भी किया है। मोहनदास नैमिशराय का कहना है कि "दलित साहित्य ने भारतीय समाज में विमर्श को जन्म दिया। उस विमर्श ने कम-से-कम इतना तो किया कि दलित और द्विज समाज के बीच सामाजिक न्याय हेतु संवाद बना।"[274]

दलित साहित्य के आगमन से भारतीय समाज के विभिन्न स्वरूपों की तरफ चिंतकों का ध्यान गया। इसलिए अब आम-जन की आवाज मुखर होती हुई दिखाई देने लगी। जिससे यह स्पष्ट होता है कि दलित साहित्य में वास्तविक समस्याओं के निराकरण करते हुए रचनाकारों ने स्वतंत्र-लोकतंत्र को स्थापित करने का मार्ग प्रशस्त किया। इन्हीं विचारों और दर्शन के बल पर दलित साहित्य का मजबूत स्तम्भ खड़ा है, जिसमें आम जनता की समानता की लड़ाई लड़ी जा रही है। अब्राहम लिंकन ने "लोकतंत्र की परिभाषा देते हुए इसे जनता का, जनता के द्वारा, जनता के लिए शासन कहा है।"[275] दलित साहित्य जनता के लिए जनता द्वारा लिखा गया साहित्य है। इसलिए इसमें आम जन के सुख-दुःख के अनुभव की अनुभूति होती है।

भारतीय समाज की कुछ जातियाँ पहचान के लिए तरसती रही हैं, जिसका उल्लेख मोहनदास नैमिशराय ने इस प्रकार किया है कि "आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने हिंदी साहित्य के इतिहास में लिखा है कि-"किनारे पर पड़ी जातियाँ छँट गईं और बहुत दिनों तक ना हिन्दू न मुसलमान बनी रहीं।"[276] आखिर ये कौन सी जातियाँ थीं, जो लगातार उपेक्षित और हाशिए पर रहीं? निश्चित रूप में ये जातियाँ निम्नवर्ग की रही होंगी, जिन्हें उपेक्षित किया गया। यह कोई पहली बार नहीं हो रहा था बल्कि पूर्व निर्मित मानसिकता थी इतिहासकार प्लेखनाव का स्पष्ट कहता है कि "यह देखा गया है कि महान

[274] मोहनदास नैमिशराय, भारतीय दलित आन्दोलन का इतिहास- 4, पृष्ठ संख्या-187
[275] डॉ. राजेंद्र मिश्र, साहित्य की वैचारिक भूमिका, पृष्ठ संख्या-202
[276] मोहनदास नैमिशराय, हिन्दी दलित साहित्य, पृष्ठ संख्या-16

प्रतिभाएँ वहीं प्रगट होती हैं जहाँ उनके विकास की अनुकूल सामाजिक परिस्थितियाँ होती हैं...प्रत्येक महान प्रतिभा जो वास्तव में समाज में एक प्रभावशाली शक्ति बन जाती है, तत्कालीन सामाजिक सम्बन्धों की उपज होती है...वे स्वत: प्रवृत्तियों का निर्माण होती हैं।"[277]

मोहनदास नैमिशराय उन शब्दों को निषिद्ध शब्दावली बताते हैं जो दलित शोषण का हिस्सा रहे हैं "अवतार, अन्नदाता, अन्नपूर्णा, अर्चना, असुर आर्यपुत्र, आर्य क्षेत्र, आर्यावर्त, आत्मा, आत्मिक, अध्यात्म, आध्यामिक, अध्यात्मवाद, ईश्वर, ईश्वरीय, ईश्वरवाद, डाईन, देवता, देव, देवात्मा, देवपुत्र, देवी, दैवीशक्ति, परमेश्वर, परमात्मा, परमपिता, पापी, पुनर्जन्म, पुण्यात्मा, प्रेत, प्रेतात्मा, पूजा, पूज्य, पूजनीय, पूजनीया, प्रभु, भगवान, भाग्य, भाग्यहीन, भाग्यविधाता, भाग्यशील, भूत, भूतात्मा, दुर्भाग्य, महिमा, महामहिम, महत्तमा, नर्क, राष्ट्रपिता, वंदनीय, स्वर्ग, हरिजन, हिन्दुस्तान, नीच, कमीन, ढेड, चूहड़ा, महाराज, चुड़ैल।"[278] लेखक ने सच ही कहा है वे शब्द ही थे जिसे सुन लेने पर कानों में सीसा डाल दिया जाता रहा। शब्द ही थे जिनके बल पर काल्पनिक संसार रचकर एक बड़े वर्ग को भ्रमित रखा गया। इसलिए शब्दों के प्रभाव को समझना जरूरी है। इस विषय में 'आन्दोलन' नामक एक कविता उल्लेखनीय है-

"तुम सामंत तो नहीं हो
न ही कोई माफिया
फिर तुम्हारे पास
हथियार बंद गिरोह कहाँ होंगे
तुम्हारे पास केवल शब्द हैं
उन्हीं को तुम्हें आन्दोलन बनाना है

[277] डॉ. धर्मवीर भारती, सिद्ध साहित्य, पृष्ठ संख्या-90
[278] मोहनदास नैमिशराय, हिन्दी दलित साहित्य, पृष्ठ संख्या-26

क्रांति हथियार से नहीं शब्दों से आती है।"[279]

जब दलित साहित्य की उत्पत्ति को लेकर विवाद खड़ा हुआ, तब नैमिशराय ने 'हिंदी दलित साहित्य' नामक पुस्तक में लिखा कि- "कहा जाता है कि पहले दलित साहित्य मराठी में आया, पर कवि और लेखक कँवल भारती का मानना है कि ऐसा नहीं है। दलित साहित्य का उदय हिंदी और मराठी में लगभग एक ही समय में हुआ है। हिंदी में साठ के दशक में चंद्रिका प्रसाद 'जिज्ञासु' दलित चेतना साहित्य के प्रवर्तक हैं।"[280] चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु का समय साठ का दशक था। जबकि आधुनिक दलित कविता का प्रारम्भ '1914' भोजपुरी कवि 'हीराडोम' से माना जाता है। दलित साहित्य की पहचान लम्बा संघर्ष करने के बाद स्वतन्त्र भारत में बन पाई है। मोहनदास नैमिशराय ने साठ के दशक को इस प्रकार लिखा है "साठ के दशक में जो दलितधारा शुरू हुई थी, उसको चन्द्रिका प्रसाद 'जिज्ञासु-युग' नाम दे सकते हैं। इस युग की दलित चेतना संकीर्ण नहीं थी। उसमें डॉ. आंबेडकर और राहुल सांकृत्यायन की विचारधारा का प्रवाह था। यह धारा न केवल समाज-सुधारों की पक्षधर थी, बल्कि आर्थिक-सुधारों की भी समर्थक थी।"[281]

आजादी के बाद भारत में दलितों के लिए गंभीर समय था, उन्हें शंका हुई की देश तो आजाद हो गया है, लेकिन इसमें दलितों का क्या भला होगा? 'गोरे तो चले गये पर अब कालों का राज होगा' लेकिन कुछ भी हो दलित समाज पर अब डॉ. आंबेडकर का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगा था। साठ के दशक में कई सामाजिक संगठन और कार्यकर्त्ता इस समय सक्रिय हुए, जिसे मोहनदास नैमिशराय ने दो पीढ़ियों में बाँटा हैं। "उस समय की पहली पीढ़ी के कार्यकर्ताओं तथा लेखकों, जिसमें अभी भी दमखम था,

[279] मोहनदास नैमिशराय, आग और आन्दोलन, पृष्ठ संख्या-51
[280] मोहनदास नैमिशराय, आग और आन्दोलन, पृष्ठ संख्या-96
[281] मोहनदास नैमिशराय, हिन्दी दलित साहित्य, पृष्ठ संख्या-96

शामिल थे बिहारीलाल हरित (दिल्ली) माता प्रसाद (जौनपुर) रामचरण बनौधा (इलाहाबाद), डॉ. डी.डी जाटव (आगरा), नथ्थूराम ताम्रमेली, गुरदयाल सिंह एडवोकेट, देवीदयाल (सैनी) दूसरी पीढ़ी में 1960 से 70 के बीच जिन्होंने संघर्ष करते हुए साहित्य सर्जन की शुरूआत की उसमें उत्तर प्रदेश से निडर हाथरसी, प्रेमशंकर, आर.एस. तूफान, (बिजनौर) रघुनाथ प्यासा, सुरेश उजाला, नन्दूराम, आर. कमल, के नाथ, अशोक कुमार (कानपुर) मधुकर पिपलायन (आगरा) ओमप्रकाश वाल्मीकि (मुजफ्फर नगर); राजस्थान से भागीरथ मेघवाल, कुसुम मेघवाल, दिल्ली से डॉ. भगवानदास, डॉ. सोहनपाल 'सुमनाक्षर', राजपाल सिंह 'राज', सुधाकर यादकरन 'याद' आदि । इन सबके पीछे आन्दोलन रचा-बसा था। ये सामाजिक कार्यकर्त्ता भी थे और लेखक-नाटककार भी।"[282]

4.9. **जयप्रकाश कर्दम**

जयप्रकाश कर्दम दलित साहित्य के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं, जो दलित साहित्य को विविध-विधाओं के माध्यम से समृद्ध कर रहे हैं । अब तक उनके द्वारा लिखित कविता, कहानी, उपन्यास, खंडकाव्य, आलोचना, पत्र-पत्रिकाओं में अनेक लेख आदि ने दलित साहित्य के आधार स्तम्भ को मजबूत किया है। जयप्रकाश कर्दम की विशेषता यह है कि उन्होंने जहाँ एक तरफ दलित साहित्य की विविध-विधाओं में लेखन कार्य किया है, वहीं दूसरी तरफ दलित साहित्य की आलोचना करते हुए दलित साहित्य को नई दिशा भी प्रदान की है।

दलित कौन? का उत्तर देते हुए कर्दम ने कहा कि "जो लोग सदियों से सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक शोषण, भेदभाव और दलन के शिकार तथा मानवीय अधिकारों से

[282] मोहनदास नैमिशराय, हिन्दी दलित साहित्य, पृष्ठ संख्या-90

वंचित रहे हैं इसमें 'अन्त्यज' कही जाने वाली जातियों, आदिवासियों/जनजातियों, घुमन्तू जनजातियों से लेकर आजीविका के साधन, अवसर की समानता और सामाजिक सम्मान से वंचित तथा लैंगिक आधार पर उपेक्षा और उत्पीड़न के शिकार रहे किन्नर और महिलाएँ भी शामिल हैं।"[283]

साहित्य के सौन्दर्य के बारे में उनका विचार है कि "साहित्य का असली सौन्दर्य इस बात में नहीं है कि उसकी भाषा कितनी प्रांजल है, शिल्प कितना उत्कृष्ट है या उसकी कलात्मकता कितनी उच्चकोटि की है। बल्कि उसका असली सौन्दर्य इस बात में है कि वह जीवन से कितना जुड़ा है, मानवीय समस्या और संवेदनाओं को कितना महत्त्व प्रदान करता है तथा सामजिक परिवर्तन और विकास में कितना उपयोगी है। उपयोगिता आज के युग में सर्वोच्च्य मूल्य है और उपयोगी होना साहित्य की अनिवार्य शर्त है।"[284]

पहली दलित कविता के बारे में उनका कहना है कि- "हिंदी की पहली दलित कविता हीराडोम की 'अछूत की शिकायत' को माना जाता है। यह कविता 1913 में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। किन्तु हाल के वर्षों में इस दिशा में नई खोजों से कुछ नए तथ्य सामने आए हैं। भारतेंदु हरिश्चंद्र के समकालीन 'मार्कण्डे' दलित कवि थे जो 'चिरंजीत' नाम से लिखते थे। वह गाजीपुर (उ.प्र) के रहनेवाले तथा मोची थे। उसी काल में इलाहाबाद निवासी 'परसन' नामक दलित कवि भी कविताएँ लिखते थे।"[285]

हीराडोम के ही समकलीन स्वामी अछूतानन्द 'हरिहर' का और फिर बाद में बिहारीलाल 'हरित' की चर्चा तो लगभग सभी आलोचक करते हैं, लेकिन मार्ककंडे और परसन का नाम केवल कर्दम ने लिया है। बिहारी लाल 'हरित' के बारे में वे लिखते हैं

[283] डॉ. रश्मि चतुर्वेदी, दलित विमर्श के आलोक में, पृष्ठ संख्या- 58
[284] डॉ. जय प्रकाश कर्दम, गूँगा नहीं था मैं, पृष्ठ संख्या-2
[285] डॉ. जयप्रकाश कर्दम, इक्कीसवीं सदी में दलित आन्दोलन (साहित्य और समाज –चिंतन), पृष्ठ संख्या-37

कि-"हरित जी ने लिखा ही नहीं लिखवाया भी। 'हरित साहित्य मंडल' बनाकर बहुत सारे लोगों को उन्होंने लिखने के लिए प्रेरित किया और उनका मार्ग दर्शन किया। 'हरित' जी के शिष्यों की लम्बी सूची है। नाथूराम ताम्रमेली, मानसिंह 'मान', भीमसेन संतोष, जसराम हरनोटिया, यादकरण याद, नत्थूसिंह 'पथिक' राजपाल 'सिंह' राज, लक्ष्मीनारायण 'सुधाकर', कुसुम वियोगी, राम सिंह निम आदि उनके प्रमुख शिष्य रहे हैं।"[286] भारतीय दर्शन से दूरी बनाते हुए उन्होंने कहा कि "दलित साहित्य ब्रम्हा को नहीं जगत् को सत्य मानता है। दलित साहित्य की दृष्टि में ब्रह्म या ईश्वर नहीं संसार सत्य है।"[287] दलित साहित्यकार समानता चाहता है, जिसे जयप्रकाश कर्दम ने अपनी इन पक्तियों में इस प्रकार व्यक्त किया है-

"स्वीकार नहीं मुझे अब
साँझ के सूरज-सा ढलना
मैं भोर के सूरज-सा
उदय होना चाहता हूँ
बहुत भटका हूँ
असमानता और अन्याय की
गलियों में मैं समता के राजपथ पर
चलना चाहता हूँ।"[288]

4.10. विमल थोरात

---

[286] डॉ. जयप्रकाश कर्दम, इक्कीसवीं सदी में दलित आन्दोलन (साहित्य और समाज–चिंतन), पृष्ठ संख्या-39

[287] डॉ. जयप्रकाश कर्दम, दलित विमर्श साहित्य के आईने में, पृष्ठ संख्या-22

[288] डॉ. जय प्रकाश कर्दम, गूंगा नहीं था मैं, पृष्ठ संख्या-31

दलित कवयित्रियाँ जिन्होंने दलित कविता का लेखन किया है, उनमें प्रमुख हैं, सुशीला टाकभौरे, अनुसूया, 'अनु', कावेरी, नरेश कुमारी, रजनी तिलक, रजत रानी 'मीनू' आदि प्रमुख हैं, परन्तु आलोचना के क्षेत्र में दलित स्त्री आलोचकों की संख्या आज भी कुछ गिनी-चुनी ही है। इनमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं- विमल थोरात, अनिता भारती, रजतरानी 'मीनू', रजनी तिलक, सुशीला टाकभौरे आदि। यहाँ उन सक्रिय स्त्री-लेखिकाओं का अध्ययन किया जा रहा है, जिन्होंने अपने लेखों और सम्पादित पुस्तकों के माध्यम से दलित साहित्य को देखने का एक नजरिया प्रस्तुत किया है। उनमें विमल थोरात का नाम बड़े आदर और सम्मान के साथ लिया जाता है।

विमल थोरात का जन्म 7 जुलाई 1949 ई० में विदर्भ (अमरावती) महाराष्ट्र में हुआ था। मूलत: मराठीभाषी डॉ.थोरात की बी.ए. तक पूरी शिक्षा मराठी माध्यम से हुई। एम.ए, एम.फिल, पीएच.डी. जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली से हुई। विमल थोरात वर्तमान में जानी-मानी चिन्तक, सामाजिक कार्यकर्त्ता, शिक्षाविद एवं लेखिका हैं। आपके द्वारा लिखित और सम्पादित पुस्तकें इस प्रकार हैं। 'मराठी दलित कविता और साठोत्तरी हिंदी कविता में सामाजिक और राजनीतिक चेतना', 'दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर', 'स्त्री नैतिकता का तालिबानीकरण' (सम्पादित)। इसके अतिरिक्त वे 'दलित अस्मिता' नामक पत्रिका की संपादिका हैं और कई पुस्तकों का अनुवाद किया है।

'मराठी दलित कविता और साठोत्तरी हिंदी कविता में सामाजिक और राजनीतिक चेतना' नामक इनकी पुस्तक में साठ के दशक में हुए हिंदी कविता, मराठी कविता की पृष्ठभूमि और दलित साहित्य के विविध पहलुओं पर गंभीर बहस मिलती है। हालाँकि इस पुस्तक में हिंदी दलित साहित्य और हिंदी दलित कविता पर बहस नहीं दिखाई देती। परन्तु मराठी दलित साहित्य को समझने में यह पुस्तक सहायक है। यहाँ

तक कि उन्होंने मराठी दलित साहित्य से हिंदी दलित साहित्य को अनुप्राणित बताया है। इसका उल्लेख उन्होंने सुदेश तनवर और अजय नावरिया से हुई बातचीत के दौरान किया है कि “हां, मैं इस बात से पूरी तरह सहमत हूँ कि हिंदी का दलित साहित्य मराठी से अनुप्राणित और प्रेरित है। मैंने पहले भी कहा है कि हिंदी में दलित लेखन देर से शुरू होने के कुछ बुनियादी कारण भी रहे हैं।”[289] हिंदी दलित साहित्य में इस प्रकार के आरोप और कई विद्वानों द्वारा लगाए गए थे कि हिंदी दलित साहित्य ‘मराठी की नक़ल’ है। परन्तु दलित मराठी साहित्य से पहले भी हिंदी दलित साहित्य की रचना हुई थी, इसके के प्रमाण मिल चुके हैं। अब दलित साहित्य वह विषय बन गया है जिसका लगभग कई भाषाओं में अनुवाद हो रहा है और विश्वस्तर पर इसकी पहचान हो चुकी है। विमल थोरात का कहना है कि- “विश्व के कुछ एक भाषाओं को छोड़ दें तो लगभग सभी महत्त्वपूर्ण भाषाओं में दलित साहित्य के प्रसार का श्रेय प्रो.एलिनार झेलियट, प्रो. गेल ओमवेट, प्रो. वोवेन लिंच, डॉ. ईवा मरिया जैसे अमरीकी तथा स्वीडिश विद्वानों को देकर, उनके इस कार्य की प्रशंसा करनी चाहिए। इन सभी ने दलित साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन एवं मूल्यांकन द्वारा विश्व को दलित साहित्य से परिचित कराया।”[290]

विमल थोरात ने दलित मुक्ति के लिए बाबा साहब अम्बेडकर द्वारा किये गये आंदोलन को दलित मुक्ति से जोड़ा है- “दलित मुक्ति आन्दोलन की शुरूआत को हम डॉ. बाबा साहेब आंबेडकर द्वारा 24 दिसंबर, 1927 को ‘मनुस्मृति’ के दहन और दलित मुक्ति संग्राम से जोड़कर देख सकते हैं। ‘मनुस्मृति’ के दहन के द्वारा डॉ. अम्बेडकर ने मनु द्वारा हिन्दू धर्म की विषम समाज रचना की मूल विचारधारा को नष्ट करने तथा उनके प्रति

[289] विमल थोरात , दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर, पृष्ठ संख्या-120

[290] दलित अस्मिता, विमल थोरात , जनवरी-मार्च, 2015, पृष्ठ संख्या-5

विरोध प्रकट करने का प्रयत्न था।"[291] दलित साहित्य के अंतर्गत दलित महिलाओं की उपेक्षा की जाती है। विमल थोरात इसका उत्तर इस प्रकार देती हैं कि- "दलित कविता में आत्मसजग अभिव्यक्तियों में एक प्रखर स्वर सम्मिलित है, जो तिहरे शोषण के प्रतिरोध के लिए फूट पड़ा। मनु द्वारा लादी गई उत्पीड़ित, अपमानित, शोषित जीवन की तलहटी से उठता यह तीव्र स्वर दलित चेतना को विकसित ही नहीं अधिक तेजस्वी बना रहा है। जाति-लिंग और वर्ग आधारित तिहरे शोषण को झेलती-दलित स्त्री उन विषमतावादी नैतिक मूल्यों, पुरुषसत्ताओं की अधीनता की राजनीति को नकारती है।"[292]

4.11 रजनी तिलक

रजनी तिलक का जीवन अभाव भरा रहा है। घर का खर्च पिता द्वारा कपड़ों की सिलाईकर और माता द्वारा कागज का लिफाफा बेचकर चलता था। इनकी रचनाओं में दो काव्य संग्रह 'पदचाप' प्रथम संस्करण 2000 ई० में, 'हवा सी बेचैन युवतियाँ', 'आत्मकथा काम्बले शांता दानी', 'बुद्ध ने क्यों घर छोड़ा' इन सबके अलावा 'दलित महिला लेखन के दो खण्ड' आदि मौजूद हैं। ' पदचाप' की भूमिका में उन्होंने लिखा है कि "ये कविताएं मेरी उस दुनिया का हिस्सा है जिसे मैंने क्षण-प्रतिक्षण जिया और महसूस किया है। 'मनुस्मृति' के विधान के अनुरूप समाज ऊंच-नीच का भाव लेकर विभिन्न हिस्सों में बंट गया। केवल बंट ही नहीं गया है, अपितु ऊंच-नीच के भाव ने समाज में गैर-बराबरी, मिथ्याचार, अन्धविश्वास, लिंग-रंग-जातिभेद पैदा किए। जाति-लिंग भेदभाव की सबसे ज्यादा मार पड़ी दलितों व स्त्रियों पर विशेष तौर पर दलित स्त्रियों पर।"[293]

[291] विमल थोरात, मराठी दलित कविता और साठोत्तरी हिन्दी कविता में सामाजिक और राजनितिक चेतना, पृष्ठ संख्या-37

[292] विमल थोरात–सूरज बडत्या, दलित कविता का विद्रोही स्वर, पृष्ठ संख्या-xxii

[293] रजनी तिलक, पदचाप, पृष्ठ संख्या-1

दलित स्त्रियों को तिहरा शोषण का शिकार होना पड़ा है। पहला तो 'दलित स्त्री' होना दूसरा 'गरीब' होना और तीसरा 'पितृसत्तात्मक' मूल्यों का सामना करना है। इस संग्रह का उदेश्य शोषित-पीड़ित महिलाओं की चेतना को जाग्रत करना है। साथ ही जड़ हो चुकी मानसिकता को सचेत करना है।

संग्रह की पहली कविता "स्त्री मुक्ति की मशाल हो" नाम से है जिसमें स्त्रियों के लिए 'सावित्रीबाई फुले' द्वारा परम्परा को तोड़कर सभी के लिए शिक्षा का द्वार खुला था। मनुवादियों ने उस द्वार को बंद किया हुआ था। उसकी परवाह किये बिना ही स्त्रियों की प्रथम शिक्षिका तुम बनी यह गौरव की बात है-।

"सावित्री बाई फुले

तुम्हारा जीवन एक कसौटी

तुम्हीं पहली शिक्षिका

बनी स्त्री मुक्ति की लौ,

अभाव और कष्टों में रहकर

संचेतना का बीज अंकुरित किया।"[294]

सावित्री बाई फुले द्वारा किये गए इस प्रकार के प्रथम प्रयास से जहाँ समाज के लोगों की आँखें खुलती हैं, वहीं मनुवादियों को करारा जवाब भी मिलता है। सावित्रीबाई फुले ने प्रथम शिक्षिका बनकर मनुवादियों के खिलाफ नयी जंग छेड़ी थी-

‘‘दलित और पद-दलित स्त्रियों में

तुम्हारी पाठशालाओं ने

---

[294] रजनी तिलक, पदचाप, पृष्ठ संख्या-1

केवल अक्षर-ज्ञान ही नहीं,

छेड़ा था एक द्वद्व, एक जेहाद

पुरोहितों व वेदशास्त्रों के खिलाफ ।

समझा बाल-विधवाओं व सतियों के

अछूते अनकहें, तिरस्कृत मन,

और पीड़ा का मर्म।"[295]

कवयित्री ने कविता के माध्यम से समाज को सन्देश दिया है, कि समाज से जातिवाद, सामंतवाद, पूँजीवाद को खत्म कर नया समाज बनाओ जिसमें शांति और सद्भावना हो। 'बारूद का ढेर मत लगाओं' जिसने बहुत से परिवार, समाज और यहाँ तक की पूरे पर्यावरण को बर्वाद कर दिया है। इसका उदाहरण हिरोशिमा और नागासाकी है। साथ ही कविता में उसका विकल्प भी दिया हैं।-

"हम जंग नहीं चाहते

जीना चाहते हैं

हम विनाश नहीं सृजन चाहते हैं

हम युद्ध नहीं

बुद्ध चाहते हैं।"[296]

इस प्रकार की कविता न केवल दलित हित की बात करती हैं, बल्कि पूरे विश्व की

---

[295] रजनी तिलक, पदचाप, पृष्ठ संख्या-2

[296] रजनी तिलक, पदचाप, पृष्ठ संख्या-54

शांति भी चाहती है। यह कविता कवयित्री को विश्व शांति का परिचायक बनाती है। इतना ही नहीं उन्होंने दलित आन्दोलन के मुद्दों में परिवर्तन की भी मांग की है "रजनी 'नेशनल फेडरशन फॉर दलित वीमेन', 'नेकडोर' और 'वर्ल्ड डिगनिटी फोरम' के साथ भी जुड़ीं रहीं। वहीं 'सेंटर फॉर अल्टरनेटिव दलित मीडिया' की कार्यकारी निदेशक भी थीं। इनका मानना था, कि पहले दलित आंदोलन का उद्देश्य ब्राह्मणवाद, पूंजीवाद, और पितृसत्ता से लड़ना था। मगर, अब दलित आंदोलन का मतलब रोजगार, शिक्षा और मूलभूत समस्याओं से सम्बंधित मुद्दों को उठाना है।"[297] रजनी तिलक दलित साहित्यकारों पर भी दलित स्त्रियों को समाहित न करने का आरोप लगाते हुए लिखती हैं कि "यह बात बहुत खटकती रही है कि दलित साहित्यकार ब्राह्मणवाद पर चोट करता है परन्तु स्त्रीवाद को अंगीकृत नहीं कर सका। ठीक उसी प्रकार नारीवाद साहित्य, पितृसत्ता को लैंगिक शोषण का कारक मानती है, प्रत्येक पुरूष को ताकतवर मानकर उसके प्रति रोष व अलगाव रखती है लेकिन वह उस पुरूष को वर्ग और जाति की परिधि से बाहर कर देती है। दलित-स्त्री की समझ और अनुभव जातिवाद और पितृसत्ता दोनों को क्रमानुसार ब्राह्मणवाद का देय मानती है।"[298]

स्त्रियाँ अब जवाब देना सीख गई हैं, इसलिए वह गैर-दलित ही नहीं बल्कि दलितों के अन्दर के अंतर्द्वंद्व का चित्रण करते हुए उन्हें इस प्रकार लताड़ती है कि "पितृसत्तात्मक पुरुषवादी समाज की पोल खोलते हुए अपनी कविताओं में वह दलितों पुरुषों में पनपी पुरुषवादी मानसिकता के लिए उन्हें भी लताड़ती हैं, तथा आईना दिखाने का काम भी सफलतापूर्वक करती हैं। अपनी "आदिपुरुष" कविता में वह कहती हैं-

दलित रचनाकारों तुम्हारी ओछी नज़र में

---

[297] Khurshid Alam, roar.media/hindi/main/history/rajini-tilak-a-great-socialist, रजनी तिलक,महिलाओं के अधिकारों की वकालत करने वाली क्रांतिकारी: 23jul 2018

[298] समकालीन भारतीय दलित महिला लेखन, संपा- रजनी तिलक, रजनी अनुरागी, खण्ड-1, पृ.सं : 16

स्त्री का सुंदर होना उसका मेरिट
सुंदर न होना उसका डी-मेरिट
सवर्णों की नज़र में, केवल वही हैं मेरिट वाले
तुम हो डी-मेरिट ।
मेरिट का पहाड़ा जैसा उनका वैसा तुम्हारा
फिर तुम्हारा विचार नया क्या/ क्या वाद तुम्हारा।"[299]

4.12 अनिता भारती

दलित साहित्य के क्षेत्र में अनिता भारती एक उभरता हुआ नाम है । इन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओं में लेखन कार्य करते हुए, कई दलित आंदोलनों में सक्रिय भूमिका निभाई है । आपके द्वारा लिखित पुस्तक 'समकालीन नारीवाद: दलित स्त्री प्रतिरोध', 'यथास्थिति से टकराते हुए' तीन खण्डों में है। पहला खंड 'कहानी' (2012), दूसरा खण्ड 'कविता' (2013), तीसरा खण्ड 'आलोचना' (2015) । 'एक थी कोटेवाली' तथा अन्य कहानियाँ' कहानी-संग्रह, 'एक कदम मेरा भी' (काव्य संग्रह), 'रुखसाना का घर' (काव्य-संकलन), के अतिरिक्त 'युद्धरत आम आदमी विशेषांक', 'स्त्रीकाल दलित स्त्री विशेषांक की अतिथि संपादक, 'अपेक्षा' पत्रिका की सह-संपादक और आप वर्तमान में 'दलित-लेखक संघ' की अध्यक्षा हैं।

दलित साहित्य के अंतर्गत दलित महिला की स्थिति की चिंता आपके लेखन में व्याप्त है। दलित साहित्य के आ जाने के बाद भी दलित महिला के विषय में दलित आलोचक लम्बे समय तक इनके विषयवस्तु से अनभिज्ञ रहे हैं। इसलिए अनिता भारती ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि 'हंस का दलित विशेषांक भी दलित स्त्री विरोधी है।'

[299] www.forwardpress.in/2020/03/tribute-rajni-tilak-hindi/संपादन, नवल

दलित के साथ स्त्री होना, दूसरा गरीब होना और तीसरा 'जाति' तीनों का असर, उसकी समानता के अवसर में रोड़ा बनते हैं । इन महिलाओं की मुक्ति को पहली बार अनिता भारती ने बुद्ध के यहाँ देखा है । "महिलाओं के जीवन में अचानक परिवर्तन तब आया जब गौतम बुद्ध ने उनको संघ में शामिल होने की आज्ञा दी । बौद्धकाल से पूर्व स्त्रियों का जीवन घर तक सीमित कर दिया गया था । उनसे सब अधिकार छीनकर उन्हें मात्र पुरुष की भोग्या के रूप में देखा गया ।"[300] दलित आलोचक भी सवर्ण आलोचकों के विचारों का शिकार होने से नहीं बच पाए हैं । वे कहती हैं- "आज दलित आलोचक भी स्त्री सवालों और लेखन को लेकर उसी राजनीति और पक्षपात के शिकार हैं, जैसे सवर्ण आलोचक और इतिहासकार ।"[301]

अनिता भारती की विशेषता रही है कि उन्होंने स्त्री चिन्तन के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है । लेकिन दलित साहित्य और आलोचना के क्षेत्र में अभी प्रारम्भिक चरण में ही हैं । इसलिए इन्हें दलित आलोचक से अच्छा दलित चिन्तक कहना ज्यादा उचित होगा ।

निष्कर्ष

हिंदी दलित साहित्य के विकास में इन आलोचकों का विशेष योगदान है, वह इसलिए भी कि इन्होंने दलित साहित्य को नई दृष्टि प्रदान करते हुए इसका मार्ग सरल किया है । माता प्रसाद दलित साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर हैं । हिंदी दलित साहित्य के

[300] अपेक्षा पत्रिका, तेजसिंह, अप्रैल-जून, 2005, पृष्ठ संख्या-8

[301] अनिता भारती- बजरंग बिहारी तिवारी, यथास्थिति से टकराते हुए दलित- स्त्री-जीवन से जुडी आलोचना, पृष्ठ संख्या-10

विकास में उनका विशेष योगदान है। हिंदी दलित कविता के आलोचना के क्षेत्र में उनके द्वारा लिखी गयी पुस्तक 'हिंदी काव्य में दलित काव्यधारा' में उन्होंने वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक दलित कविताओं का विवरण प्रस्तुत किया है। जिससे समय-समय पर हुए जातिवाद और पाखंड के खिलाफ प्रतिरोध को समझा जा सकता है। इसको उन्होंने निम्न रूप में विभाजित किया है-सिद्ध और नाथयोगियों द्वारा 'भेदभाव' का निवारण, सन्तों की वाणी में 'जाति-पांति' की निंदा, आर्य समाज काव्यधारा में 'समता' का आमंत्रण, राष्ट्रीय आन्दोलन और गांधीवाद से प्रभावित कवियों द्वारा 'अस्पृश्यता-विरोध, स्फुट कविताओं में दलितों की स्थिति, इत्यादि। इस पुस्तक में दलित साहित्य के लिए उन्होंने कोई मानदंड तो स्थापित नहीं किया परन्तु हिंदी साहित्य में सहानुभूति पूर्वक गैर-दलित कवियों का विवरण प्रस्तुत कर दलित साहित्य को विकसित किया है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने 'दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र' नामक पुस्तक में दलित जीवन और उनके अनुभव द्वारा समय-समय पर किये गये सामाजिक और साहित्यिक कार्यों का वर्णन करती है। जिसे ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने क्रमवार प्रस्तुत कर दलित साहित्य के विकास और उसके प्रभाव को स्पष्ट किया है। जिसमें दलित साहित्य की आवश्यकता क्यों पड़ी? इसके लिए अलग भाषा, सौन्दर्य का निर्माण क्यों हुआ है? आदि प्रश्नों का समाधान पाठक को मिल जाता है। साथ ही दलित लेखक और गैर-दलित लेखक के अनुभव भिन्न कैसे हैं? दलित साहित्य ने अम्बेडकरवाद, मार्क्सवाद, बौद्ध दर्शन से किस प्रकार प्रेरणा ग्रहण कर समाज निर्माण में अपनी भूमिका को निभाया है।

कँवल भारती दलित साहित्य और दलित कविता आलोचना के क्रांतिकारी आलोचक है। दलित कविता के विषय में इनका मानना है कि इसका इतिहास बहुत प्राचीन है। जिसे आप संत साहित्य से जोड़ ही नहीं सकते हैं बल्कि यह कह सकते हैं कि

दलित साहित्य की जड़ संत साहित्य ही है। दलित साहित्य के अंतर्गत जब दलित कविता की खोज-बीन आलोचकों के बीच जारी थी तब उन्होंने ‘दलित कविता का संघर्ष (हिंदी दलित कविता के सौ वर्ष), नामक पुस्तक लिखकर सं. 1900 से लेकर सं 2000 तक के बीच लिखित 2000 काव्य- संकलनों को प्रस्तुत कर गैर-दलित आलोचकों का मुख बंद कर दिया जो लोग यह कहते थे दलित कविता का अपना कोई इतिहास नहीं है, यह मराठी की नक़ल है। दलित कविता का इतिहास लगभग सौ वर्ष पुराना है और जो दलित साहित्य को मराठी की कलम मानते हैं। उन लोगों ने अछूतानन्द ‘हरिहर’ केवलानन्द, मंगलदेव विशारद, महाशय रूपचन्द, बिहारीलाल ‘हरित’ दुलारेलाल भार्गव आदि लोगों का नाम तक नहीं सुना है।

डॉ. एन. सिंह का मानना है कि दलित साहित्य की बकायदा शुरूआत बीसवीं शताब्दी के आठवें दशक में हुई थी। परन्तु दलित कविता और दलित चेतना के प्रथम संत कवि रविदास है। हालाँकि यह परम्परा बीच के वर्षों में सूख गयी थी लेकिन 19वीं सदी में, फिर पुनर्जीवित हुई। जिसे बुद्ध, फुले और अम्बेडकर के विचारों ने पुष्ट कर नये मार्ग का निर्माण कर दिया। जिस पर चलकर दलित रचनाकार लोकतांत्रिक समाज का निर्माण कर रहे हैं।

तेज सिंह ने दलित साहित्य को उस शिखर तक पहुँचाने का कार्य किया है। जिसकी दलित समाज को सदियों से तलाश थी। मतलब उन्होंने दलित साहित्य, दलित कविता उसके मानदंड और विचारधारा को स्पष्ट करते हुए, अम्बेडकरवाद के तार्किक विचारों के साथ सहमत होते हुए, उस महल का निर्माण किया है, जिसकी नींव अब बहुत मजबूत हो गई है। इनका मानना है कि पहला दलित जन-जागरण महात्मा बुद्ध के यहाँ हुआ था। परन्तु दलित चेतना का प्रथम कवि ‘स्वामी अछूतानन्द’ हैं, क्योंकि हीराडोम भोजपुरी के कवि हैं और उनकी अन्य कोई रचना भी नहीं मिलती हैं। डॉ. धर्मवीर के

विषय में यह कहा जा सकता है कि अनेकों विवादों के बावजूद भी उनका नाम दलित साहित्य से मिटाया नहीं जा सकता । यह स्पष्ट है कि लेखन के क्षेत्र में सबकी अपनी-अपनी आजादी होती है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता ।

डॉ. धर्मवीर ने ब्राह्मणवाद के लिए ब्राह्मणों को जिम्मेदार ठहराया । दलित समाज की स्वतंत्रता के लिए, डॉ.अम्बेडकर के विषय में भी लिखा है कि बाबा साहब का चिंतन बुद्ध धर्म में जाकर स्वत्रंत चिंतन नहीं रह जाता है । उन्होंने विवेक, ज्ञान और तर्क के आधार पर हिंदी साहित्य को आलोचना के बल पर नई-नई दिशा प्रदान की है । दलित साहित्य के सृजन का आधार अनुभव जनित होता है । यह समाज असमानता के खिलाफ सदियों से मुठभेड़ कर रहा है । परन्तु वर्ण-वादी व्यवस्था लगातार अपने नए-नए स्वरूपों में समाज को दिग्भ्रमित कर रही है । जबकि यह बात भी स्पष्ट है कि समाज में व्याप्त इस सामाजिक असमानता के खिलाफ बुद्ध, अश्वघोष, राहुल सांकृत्यायन आदि ने भी प्रयास किया । जिसका उल्लेख प्रसिद्ध दलित चिन्तक तुलसीराम ने इस प्रकार किया है कि 'रही बात दलित साहित्य के वैचारिक आधार की तो, मैं इसका स्रोत गौतम बुद्ध को मानता हूँ। बुद्ध पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने ढाई हजार वर्ष पूर्व वर्ण-व्यवस्था पर जबरदस्त प्रहार किया श्रावस्ती के प्रवास के दौरान सुनीता नामक शोषित भंगी को संघ में शामिल करके नई चेतना का संचार किया ।' लेकिन अंतत: यही कहा जा सकता है कि अनेक विवादों और आलोचनाओं के बादजूद डॉ. धर्मवीर की अपनी अलग पहचान है ।

पत्रकारिता से अपनी पहचान बनाने वाले कवि, लेखक और आलोचक 'श्यौराज सिंह बेचैन' का जीवन सघर्षों भरा रहा है । अपने शुरूआती दिनों में कम्युनिष्ट पार्टी के विचारों से प्रभावित रहे हैं । परन्तु कालांतर में अम्बेडकरवाद के प्रबल समर्थक रहे । उसके अनुसार दलित वही है, जिसे भारतीय संविधान में 'अनुसूचित' जाति कहा जाता है । आधुनिक दलित साहित्य के जनक 'स्वामी अछूतानंद' थे । श्यौराज सिंह

‘बेचैन’ ने दलितों के ऐसे रचनाकारों की पहचान करायी है जो लोग अम्बेडकरवाद से नहीं ब्राह्मणवाद से प्रभावित थे। उन्होंने लिखा है कि 1950 के आस-पास दलितों में जो पीढ़ी अपनी थोड़ी बहुत पढ़ाई-लिखाई का उपयोग कर रही थी, यह कविता के साथ-साथ अपने नाम के साथ पंडित विशेषण जोड़कर ब्राह्मण जैसा दिखने का प्रयास कर रहे थे। आगरा क्षेत्र में पंडित दौजीनाथ, पंडित प्यारे लाल और पंडित रत्नकुमार ने ब्राह्मणों की पंडिताई के विकल्प ने पंडिताई शुरू की थी।

मोहनदास नैमिशराय का मानना है कि दलित साहित्य ने नया विमर्श खड़ा किया जिससे दलित और द्विज के बीच सामाजिक न्याय के लिए संवाद बना है। साथ ही दलित रचनाकारों को शब्दों के ताकत का सन्देश देते हुए, परम्परागत शोषणवादी शब्दावली को निषिद्ध माना है।

जयप्रकाश कर्दम ने दलितों की कैटेगरी में आदिवासी और किन्नर को भी शामिल करने की वकालत की हैं। उनके अनुसार साहित्य का जुड़ाव/जीवन और संवेदना से है न कि उत्कृष्ट कलात्मकता से। हीराडोम के समकालीन मार्कण्डे दलित (चिरंजीत) नाम से थे और इलाहाबाद में परसन कवि भी। उनका स्पष्ट मानना है कि ‘दलित साहित्य ब्रह्म को नहीं जगत को सत्य मनाता है। दलित साहित्य की दृष्टि में ब्रम्हा या ईश्वर नहीं संसार सत्य है दलित साहित्य ब्रम्हा को नहीं जगत को सत्य मनाता है। दलित साहित्य की दृष्टि में ब्रम्हा या ईश्वर नहीं संसार सत्य है।’

विमल थोरात का मानना है कि हिंदी दलित साहित्य मराठी से अनुप्रेरित है। इनका मानना है कि दलित स्त्रियों का तिहरा शोषण होता है। इनका सबसे बड़ा योगदान दलित साहित्य को पाठ्यक्रम में शामिल कराने में रहा है। साथ ही दलित साहित्य को विभिन्न-भाषाओं में अनूदित करके पुस्तक के रूप में लाने का रहा है।

रजनी तिलक का मानना है कि दलितों में सबसे ज्यादा शोषण दलित स्त्रियों का होता है। इसलिए स्त्रियों को अब आगे बढ़कर शोषण का मुँहतोड़ जवाब देना चाहिए, साथ ही उनका मानना है कि इस 'देश को युद्ध नहीं बुद्ध चाहिए', अंतत: यही कहा जा सकता है कि इनकी चिंता के केन्द्र में मानवता है। अनिता भारती वर्तमान में सबसे सशक्त अम्बेडकरवादी स्त्री है जिन्होंने स्त्री मुक्ति का प्रथम स्वर 'बुद्ध' के यहाँ से माना है और इन्होंने पितृ सत्ता पर जमकर प्रहार करते हुए कहा है कि दलित आलोचक भी पक्षपाती हैं।

समकालीन दौर में अनेक पीढ़ियों के दलित लेखक सृजनरत हैं। इसमें एक-साथ चार-पांच पीढ़ियों को देखा जा सकता है। दलित साहित्य का सृजनात्मक-लेखन आलोचना की अपेक्षा करता है। उसकी उम्मीद की राह, कठिन है पनघट की फिर भी उम्मीद की लौ अभी जिन्दा है।

पंचम अध्याय

हिंदी दलित कविता आलोचना: दशा और दिशा

प्रस्तावना

दलित साहित्य के अंतर्गत कविता समकालीन दौर में सबसे चर्चित विधा है, जिसने दलित समाज के शोषित समुदाय का चित्रण कर नए विमर्श को जन्म दिया है। इमसें एक तरफ पुरातन का विरोध तो दूसरी तरफ लोकतंत्र की स्थापना की वकालत है । इस साहित्य ने अपने सीमित समय में ही उपेक्षित समुदाय की चेतना को जगाकर उनके लिए एक नए मार्ग का निर्माण किया है । इसमें धर्म, पाखंड और अन्धविश्वास की मुक्ति के साथ-साथ दलित समुदाय के लिए गरिमामयी समाज निर्माण का सन्देश है।

5.1 हिंदी दलित कविता आलोचना: सामाजिक दृष्टि

5.1.1 परम्परागत असमानता एवं दलित कविता का प्रतिरोध

समाज में साहित्य परिवर्तन लाने का कार्य सदियों से करता आ रहा है। इतिहास में हुए इस आमूल-चूल परिवर्तन ने लोगों की चेतना पर गहरा प्रभाव डाला है। जब भी कोई क्रिया होती है तो उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया भी होती है। इस प्रकार दलित साहित्य के अंतर्गत आने वाली सभी विधाओं कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, आत्मकथा आदि ने नए-नए विषयों के माध्यम से हिंदी साहित्य की धारा को एक नया मोड़ दिया है।

इस सन्दर्भ में डॉ. आंबेडकर के ये विचार प्रासंगिक हैं कि- "प्राचीन भारत के इतिहास का काफी हिस्सा बिल्कुल भी इतिहास नहीं है। ऐसा नहीं है कि प्राचीन भारत बिना इतिहास के है। प्राचीन भारत का बहुत सारा इतिहास है। लेकिन वह अपना स्वरूप खो चुका है। महिलाओं और बच्चों का मनोरंजन करने के लिए इसे पौराणिक आख्यान बना दिया गया है। ऐसा लगता है ब्राह्मणवादी लेखकों ने जान-बूझकर ऐसा किया है।"[302] किसी भी देश का समाज झूठ और मिथक के बल पर नहीं चल सकता है। बाबा साहब ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि यह जान बूझकर किया गया है।

[302] डॉ. आंबेडकर वांङ्मय, खंड 7, पृष्ठ संख्या-15

भारत एक विशाल देश है इसलिए इस देश की धरती पर कई प्रकार के विचार और परम्पराएं देखी जा सकती हैं परन्तु दुनिया ने वही देखा जो ब्राह्मणों ने उन्हें दिखाया है- "जिस देश का इतिहास हिन्दू इतिहास नहीं था वह हिन्दू घोषित हो गया। जो विचार परम्परा नहीं थी, वह हिन्दू विचार परम्परा मान ली गई। दरअसल भारतीय उप-महाद्वीप का ऐतिहासिक-सामाजिक-सांस्कृतिक चित्र आज तक दुनिया ने वह देखा जो ब्राह्मण ने दिखाना चाहा।"[303] मुद्राराक्षस के इन विचारों को अगर इस दृष्टि से देखा जाय कि भारतीय समाज जिस साहित्य को सदियों तक पढ़कर आनंदित हुआ है, उस पर एकाधिकार किसी खास वर्ग तक सीमित रहा था। कालान्तर में इन्हीं असमानताओं और रूढ़ियों के प्रतिरोध में दलित लेखकों ने कलम चलाई है। "हिंदी साहित्य में जो कि हिन्दू साहित्य ही है, हमें इसे लोकतंत्रात्मक और समानतामूलक समाज साहित्य बनाना होगा। दलित साहित्य इस दिशा में एक प्रस्थान है, जो कि मानवीय गरिमा और आपसी भाईचारा को बढ़ावा देता है, बढ़ावा ही नहीं देता अपितु इसे अपने-आचरण का हिस्सा मानता है। दलित साहित्य ऊँच-नीच की भावना को खत्म करने का एक हथियार है, पुराणों से निजात पाने का नुस्खा है, वेद और गीता के आतंक से मुक्ति का साधन है। पाखंड और प्रपंच से निजात दिलाने का तरीका है, भारत को भव्य और सभ्य बनाने का प्रयास है। दलित साहित्य की समृद्धि से देश की समृद्धि सम्भव है।"[304]

दलित साहित्य सबसे पहले सामाजिक संरचना की पोल खोलता है। इस विषय पर दलित चिन्तक तुलसीराम का मानना है कि "जहाँ तक दलित साहित्य का सम्बन्ध है, वह वर्ण-व्यवस्था विरोधी साहित्य है, चाहे उसे दलित लिखें या गैर-दलित। संगठित रूप

---

[303] मुद्राराक्षस, धर्मग्रंथों का पुनर्पाठ, पृष्ठ संख्या-11

[304] जय भारत जय भीम, काली चरण स्नेही, पृष्ठ संख्या-7

में सबसे पहले गौतम बुद्ध ने वर्ण-व्यवस्था विरोधी साहित्य चलाया, जो स्वयं दलित नहीं थे। अत: प्राचीन बौद्ध साहित्य ही वर्तमान दलित साहित्य की जननी है।"[305]

दलित साहित्यकरों के सामने वर्ण-व्यवस्था सबसे गंभीर विषय बनी हुई है। यह व्यवस्था, जिसे समाज को सुचारू रूप से संचालित करने लिए बनाया गया था; वह बाद में समाज में भय, अन्धविश्वास, जातिगत भेदभाव के अलावा दलित समाज के लिए भूख, गुलामी और अशिक्षा का कारण बनी। इसलिए उस युग को वर्तमान दलित लेखक 'अंधायुग'/ अंधकार-युग कहते हैं। इसे कँवल भारती की 'आधुनिकता बोध' नामक कविता से समझ सकते हैं-

"यह आधुनिकता बोध
विस्मृति के गर्भ में छिपा हुआ उनका ऐतिहासिक बोध है,
जिसके सहारे वे स्मरण करते हैं उस युग को
जब ब्राह्मणों के सहारे जीते-मरते थे राजतन्त्र
उनके शापों से आतंकित रहते थे सम्राट
जिनके आदेश होते थे 'ब्रह्मवाक्य'
जिस पर आधारित होता था न्याय और शासन
ये कवि मुग्ध है
क्योंकि वह सवर्णों के भोगैश्वर्य का युग था
परिश्रम किये बिना ही उनको उपलब्ध था हर सुख
वे शासक थे,
सेवक थे शूद्र, भोग्या थी नारी।
वह अंधा युग था।"[306]

[305] बहुजन वैचारिकी, तुलसीराम विशेषांक, भाग 1, पृष्ठ संख्या-24

5.1.2. दलितों के अन्दर जातिवाद का अंतर्द्वंद्व

'दलित' शब्द किसी एक व्यक्ति का नहीं, बल्कि दलित समूह का परिचायक है। इसलिए यह समझा जाता है कि जो भी उपेक्षित है वह 'दलित' है। यह किसी एक 'जाति' और 'संप्रदाय' के ऊपर ऊठकर सभी 'दलितों' के लिए समानता का बोधक है। इसका प्रयोग किसी चमार, पासी, धोबी और खटिक इत्यादि के लिए मान्य नहीं है। जबकि यह सर्वविदित है कि 'दलितों' की जातियों के अन्दर अनेकों उपजातियाँ हैं, इसलिए उस उप-जातिवाद से मुक्त 'दलित' शब्द इस साहित्य के लिए सर्वमान्य है। दलित वही हैं, जिन्हें विभिन्न नामों से जाना जाता रहा है। जिसका वर्णन माता प्रसाद ने इस प्रकार किया है कि "उत्तर वैदिक काल में जब वर्ण-व्यवस्था की रचना हुई तो द्रविण, अनार्य, दास, असुर, दस्यु और दूसरी आदिवासी जातियों को शूद्रों की श्रेणी में डाल दिया गया।"[307] इस प्रकार से वर्णव्यवस्था का निर्माण होते ही 'शूद्र' वर्ण का भी निर्माण हुआ था जबकि सभ्यता के प्रारम्भिक दौर में 'शूद्र' वर्ण जैसी कोई व्यवस्था न थी।

परन्तु आर्यों के सत्ता में काबिज होते ही सामाजिक व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन हुए, जिसका उल्लेख माता प्रसाद ने इस प्रकार किया है कि "आर्यों का प्रभुत्व देश में कायम होने के पूर्व तीन ही वर्ण, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का विभाजन था। इन तीनों वर्णों को द्विज कहते थे। क्योंकि इनका उपनयन संस्कार होता था। उस समय कर्म के आधार पर वर्ण का विभाजन था। कर्म के आधार एक वर्ण का व्यक्ति दूसरे वर्ण में आता-जाता था। कुछ सीमा तक विवाह संस्कार भी होते थे। उस समय चौथा वर्ण नहीं था।"[308] लेकिन चौथे वर्ण का निर्माण होते ही उनके ऊपर कई प्रकार के प्रतिबंध भी लग गए, जिससे समाज में असमानता की नींव पड़ गयी।

---

[306] कँवल भारती, तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती, पृष्ठ संख्या-22

[307] माता प्रसाद, हिंदी दलित काव्यधारा, पृष्ठ संख्या-5

[308] माता प्रसाद, हिंदी काव्य में दलित काव्यधारा, पृष्ठ संख्या-9

इस विषमतावादी समाज से मुक्ति के लिए दलित साहित्य में 'दलित' शब्द 'समूह' का चयन हुआ है। परन्तु इससे भिन्न जातिवादी लेखन भी दिखाई देता है। जिससे पता चलता है कि 'दलितों' में भी जाति संघर्ष का अंतर्द्वंद्व हो रहा है जो अपनी-अपनी जाति की पहचान बनाना चाहता है। इसलिए वह 'दलित' नहीं बल्कि भंगी, चमार, धोबी को सम्बोधित कर कविताएं लिख रहा है। इस मामले में बड़े से बड़े दलित रचनाकार फँसते नज़र आ रहे हैं। अभी हाल ही 2017 में श्यौराज सिंह 'बेचैन' का कविता-संग्रह 'चमार की चाय' आया है जो जाति को सम्बोधित है। इसके शीर्षक के विषय में लेखक ने लिखा है कि "शीर्षक को लेकर सोचना शुरू किया तो मेरे सामने चमार केन्द्रित अनेक शीर्षक चित्रपट में घूम गये। मसलन मैंने देखा सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का उपन्यास 'चतुरी चमार' मेरे संग्रह में मौजूद है। मैंने इसे पढ़ा और लिखा भी है। रैदास के प्रति 'निराला' की एक कविता दलितों को प्रिय है- कर्म के अभ्यास में, अविरत बहे, ज्ञान गंगा में, समुज्ज्वल चर्मकार, चरण छूकर कर नमस्कार।' अदम गोंडवी नामक एक ठाकुर की कविता 'चमारों की गली' भी मेरे ध्यान में आयी। डॉ. धर्मवीर की समीक्षा पुस्तक 'चमार की बेटी रूपा' भी मैं पढ़ चुका हूँ।"[309] सब प्रकार के शीर्षक का चयन करना और समर्थन में निराला और अदम गोंडवी का उदाहरण देने से कोई बात छिप नहीं सकती है। वह इसलिए भी क्योंकि अम्बेडकरवाद भी जाति विशेष का समर्थन नहीं करता है। हालाँकि कविता में आया है कि इसे किसी ओबीसी ने लिख दिया था-

"एक दिन एक ओबीसी मित्र आया

उसकी दुकान का दरवाज़ा

बंद देखा

और उसके दरवाज़े पर

[309] श्यौराज सिंह 'बेचैन', चमार की चाय, पृष्ठ संख्या-22

लिख कर चला गया-

कि यहाँ 'चमार की चाय मिलती है।"[310]

भाव कोई भी निकाले जाएँ परन्तु दलित साहित्य में चमार, धोबी, भंगी आदि के इतर 'दलित' का प्रयोग ज्यादा सही है। किन्तु अनेक सावधानियों के बावजूद जाति के अन्दर की उपजाति दिख ही जाती है। इस सन्दर्भ में डॉ. विवेक कुमार की कविता 'मैं धोबी हूँ' को देखा जा सकता है-

"मै धोबी हूँ।

बहुत दिन मैंने धोई तुम्हारी गन्दगी ताकि तुम साफ रहो

भीषण गर्मी, मूसलाधार बारिश या फिर रही हो कटकटाती सर्दी

उफ़ नहीं किया मैंने फिर भी, ताकि तैयार कर सकूँ आपकी वर्दी

* * *

जिनकी धुलाई का क़र्ज़ आज भी तुम पर बाकी है।"[311]

इस प्रकार अगर सभी दलित रचनाकार अपनी-अपनी जाति का चित्रण करने लगेंगे तो दलित साहित्य अपनी दिशा भटक जायेगा। इसे डॉ. तेज सिंह के इन विचारों से समझा जा सकता है कि "वर्तमान दलित साहित्य अभी दिशाहीन होने लगा है। उसमें जाति चेतना का विकास, उसको उदेश्य से भटका सकता है। और भटका भी रहा है। दलित साहित्य का उदेश्य जाति-विहीन, वर्ग विहीन समाज की स्थापना का संकल्प लेकर चला था जो अब जातिवादी चेतना में बदलने लगा है। यानी अब अधिकांश दलित साहित्यकार अपनी-अपनी जाति मजबूत करने का नारा लगाकर अपने साहित्य को जातिवादी बनाने में लगें हैं। इस तरह वह अपनी दिशा भटक गया है।"[312]

---

310 श्यौराज सिंह 'बेचैन', चमार की चाय, पृष्ठ संख्या-118

311 मोहनदास नैमिशराय, हिन्दी दलित साहित्य, पृष्ठ संख्या-307

312 रश्मि चतुर्वेदी, दलित विमर्श के आलोक में, पृष्ठ संख्या-22

5.2 हिंदी दलित कविता आलोचना: आर्थिक दृष्टि

5.2.1. दलित व्यवसाय पर वर्ण-व्यवस्था का प्रभाव

वर्ण-व्यवस्था ने भारतीय समाज को अमूल-चूल परिवर्तित किया है । इसका उल्लेख डॉ. आंबेडकर ने इस प्रकार किया है कि "जब मैं यह कहता हूँ कि ब्राह्मणवाद ने वर्ण को जाति में बदल दिया, तब मेरा आशय यह है कि इसने पद और व्यवसाय को वंशानुगत बना दिया है ।"[313] इस प्रकार की मानसिकता से समाज जहाँ एक तरफ प्रभावित हुआ वहीं दूसरी तरफ विघटित हुआ । जाति आधारित पेशे ने लोगों को एक सीमा में जकड़ लिया और उससे ऊपर उठने एवं अलग पेशा चुनने का मार्ग अवरूद्ध कर दिया । इतने बड़े समाज को संचालित करने वाले पेशे जब जाति आधारित और वंशानुगत हो गये तब समाज में असमानता का बीज पड़ गया । वर्ण व्यवस्था के आधार पर प्रथम को ज्ञान का अधिकार, दूसरे को पेशे का अधिकार, तीसरे को सुरक्षा का अधिकार और चौथे का अपने से ऊपर सेवा धर्म का अधिकार दिया गया और उसके लिए कठोर प्रतिबन्ध भी लगाये गये । इस सन्दर्भ में ओमप्रकाश वाल्मीकि की यह कविता प्रासंगिक है कि-

"काटे जंगल

खोदे पहाड़

बोये खेत

फिर भी रहे भूखे

* * *

नहीं बोये काँटे, बाँटे सिर्फ

---

[313] डॉ. आंबेडकर वांङ्मय, खंड-7, पृष्ठ संख्या-169

सगुन प्यार के

फिर भी रहे अछूत!"[314]

दलित साहित्य के अंतर्गत वर्ण-व्यवस्था द्वारा स्थापित इन्हीं सारी व्यवस्थाओं का खंडन और विरोध किया जाता है। इस व्यवस्था को पाँच हजार वर्ष बीत गये, पर वैसी की वैसी ही रह गयी। इस सन्दर्भ में मोहनदास नैमिशराय ने लिखा है कि-

"कल मेरे हाथ में झाड़ू था

आज कलम

कल झाड़ू से मैं तुम्हारी गन्दगी हटाता था

आज कलम से।

मैं तुम्हारे भीतर की गन्दगी धोऊँगा।

* * *

तुमने हमारे हाथ में झाड़ू पकड़ाई थी

आज परिवर्तन के लिये

तुम्हें अपने हाथ में झाड़ू लेना ही होगा

वह दिन जल्द आएगा

चेतना का सूरज

उग चुका है।"[315]

इस प्रकार देखा जा सकता हैं कि वर्ण-व्यवस्था और जाति व्यवस्था को लेकर साहित्यिक जगत् में उल्लेख तो हुआ है, लेकिन इस ओर जिस प्रकार से दलित साहित्यकारों ने समाज का ध्यान खींचा, उस प्रकार गैर-दलित साहित्यकारों ने नहीं। एक समय था जब जाति और अस्पृश्यता के नाम पर मजदूरी के रूप में दलितों को 'गोबरहा'

---

[314] ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका, पृष्ठ संख्या-54

[315] मोहनदास नैमिशराय, आग और आन्दोलन, पृष्ठ संख्या-72

मिलता था । जिसका वर्णन बाबा साहब ने इस प्रकार किया है "अस्पृश्यों को उनकी मजदूरी नकद या अनाज के रूप में दी जाती थी । उत्तर प्रदेश के कुछ भागों में मजदूरी के रूप में दिए जाने वाले अनाज को 'गोबरहा' कहा जाता है । इसका अर्थ है, जानवरों के गोबर से निकलने वाला अनाज ।"[316]

वर्ण व्यवस्था का विरोध करने वाले सन्तों में रैदास और कबीर का नाम प्रमुखता से लिया जाता है । "मध्यकाल में रैदास हिंदी दलित साहित्य के प्रथम दलित चेतना के कवि हैं, जिन्होंने वर्ण व्यवस्था का विषपान स्वयं किया था । उन्होंने सबसे पहले वर्ण के जन्मगत आधार को ही नकारा-

रैदास जन्म के कारणै होत न कोई नीच ।
नर को नीच करि डारि है ओछे करम की कीच"

आगे चलकर रैदास ने इसे और स्पष्ट कर दिया कि एक ही प्रक्रिया से उत्पन्न होने के कारण कोई ऊँचा या नीचा नहीं होता है-

रैदास एक ही बूँद सौ, सब ही भयो वित्थार
मूरिख हैं जो करत है वरन अवरन विचार ।।
रैदास एक ही नूर ते जिमि उपज्यौ संसार
ऊँच-नीच किहि विध भये ब्राह्मण और चमार ।।"[317]

दलित साहित्य के अंतर्गत आठवां दशक काफी महत्त्वपूर्ण रहा है । जिसने एक तरफ दलित चेतना को झकझोरा तो दूसरी तरफ दलितों का शोषण करने वालों का जमकर विरोध किया । दलित साहित्य में आंबेडकरवाद से प्रभावित अनेक कवियों और लेखकों ने उन सारी व्यवस्थाओं का खुलकर विरोध किया, जिसकी समाज को बिलकुल जरूरत नहीं है । उनमें से कुछ प्रमुख महत्त्वपूर्ण कवि हैं- ओमप्रकाश वाल्मीकि,

---

[316] डॉ. अम्बेडकर, सम्पूर्ण वांङ्मय, खण्ड-9, पृष्ठ संख्या-46
[317] डॉ. एन. सिंह, दलित साहित्य के मान और प्रतिमान, पृष्ठ संख्या-16

जयप्रकाश कर्दम, श्यौराज सिंह बेचैन, मोहनदास नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि आदि।

5.2.2. श्रमजीवी समाज की उपेक्षा: दलित कविता

समाज मनुष्यों का समुदाय है, बिन मनुष्य समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इसलिए इनका जीवन एक-दूसरे के सहयोग से चलता है। परन्तु समय-समय पर इस व्यवस्था में परिवर्तन होता रहा है। मनुष्य के सहयोग के लिए इस प्रकार की संरचना का निर्माण हुआ था, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र। परन्तु यह चौथे वर्ग के लिए घातक सिद्ध हुआ क्योंकि उसको कर्म करने के लिए प्रेरित तो किया गया परन्तु न तो धन-संचय और न किसी प्रकार की संपत्ति रखने की सलाह मिलती रही। जबकि सुबह से शाम तक वह 'बैल' की तरह काम करता रहा। इसे मलखान सिंह ने अपनी कविता में इस प्रकार कहा है-

''मैं आदमी नहीं हूँ स्साब
जानवर हूँ
दोपाया जानवर
जिसे बात-बात पर
मनुपुत्र मा...चो...बहन...चो...
कमीन कौम कहता है।
पूरा दिन
बैल की तरह जोतता है
मुट्ठी भर सत्तू

मजूरी में देता है।”[318]

किसी भी समाज में इससे बड़ी अमानवीयता क्या हो सकती है? जब मनुष्य दिन-रात परिश्रम करे और उसको भरपेट भोजन भी न मिले तो इसे क्या कहेंगे? इस सन्दर्भ में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने लिखा है कि “बेगारी की प्रथा ने दलितों को घोर विपन्नता दी है। बेगारी यानी बिना मूल्य का श्रम। दिन-भर मेहनत-मजदूरी करके भी शाम को भूखा रहे, यह अभिशाप नहीं तो क्या है!”[319] बेगार ने दलितों के जीवन को इस प्रकार प्रभावित किया कि वे आज-तक विपन्नता से बाहर नहीं निकल पाए और अगर निकलना भी चाहा तो महाजन बही खाता में झूठा अगूँठा लगाकर फँसाते रहे हैं। डॉ. धर्मवीर की यह कविता उसी शोषण को व्याख्यायित करती है-

“शोषण की अमर बेल,
दमन की महागाथा,
यातना के पिरामिड
उत्पीड़न की गंगोत्री
ऋणों का पहाड़
ब्याज का सागर
निरक्षरों के मस्तिष्क,
महाजनों की बही
रुक्कों पर अँगूठों की छाप
ऊटपटाँग
जोड़ घटा, गुणा भाग, देना

[318] मलखान सिंह, ज्वालामुखी के मुहाने, पृष्ठ संख्या-70
[319] ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या-76

सब एक।"[320]

वर्ण-व्यवस्था और जातिवाद ने दलितों के जीवन को कैसे त्रासद बनाया, कविता से बखूबी समझा जा सकता है। इस व्यवस्था को सबसे ज्यादा पुष्ट 'जातिवाद' ने किया, इसलिए इसको जड़ से उखाड़ना होगा, तभी समाज में सभी को समान अवसर और दलितों को समान अधिकार मिल सकता है। इस सन्दर्भ में डॉ. एन. सिंह की यह कविता विशेष महत्त्वपूर्ण है-

"सतह से उठते हुए
मैंने जाना कि
इस धरती पर किये जा रहे
श्रम में
जितना हिस्सा मेरा है
उतना हिस्सा
इस धरती के
हवा पानी और
इससे उत्पन्न होने वाले
अन्न और धन में भी।"[321]

प्रकृति प्रदत्त सभी वस्तुओं पर सबका समान अधिकार है। इसलिए सवाल उठता है कि समाज का एक हिस्सा ही क्यों उस सुविधा का उपभोग करे, जिसके अधिकारी सभी हैं। शायद रचनाकार ने इस पंक्तियों में दलित आलोचकों और रचनाकारों के साथ-साथ सम्पूर्ण समाज को यही सन्देश दिया है कि 'दुनिया तुम्हारी है खुलकर जियो' लेकिन इसके लिए पूँजीपतियों और सामंतों को मुँहतोड़ जवाब देने का तरीका भी इजाद करना

[320] ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या-77
[321] कँवल भारती, तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती? पृष्ठ संख्या-12

होगा। इस संदर्भ में यह पक्तियाँ सटीक बैठती हैं और पूर्व को भूलकर वर्तमान को देखने का संदेश दे रहीं हैं-

"मेरे परदादा मर गए जूठन खाते/उतरे चिथड़े पहनते
खेत बोते-जोतते/इसे पूर्व-जन्मों का फल मानते-मानते
और ज़मींदार/फूलता गया/फलता गया.../ज़मींदार का वंश/बढ़ता गया/
आकाश बेल की तरह इनका ख़ून चूसते/धर्म का भय दिखाकर
नीच कर्मों का फल बताकर...पर/अब मैं पूर्व को नहीं वर्तमान देखता हूँ।"[322]

परन्तु वर्तमान समय में धरती से लेकर आसमान तक पूंजीपतियों का कब्ज़ा है। इसलिए दलित साहित्यकारों और आलोचकों के बीच यह सवाल गंभीर रूप से महत्त्वपूर्ण है। जिसको ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा लिखित इस पंक्तियों के माध्यम से समझ सकते हैं। "दलित साहित्य ने इन प्रश्नों को गम्भीरता से लिया है। दलित रचनाओं में आर्थिक समस्याओं को प्रमुखता से अभिव्यक्ति मिली है। रजत रानी मीनू लिखती हैं: आर्थिक विपन्नताओं से पग-पग पर घायल होने वाले दलित कवि का संवेदनशील हृदय अर्थाभाव के काले अभिशाप से घिरे हुए समूचे वर्ग को देखकर उद्वेलित हो उठता है। जन-जीवन से जुड़े तमाम प्रश्नों की रौशनी में अपने सुन्दर सपनों को यथार्थ को साकार होने नहीं देख पाता है, तब वह प्रश्नों के समाधान तलाश करते अपने विचारों को कविता की शक्ल देकर पूरा करने प्रयास करता है।"[323]

अर्थ विपन्नता का सबसे बड़ा कारण है क्योंकि उसके अभाव में दलित समाज पीढ़ी दर पीढ़ी पिछड़ता चला गया। इसलिए यह भी कह सकते हैं कि समाज में व्याप्त वर्ण-जाति जैसी व्यवस्था बड़ी ही घातक सिद्ध हुई। जिसका परिणाम यह है कि आज भी दलित समाज कई जगहों से गायब है। जिसे इस प्रकार समझ सकते हैं कि "भारत में

[322] मोहनदास नैमिशराय, हिन्दी दलित साहित्य, पृष्ठ संख्या-312
[323] ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या-77

कारपोरेट बोर्डों के हाल के सर्वे में भी इसी तरह की प्रवृत्ति उभरी-उनके 90 प्रतिशत से ज्यादा सदस्य ऊँची जातियों के थे और 45 प्रतिशत ब्राह्मण थे। दिलचस्प बात यह है कि इस मामले में वैश्यों ने ब्राह्मण को पीछे छोड़ दिया था, जिनका अनुपात कारपोरेट बोर्डों में 46 प्रतिशत था। पूरी आबादी में करीब 24 प्रतिशत की आबादी वाली अनुसूचित जातियों और जनजातियों को इसका छोटा-सा हिस्सा, मात्र 3.5 सीटें थीं। वास्तव में, बहुसंख्यक (70 प्रतिशत) कारपोरेट बोर्डों में कोई विविधता नहीं थी। यानी सभी सदस्य एक ही जाति के थे।"[324]

5.3 हिंदी दलित कविता आलोचना: धार्मिक दृष्टि

5.3.1. भारतीय सामाजिक धर्म और दलित कविता

भारतीय समाज के निर्माण में विभिन्न धर्मों, संस्कृतियों एवं सभ्यताओं का योगदान रहा है। इतिहास के आरम्भिक अवस्था से देखें तो समाज के वर्तमान और आरम्भिक दोनों रूपों में जमीन-आसमान तक का अंतर है। जिसका वर्णन भारतीय इतिहास में ही नहीं बल्कि हिंदी साहित्य के इतिहास में भी बखूबी देखा जा सकता है कि हिंदी साहित्य का प्रारम्भिक दौर लड़ाई-भिड़ाई का था। इस संदर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि 'हिंदी साहित्य' के इतिहास में दिखाई देता है। यहाँ तक कि आचार्य शुक्ल ने तो सारांश रूप में यह भी लिखा है कि "जिस समय से हमारे हिंदी साहित्य का अभ्युदय होता है, वह लड़ाई-भिड़ाई का समय था, वीरता के गौरव का समय था। और सब बातें पीछे पड़ गयी थीं"[325] दलित साहित्य की शुरूआत विभिन्न संघर्षों के बीच होती है। जातिवाद, अस्पृश्यता, ब्राह्मणवाद, सामंतवाद एवं धार्मिक शोषण आदि के कारण दलित सदियों से शोषित होता रहा है। इसलिए उसके अन्दर समाज में पहले से

[324] ज्याँ द्रेज/अमर्त्य सेन, अनुवाद-अशोक कुमार, भारत और उसके विरोधाभास, पृष्ठ संख्या-226

[325] आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ संख्या-33

व्याप्त इतिहास में खुद को तलाशने की जिज्ञासा उत्पन्न होती है। वैदिक काल से लेकर वर्तमान काल तक में रचित अनेक ग्रंथों तक उसके शोषण की दास्तान से भरे हुए प्रसंग दिखाई देते हैं। इस प्रकार शोषण रुपी इस अकल्पनीय दास्तान की पोल दलित रचनाकार एक-एक कर उजागर करते हैं। जिसके लिए उन्होंने एक नई भाषा और नये रूप का निर्माण भी किया है। इस प्रकार समाज में व्याप्त कुत्सित मानसिकता की तरफ लोगों का विशेष ध्यान जाता है।

उन्नीसवीं शताब्दी तक आते-आते दलित कविताओं में वह चेतना दिखाई देने लगी जिसकी वास्तव में शुरूआत बहुत पहले हो जानी चाहिए थी। लेकिन '1914' में हीराडोम द्वारा रचित कविता प्रथम दलित कविता मानी जाती है। इसलिए यह समय दलित कविता और दलित साहित्य के लिए महत्त्वपूर्ण माना जाता है। अगर डॉ. अम्बेडकर के शब्दों में कहा जाये तो अछूत लोग अपने अधिकार के लिए आग्रह करने लगे थे। जिसका उल्लेख डॉ. अम्बेडकर ने इस प्रकार किया है कि "सत्याग्रह के बाबत हम गीता का आधार लेते हैं। कारण सत्याग्रह गीता का मुख्य प्रतिपादित विषय है। कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि बैठो मत! जिन कौरवों ने तुम्हारा राज्य हड़पा है। उनसे युद्ध करने को तैयार हो जाओ। तब अर्जुन ने प्रश्न किया, यह कैसा सत्याग्रह? इस प्रश्न का उत्तर कृष्ण ने दिया, वही गीता है। गीता, सत्याग्रह पर एक मीमांसा है। अछूत लोग सवर्णों से समान अधिकार पाने का जो आग्रह करते हैं वह सत्याग्रह है।"[326] डॉ. अम्बेडकर के इन विचारों से स्पष्ट है कि दलित साहित्य के अंतर्गत जिन विषय वस्तुओं का वर्णन किया जाता है। वह एक तरफ समाज को यथार्थ से रू-ब-रू कराते हैं तो दूसरी तरफ कई सवालों को भी उजागर करते हैं।

[326] कँवल भारती, आरएसएस और बहुजन चिन्तन, पृष्ठ संख्या-181

दलित साहित्य के अंतर्गत जिस प्रकार के साहित्यिक-सृजन का निर्माण हुआ, उससे समाज में जागरूकता की नींव पड़ी। जिस व्यवस्था ने उन्हें लहूलुहान किया है उस मनुवाद, ब्राह्मणवाद, जातिवाद, वर्णवाद, पूंजीवाद, फासीवाद व्यवस्था को नकार कर नये समाज का निर्माण करने का आह्वान करते हैं। इसके लिए वह बुद्ध से लेकर मध्यकाल तक के सन्तों से प्रेरणा लेते हैं। जिसका उल्लेख तेजसिंह इस प्रकार करते हैं कि "बुद्ध के समाज-दर्शन से ही सिद्धों-नाथों को सृजनात्मक ऊर्जा मिली जिसकी प्रेरणा से जो मध्ययुग का दलित-संत काव्य अस्तित्व में आया और वह निश्चित तौर पर ब्राह्मणवादी-सांस्कृतिक चेतना के खिलाफ विकसित हुआ था। इस तरह सिद्धों-नाथों की सृजनात्मक ऊर्जा से जो नई सांस्कृतिक चेतना विकसित हुई, वह लम्बे विकासक्रम के दौरान मध्ययुग में सन्तों -कबीर-रैदास आदि सन्तों के पास पहुंचकर क्रांतिकारी चेतना में तब्दील हो गई।"[327] इस क्रांतिकारी चेतना का ही असर है कि आज दलित साहित्य असमानता पर जमकर प्रहार कर रहा है। दलित साहित्य के अंतर्गत आक्रोश, विरोध और असमानता के प्रति यह तेवर किसी एक दिन में नहीं बना।

जब यूरोप में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक पुनर्जागरण चल रहा था, उसी समय भारत में दलितों में पुनर्जागरण की शुरूआत हो चुकी थी। जिसका वर्णन तेज सिंह इस प्रकार करते हैं कि "यूरोप का पुनर्जागरण मूलत: धार्मिक सुधार-कार्यक्रम के साथ विकसित हुआ था परन्तु बाद में उसमें राजनीतिक-सामाजिक सुधार के कार्यक्रम भी शामिल हो गए थे, जबकि भारत का पुनर्जागरण मूलत : एक सांस्कृतिक आन्दोलन था जो सामाजिक- धार्मिक सुधारों के बजाय धर्म जाति पर आधारित वर्णवादी समाज-व्यवस्था के उन्मूलन पर केन्द्रित था।"[328] इस प्रकार के सांस्कृतिक आन्दोलन ने काफी हद तक सुधार किये हैं। जिससे सामाजिक चेतना में परिवर्तन तो हुआ लेकिन 'धर्म'

[327] तेजसिंह, अपेक्षा पत्रिका, जुलाई-सितम्बर 2005, पृष्ठ संख्या-5
[328] तेजसिंह, अपेक्षा पत्रिका, जुलाई-सितम्बर 2005, पृष्ठ संख्या-5

जैसा मुद्दा भारतीय समाज का अभिन्न अंग है। जिसको हिन्दूवादी नीतियों ने इस प्रकार जकड़ रखा है। यह केवल हिन्दू धर्म में होता है ऐसा नही है, क्योंकि हिन्दू धर्म, के अलावा मुस्लिम, सिख, ईसाई आदि धर्म-अन्धविश्वास और पाखंड से मुक्त नहीं है। लेकिन यहाँ उस 'धर्म' की बात की जा रही जिसका हिस्सा दलित समाज होते हुए कभी उससे जुड़ नहीं पाया है। जबकि आदिम समाज में इसकी संकल्पना भिन्न थी, जिसका उल्लेख डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर ने इस प्रकार किया है कि "प्रथम आदिम समाज के धर्म में ईश्वर की कल्पना का कोई अंश नहीं है। दूसरे, आदिम समाज में धर्म में नैतिकता और धर्म, इन दोनों में कुछ भी संबध नहीं है। आदिम समाज में ईश्वर के बिना धर्म है। आदिम समाज में नैतिकता है, परन्तु वह धर्म से स्वतंत्र है"[329] लेकिन कालान्तर में धर्म के नाम पर अनेक मिथक और काल्पनिक दुनिया का निर्माण कर लिया गया। जिससे इसके अंतर्गत ईश्वर, देवी-देवता आदि के सहारे समाज के उपचार भी किये जाने लगे। जैसे कई प्रकार के आपदाओं आदि का निदान को भी उसी जोड़कर देखा जाने लगा। रोग, भय, मृत्यु आदि धार्मिक अनुष्ठान होने लगे। जिससे एक नये तरीके के धर्म का निर्माण हो गया। इसका रूप कालांतर में ऐसे बदला की यह सामाजिक शक्ति बन गई। जिसका उल्लेख डॉ. अम्बेडकर ने इस प्रकार किया है "धर्म एक सामाजिक शक्ति है, इस बात की अनदेखी नहीं की जा सकती। हेबर्ड स्पेंसर ने धर्म की अत्यंत सार्थक व्याख्या की है, जिसके अनुसार, 'किसी जाल की बुनाई में यदि इतिहास को ताना माना जाय तो धर्म एक ऐसा बाना है, जो उसके प्रत्येक स्थान पर आड़े आता है।"[330] धर्म की इसी सामाजिक शक्ति ने समाज को बड़ी क्षति पहुचाई है। देश में दलित समाज के लोग लगातार वैदिक काल से शोषित होते रहे। जिसके केंद्र में छुआछूत और अस्पृश्यता रही है।

[329] बाबा साहब डॉ. आंबेडकर, सम्पूर्ण वांङ्मय , खण्ड 6, पृष्ठ संख्या-26
[330] बाबा साहब डॉ. आंबेडकर, सम्पूर्ण वांङ्मय, खण्ड 6, पृष्ठ संख्या-40

दलित रचनाकारों ने इस प्रकार के मानसिकता के खिलाफ ही लिखना शुरू किया। इतना ही नहीं बल्कि 'हिन्दू धर्म' तक को तिलांजलि दे दी। जिसका सबसे बड़ा उदाहरण तो बाबा साहब आंबेडकर हैं। जिन्होंने इस व्यवस्था के खिलाफ बड़े ही आक्रामक तेवर, अंदाज में आवाज उठाई और अन्ततः इस धर्म को उन्होंने खुद तिलांजली दे दी। दलित रचनाकारों ने धर्म को लेकर बहुत सी रचनाएं की हैं। लेकिन यहाँ पर असंग घोष की यह कविता बहुत ही महत्त्वपूर्ण लगती है-

"धर्म!

तुम भी एक हो

मेरे पैदा होने के बाद

जाति के साथ

चिपकने वाले

. . .

तुम्हें क्यों न छोड़ूँ

लो

मै तुम्हें तिलांजलि देता हूँ।"[331]

धर्म का बहुत बड़ा मुद्दा जातिवाद से जुड़ा रहा है। जिसका उल्लेख कविता में मिलता है कि पैदा होते ही यह चिपक जाती है और आजीवन चिपकी रहती है। भारतीय हिन्दू समाज को प्रभावित करने वाले इस धर्म की यही खामियां रही है कि समानता का जब भी सवाल उठता है तो असमानता की खाई दिखाई देती है। समाज में इसका इतना प्रभाव है कि देश में हो रहे हिन्दू, मुस्लिम के नफ़रत के बीच भी फैल रहा है। ईश कुमार गंगानिया को पूरी तरह यकीन है कि धार्मिक तत्ववाद को फैलाने वाले-

---

[331] कँवल भारती, दलित निर्वाचित कविताएं, पृष्ठ संख्या-121

"ये धर्म के प्रायोजक/ माडल

यूँ ही करते रहेंगे पोषण

विषमता प्रवृत्ति यों का

और....

बनाते रहेंगे इन्सान को

हिन्दू...मुसलमा

धार्मिक तत्ववाद धार्मिक आतंकवाद को जन्म देकर उसे कभी हिन्दू आतंकवाद में बदल देता है तो कभी मुस्लिम आतंकवाद में परन्तु वह अन्तत: फासीवाद में बदल तब्दील होकर सभी मानवीय मूल्यों, जनवादी-लोकतांत्रिक विचारों और प्रक्रियाओं को नष्ट कर देता है ।"[332] दलित आलोचकों ने दलित कविता के माध्यम से जाति, अस्पृश्यता, पूंजीवाद के साथ-साथ धार्मिक मुद्दों की काफी पड़ताल की है। जिससे 'धर्म' के विषय में अनेक तथ्य निकलकर आते हैं। जिससे इस विषय पर कई प्रकार के सवाल निकलकर आते हैं साथ ही इसके माध्यम से हो रहे शोषण के प्रति आक्रोश भी।

यह आक्रोश जिसकी शुरूआत महात्मा गौतम बुद्ध से होती है। वह मध्यकाल में भी दिखाई देता है, जिससे सम्पूर्ण दलित साहित्य प्रेरणा लेता है। परन्तु मध्यकाल के अंतर्गत आने वाले प्रमुख कवियों पर गंभीर आरोप भी लगाए जाते हैं। जिसका वर्णन ओमप्रकाश वाल्मीकि ने 'दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र' में इस प्रकार किया है कि "हिंदी साहित्य के भक्तिकाल में रैदास और कबीर जहाँ एक ओर वर्ण-व्यवस्था के विरूद्ध खड़े दिखाई पड़ते हैं और सामाजिक बदलाव के लिए संघर्ष करते हैं, वहीं वे आध्यात्मिक दलदल में फँसकर उसी सामंती व्यवस्था में विलीन हो जाते हैं। जिनसे

[332] तेजसिंह, अपेक्षा पत्रिका, जुलाई-सितम्बर 2005, पृष्ठ संख्या-38

वर्ण-व्यवस्था को पुख्ता किया है ।"[333] ओमप्रकाश वाल्मीकि को जहाँ दलदल नजर आता है वहीं अन्य आलोचकों को वास्तविक दलित चिंतन दिखाई देता है । सामान्य अर्थों में अगर देखा जाये तो कबीर और रैदास को इतना आसानी से नहीं कहा जा सकता है कि वे दलदल में फंसे थे । परन्तु वर्तमान दलित कवि स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि मैं तुम्हारे धर्म का कैसे विश्वास कँरू? जिसमें अपमान ही अपमान है । जिसे मोहनदास नैमिशराय की इस कविता से समझा ला सकता है-

"मैं तुम्हारे
झूठे धर्म पर
करता रहा गर्व
लेकिन
तुम्हारा मेरे प्रति
छिपा रहा सदैव
अपमान का भाव ही
तुम्हारी नैतिकता की छतरी में
छेद-ही-छेद हैं ।"[334]

भारतीय समाज विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों को मानने वाला है । परन्तु जितनी विभिन्नता हिन्दू धर्म में है अन्य में नहीं है । डॉ. अम्बेडकर ने इस सन्दर्भ में लिखा है कि "मेरे विचार में धर्म में सुधार के मुद्दे इस प्रकार हैं: (1) हिन्दू धर्म की केवल एक और केवल एक ही मानक पुस्तक होनी चाहिए, जिसे सारे हिन्दू स्वीकार करें और मान्यता दें । इससे वस्तुत: मेरा तात्पर्य यह है कि वेदों, शास्त्रों और पुराणों को पवित्र और अधिकृत ग्रन्थ मानने पर रोक लगे तथा इन ग्रंथों में निहित धार्मिक य सामाजिक मत का प्रवचन करने पर सजा का प्रावधान हो, (2) अच्छा होगा यदि हिन्दुओं में

[333] ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या-73

[334] मोहनदास नैमिशराय, हिन्दी दलित साहित्य, पृष्ठ संख्या-308

पुरोहिताई समाप्त की जाए । चूंकि ऐसा होना असम्भव है, इसलिए पुरोहिताई पुश्तैनी नहीं होनी चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति जो अपने को हिन्दू मानता है, उसे राज्य में परीक्षा पास कर सनद प्राप्त कर लेने पर पुजारी बनने का अधिकार होना चाहिए, (3) बिना सनद के धर्मानुष्ठान करने को कानूनन वैध नहीं माना जाना चाहिए । जिनके पास सनद नहीं है, उनके द्वारा पुजारि का काम किए जाने पर सजा का प्रावधान हो, (4) पुजारी को सरकारी नौकर होना चाहिए, जिसके ऊपर नैतिकता, आस्था तथा पूजा के मामलों में अनुशासनात्मक कार्यवाही की जा सके । इसके अलावा उस पर नागरिक कानून भी लागू होने चाहिए, और (5) पुजारियों की संख्या को कानून द्वारा आवश्यकतानुसार सीमित किया जाना चाहिए, जैसा आई. सी. एस के पदों की संख्या के बारे में किया जाता है ।"[335]

5.3.1.1 आदि हिन्दू आन्दोलन

स्वामी अछूतानन्द उत्तर भारत का एक बड़ा नाम है, उन्होंने समाज में व्याप्त बुराईयों को दूर करने के कई लिए कई सभाएं और 'आन्दोलन' को चलाया था । स्वामी जी के 'आदि हिन्दू आन्दोलन' पर लोकायत, आजीवक, बुद्ध और नाथ-साहित्य का प्रभाव दिखाई देता है । इस आन्दोलन के आरम्भ के विषय में कँवल भारती ने लिखा है कि "आदि हिन्दू आन्दोलन का आरम्भ, जैसा कि कहा जा चुका है, 1922 में हुआ था। लेकिन इसे धर्म का विधिवत रूप देने में स्वामी जी को चार वर्ष लग गए थे। इसी आधार पर कतिपय विद्वानों ने 'आदि हिन्दू आन्दोलन' का आरम्भ 1926 से माना हैं।"[336] स्वामी जी अपने सभाओं में अक्सर दलित समाज के चेतना और जागृति के लिए कहा करते थे कि शूद्रों ये जुल्म का इतिहास बहुत प्राचीन है इसलिए इससे मुक्ति का प्रयास करो 6-7 अक्टूबर 1928 को पंजाब में भाषण के दौरान उन्होंने कहा था कि-

"शूद्रो गुलाम रहते, सदियाँ गुजर गई हैं।
जुल्मों सितम को सहते, सदियाँ गुजर गई हैं।।

[335] डॉ. अम्बेडकर, सम्पूर्ण वांङमय, खण्ड-1, पृष्ठ संख्या-101
[336] कँवल भारती, (संपा), स्वामी अछूतानन्द 'हरिहर' संचयिता , पृष्ठ संख्या-27

अब तो ज़रा विचारों, सदियाँ गुजर गई हैं।

अपनी दशा सुधारों, सदियाँ गुजर गई हैं।।"[337]

इस प्रकार स्वामी जी ने देश के विभिन्न हिस्सों में भाषण और आन्दोलनों के माध्यम से दलित समाज को जागरूक किया। स्वामी जी द्वारा बनाया गया यह 'आदि हिन्दू आन्दोलन' में 'हिन्दू' शब्द विवाद का विषय रहा है। इसलिए इस विषय में स्पष्ट रूप से बताना आवश्यक है कि उन्होंने इसे क्या माना है? इसका उल्लेख कंवल भारती ने इस प्रकार किया है कि "स्वामी अछूतानन्द ने 'हिन्दू' शब्द को मूल निवासी के रूप में स्वीकार किया था।"[338]

इस आन्दोलन से दलित समाज इतना प्रभावित हुआ की स्वामी जी ने इसकी कई सभाएं और सम्मलेन किए। उन्होंने दलित समाज को छुआछूत के मूल कारणों और वास्तविक जीवन से परिचित कराया था। उन्होंने जाति-सुधार के लिए निम्न सात बातों पर जोर दिया "(1) शिक्षा (2) गंदे पेशों का त्याग (3) मृतक पशुओं के सड़े मांस को खाने से रोकना (4) बेगार के विरूद्ध संघर्ष (5) सत बसना का परित्याग-यह एक इसी प्रथा थी, जिसमें दाई का काम करने वाली चमार महिला को सात दिन तक सवर्ण जच्चा के घर में रहकर साफ-सफाई करनी होती थी, (6) नशा त्याग और (7) पाखंड अन्धविश्वास का खात्मा।"[339] आदि हिन्दू आन्दोलन के प्रभाव के चलते देश के विभिन्न हिस्सों में हुआ था। जिसको इस प्रकार समझ सकते हैं। "पहला अधिवेशन दिल्ली में (1923) में, चौथा नागपुर में (1924) तीसरा हैदराबाद (1925), चौथा मद्रास (1926), पांचवां इलाहाबाद (1927), छठा बम्बई (1928), सातवाँ अमरावती (1929), और आठवां 1930 में इलाहाबाद हुआ था। प्रांतीय

[337] कँवल भारती, (संपा), स्वामी अछूतानन्द 'हरिहर' संचयिता , पृष्ठ संख्या-150

[338] कँवल भारती, (संपा), स्वामी अछूतानन्द 'हरिहर' संचयिता , पृष्ठ संख्या-27

[339] कँवल भारती, (संपा), स्वामी अछूतानन्द 'हरिहर' संचयिता , पृष्ठ संख्या-20

सभाएं लखनऊ, कानपुर, इलाहाबाद, मेरठ, मैनपुरी, मथुरा,इटावा, गोरखपुर, फर्रूखाबाद तथा आगरा में आयोजित हुई थी।"[340]

उन्नीसवीं सदी में इस प्रकार के बहुत से आन्दोलन चल रहे थे। जिससे दलित समाज को ऊर्जा तो मिलती रही और इनसे प्रेरित होकर दलित चेतना का निर्माण हुआ है। उन्नीसवीं सदी में इस प्रकार के आन्दोलन चारों ओर चल रहे थे। जिसको हम इस प्रकार समझ सकते हैं कि- "उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध के नवजागरण काल और 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध के राष्ट्रीय चेतना में हम समाज सुधार को और सामाजिक विषमताओं से देखते हैं। इसमें ज्योतिबा फुले (1827 से 1890) गोपाल हरि देशमुख (1823-1892), स्वामी रामलिंगम (1823-1874) गोपाल बाबा (1888) स्वामी दयानन्द सरस्वती (1824-1883), जी.जी.अगरकर (1857-1895) महात्मा गांधी (1869-1948), कोल्हापुर महाराज छत्रपति शाहू जी, नारायणगुरू, ई. वी. रामास्वामी पेरियार नायकर (1879-1973) डॉ. अम्बेडकर (1891-1956) एम. सी. राजा आदि अनेक समकालीन हैं।"[341] इस प्रकार अनेक महापुरूषों से प्रेरणा लेकर ही समाज में सम्यक् दृष्टि का निर्माण होता है। जिसमें एक तरफ उपेक्षित समाज की अभिव्यक्ति है तो दूसरी तरफ सम्पूर्ण समाज के लिए मार्गदर्शन भी है।

5.3.1.2 भारतीय बौद्ध महासभा

दलित समाज और साहित्य को मजबूती प्रदान करने वाले आंदोलनों में बौद्धधर्म एवं बौद्ध संगठनों का विशेष योगदान है। दलित समाज में इन संगठनों का इतना अधिक प्रभाव है कि आज भी समाज के उपेक्षित समुदाय, बौद्ध धर्म धारण करते हैं। भारतीय बौद्ध महासभा की स्थापना डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने की थी। "भारतीय बौद्ध महासभा (अंग्रेजी: The Buddhist Society of India) भारतीय बौद्धों का राष्ट्रीय संगठन है। डॉ. भीमराव

[340] कँवल भारती, (संपा), स्वामी अछूतानन्द 'हरिहर' संचयिता , पृष्ठ संख्या-33
[341] दीप्ति गुप्ता, दलित आन्दोलन और सामाजिक न्याय, पृष्ठ संख्या-21

अम्बेडकर ने इसकी स्थापना 4 मई, 1955 को मुंबई, महाराष्ट्र में की थी। 8 मई 1955 को बॉम्बे के नरे पार्क में आयोजित एक समारोह में डॉ आम्बेडकर ने बौद्ध-धर्म के प्रचार के लिए इस संगठन की स्थापना की औपचारिक घोषणा की। इसका मुख्यालय मुंबई में है। वर्तमान में इसके राष्ट्रीय अध्यक्ष के रूप में राजरत्न आंबेडकर कार्य कर रहे हैं। भारतीय बौद्ध महासभा, अंतर्राष्ट्रीय बौद्ध संगठन वर्ल्ड फैलोशिप ऑफ बुद्धिस्ट का सदस्य है। इससे कई भारतीय राज्यों के बौद्ध अनुयायी सदस्य के रूप में जुडे हुए हैं।"[342] परन्तु जब दलित साहित्य की चर्चा की जाती है तो यह स्पष्ट है कि यह साहित्य बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर के पहले भी प्रकाशित हो रहा था। शरण कुमार लिम्बाले ने लिखा है कि "बाबा साहब अम्बेडकर से पहले दलित साहित्य प्रकाशित हो रहा था। हलाकि 14 अक्टूबर, 1956 को दलितों का धर्मान्तरण हुआ फिर 2 मार्च, 1958 को दलित लेखकों का पहला साहित्य सम्मेलन संपन्न हुआ। यहाँ यही बात ध्यान देने योग्य है कि इसे बौद्ध साहित्य की बजाय 'दलित साहित्य' नाम से संबोधित किया गया।"[343]

सबसे महत्त्वपूर्ण सवाल यह है कि यहाँ 'बौद्ध साहित्य' को भी 'दलित साहित्य' कहा गया। तब विद्वानों के बीच 'दलित' शब्द को लेकर गंभीर बहस शुरू हुई, किसी को लगा यह अपमान का बोधक है तो किसी को लगा यह चेतना को जाग्रत कर 'दलित समाज को एकजुट करने वाला' है। इस विषय में विजय सोनवणे की यह उक्ति विचारणीय है कि "बौद्ध साहित्य का समर्थन करने वाले समीक्षकों ने दलित साहित्य की आलोचना की है। विजय सोनवणे ने 'दलित साहित्य क्यों नहीं चाहिए' नाम की अपनी पुस्तक प्रकाशित की है। वे कहते हैं, "अपने पूर्वजों ने जानवर खींचे, जूठा खाया, भीख माँगी, सब कुछ किया। इस संबंध में क्या सवर्ण समाज की संवेदना जाग उठती है? फिर बार-बार अपनी अस्पृश्यता

342 https://hi.wikipedia.org/wiki, भारतीय बौद्ध महासभा, अंतिम परिवर्तन 16:01, 15 अक्टूबर 2020
343 शरण कुमार लिम्बाले, दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र, पृष्ठ संख्या-52

चौराहों पर क्यों रखी जाए? आप ही अपने समाज को बेइज्जत क्यों करें?"[344] मनुष्य को अपने इतिहास से परिचित होना चाहिए। दलितों के जीवन-संघर्ष का इतिहास यही है कि उन्होंने जूठन खाया, मैला ढ़ोया, तपती धूप में आधे पेट खाकर 'जीवन-जिया' और अन्य मनुष्यता विरोधी अपमानों को सहा, जिसका प्रमुख कारण ब्राह्मणवाद रहा है। इसलिए वह इससे मुक्ति के लिए सदियों से एक राह की तलाश में लगें हुए हैं, जिस ओर डॉ. अम्बेडकर ने ध्यान दिलाकर दलित 'मुक्ति' का एक विकल्प दिया है।

इस सन्दर्भ में बी.बी.सी.की यह 'रिपोर्ट' इस प्रकार है कि "सन 2001 की जनगणना के मुताबिक देश में बौद्धों की जनसंख्या अस्सी लाख है जिनमें से अधिकांश नवबौद्ध यानी हिन्दू दलितों से धर्म बदलकर बने हैं। सबसे अधिक 59 लाख बौद्ध महाराष्ट्र में बने हैं। यूपी में सिर्फ 3 लाख के आसपास नवबौद्ध हैं फिर भी कई इलाकों में उन्होंने हिंदू कर्मकांडों को छोड़ दिया है। पूरे देश में 1991 से 2001 के बीच बौद्धों की आबादी में 24 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।"[345]

5.3.2 धार्मिक ग्रन्थों का प्रतिरोध: दलित कविता

दलित समाज से आए दलित कवियों और आलोचकों ने समाज के उन्हीं पाखंडों का विरोध किया है जिसने उनका शोषण किया। उन्होंने उसी साहित्य को दरकिनार करने की वकालत की जिसे 'साहित्य का दर्पण' तो कहा गया लेकिन उस दर्पण में एकांकी दृष्टि ही दिखी। इसलिए भारतीय समाज में सदियों से व्याप्त, धार्मिक, राजनीतिक पाखंड से मुक्ति के लिए इन लेखकों ने जंग छेड़ दी क्योंकि उसी में समाज की भलाई है। इसलिए समाज में अनैतिक भ्रम फैलाने वाले विचारों और ग्रंथों से बचने की अपील भी करते हैं।

---

[344] शरण कुमार लिम्बाले, दलित साहित्य सौदर्य शास्त्र, पृष्ठ संख्या-54

[345] बौद्ध बनने से हिंदू दलितों के दिन फिरे, 'अनिल यादव', https://wwwl bbcl com/hindi/india/2016/04/

रूसों के विचारों को तुलसीराम ने लिखा है कि “प्लेटो के दार्शनिक राज्य में कवियों-कलाकारों की आवश्यकता इसलिए नहीं थी, क्योंकि वे समाज में अनैतिक प्रभाव डालते थे, क्योंकि वे अतिरंजना करते थे, क्योंकि वे यथार्थ से दूर रहते हुए मिथक फैलातें थे। वह कविता को काल्पनिक तथा धूर्ततापूर्ण झूठ मानता था। प्लेटो की बात आधुनिक साहित्य पर शत-प्रतिशत भले ही लागू न हो, किन्तु प्राचीन भारतीय साहित्य पर अवश्य लागू होती है।”[346] किसी देश का साहित्य समाज की स्थिति को सदियों-सदियों तक जीवित रखता है। इसलिए अनैतिक और भ्रमित करने वाले ग्रंथों से बचने में ही भलाई है। शायद इसीलिए प्लेटो ने तत्कालीन कवियों की अवहेलना की थी। दलित साहित्य के विषय में भी एक बात बिल्कुल स्पष्ट है कि मिथक और अंधविश्वास को जड़ से उखाड़ना चाहता है। इसलिए वह निरन्तर उसी पर प्रहार करता है।

यह बात किसी से छिपी नहीं हैं कि समाज में असमानता ज्यादा से ज्यादा अनैतिक ग्रंथों से ही फैली है। शायद प्लेटो के समय में यही मिथकीय काव्य ग्रीस में विद्यमान रहे होंगे। जिसका वर्णन तुलसीराम ने इस प्रकार किया है कि “समस्त वैदिक साहित्य, जिसमें महाभारत, रामायण, गीता, पुराण शामिल हैं, प्लेटो की कसौटी पर एकदम खरे उतरते हैं। इन सभी ग्रंथों में तथाकथित कलापूर्ण कविताओं के माध्यम से वर्ण-व्यवस्था को न्यायोचित ठहराते हुए अप्रतिम अत्याचार जारी रखने की ठोस नींव डाली गई है, जिसका शिकार सदियों से दलित होते चले आ रहे हैं। जाहिर है ये मिथकीय काव्यग्रंथ मानव में और कुछ पैदा करे या न करे वर्ण-व्यवस्थात्मक-मनोविकार अवश्य पैदा करते हैं। उस समय मिथकीय काव्य ग्रीस में भी विद्यमान थे।”[347]

यह भी कहा जा सकता है कि आज मनुष्य विकास के चरम अवस्था में पहुँच चुका इसलिए इन विषयों से चिपके रहना पिछड़ेपन की निशानी है। परन्तु यह भी तो सच

[346] धर्मवीर यादव गगन (संपा),बहुजन वैचारिकी, तुलसीराम विशेषांक, भाग– एक, पृष्ठ संख्या-26
[347] धर्मवीर यादव गगन (संपा),बहुजन वैचारिकी, तुलसीराम विशेषांक, भाग–एक, पृष्ठ संख्या-26

है अगर व्यवस्था न होती तो दलित साहित्य जैसा विषय ही न होता। दलित साहित्य ने परम्परा से चली आ रही हिंदी साहित्य के इतिहास की पूर्व निर्मित रचनात्मक, आलोचनात्मक प्रक्रिया में बदलाव किया है। जिसकी आवाज सम्पूर्ण साहित्यिक जगत में हलचल मचा रखी है। इसमें कोई संदेह और भ्रम नहीं होना चाहिए क्योंकि दलित साहित्य साहित्यिक जगत के लिए नया और मजबूत मानदंड निर्धारित कर रहा है। जिससे स्वस्थ और लोकतंत्रात्मक समाज का निर्माण होगा। जिसके विषय में यही कहा जा सकता है कि यह साहित्यकार वह दुनिया की तकदीर बदलने की ठान चुका है। जिसे काली चरण स्नेही की इस पक्तियों से समझ सकते हैं-

"आ उतरे लै लेखनी, लिखने को जगपीर।
बदलेंगे हम एक दिन, दुनिया की तस्वीर।"[348]

साहित्य पर समाज का शत-प्रतिशत असर पड़ता है इसलिए सदियों से समाज में उपेक्षित वर्ग ने लेखन को अपना हथियार बनाया है। जिससे समाज में जन जागृति फैली। इससे किसी को ऐतराज नहीं होना चाहिए। इस सन्दर्भ में मोहनदास नैमिशराय की यह कविता प्रासंगिक है कि-

"ईश्वर की मौत
उस दिन होती है
जब बनता है कोई मंदिर य मठ
जहाँ बैठता है कोई
ठग,
लुटेरा,
गुमराह करने वाला।"[349]

[348] प्रो. कालीचरण स्नेही, दलित विमर्श और हिंदी दलित काव्य, पृष्ठ संख्या-217

5.3.3 दलित आलोचकों के बीच धार्मिक अंतर्द्वंद्व

इस क्रम में अगर देखें तो डॉ. धर्मवीर ने तो अम्बेडकर के बौद्धधर्म के विषय में एक अलग बहस खड़ी की है। जबकि वे भी लम्बे समय तक उन्हीं के समर्थक थे। परन्तु बाद में उन्होंने डॉ. अम्बेडकर पर यह आरोप लगाया कि अम्बेडकर का चिंतन कुंद हो गया था। डॉ. धर्मवीर का विचार है कि "डॉ. बौद्ध धर्म की दीक्षा लेकर ऐतिहासिक भूल की थी और जिस समय उन्होंने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली थी। उस समय उनके चिंतन की धार कुंद हो गयी थी।"[350] एक बात तो एकदम स्पष्ट है कि लोकतंत्र में सबको मौलिक चिंतन करने की आजादी है। इसलिए कोई भी अपनी बात कह सकता है। यह धर्मवीर द्वारा दलितों को एक नया मोड़ देने का प्रयास है। परन्तु डॉ. अम्बेडकर और डॉ. धर्मवीर के चिंतन में बहुत फर्क है। अब अगर दलित साहित्य में देखा जाए तो जब डॉ. अम्बेडकर के चिंतन में न तो कहीं एकाकीपन का आरोप लगाया जा सकता है और न तो कहीं जातिवादी होने का। बुद्ध कोई दलित य शोषित व्यक्ति नहीं थे। परन्तु सामाजिक समानता के पक्षपाती थे। इसलिए उन्होंने बुद्ध के धम्म को विशेष महत्त्व दिया। लेकिन वहीं डॉ. धर्मवीर जिसे हम राजेंद्र यादव के इन शब्दों के माध्यम से समझ सकते हैं कि "डॉ.धर्मवीर अपने धर्म को मध्यकाल के इतिहास में, साहित्य में नहीं, मजबूत चिंतन के रूप में कबीर को पाते हैं। लेकिन दलितों के डर से उसमें रैदास को भी शामिल कर लेते हैं। इस तरह वे दोनों को मिलाकर एक नाम (धर्म) देने की कोशिश करते हैं कि उनमें से एक जूते बनाने वाला चमार है दूसरा कपड़े बुनने वाला चमार-जुलाहा है। अगर उन्हें अलग-अलग करके देखें-जैसा कि वे देखते हैं तो दलितों का एक नया धर्म 'चमार धर्म' हुआ तो दूसरा 'जुलाहा धर्म' और डॉ. धर्मवीर के अनुसार उन दोनों को मिला दिया जाए

[349] मोहनदास नैमिशराय, आग और आन्दोलन, पृष्ठ संख्या-59

[350] राजेंद्र यादव- संपादक, हंस-अगस्त, 2002, पृष्ठ संख्या-43

तो दलितों का एक नया धर्म चमार-जुलाहा धर्म ।"[351] इसे हम देखते हैं कि दलित कविताओं में जहाँ एक तरफ धार्मिक पाखंड और अंधविश्वास के प्रति आक्रोश हैं, वहीं दूसरी तरफ दलित आलोचक धर्म की तलाश में मशगूल हो जाते हैं।

इस प्रकार के विचारों में केवल धर्मवीर ही नहीं फंसते हैं। बल्कि दलित साहित्य के अंतर्गत एक ऐसा दौर चला जिसमें डॉ. अम्बेडकर को लेकर 'स्तुतिगान' होने लगा था, जबकि डॉ. अम्बेडकर इस प्रकार के कर्मकांडों के सदा विरोधी रहे हैं। लगता है कुछ दलित आलोचक और रचनाकार उस राजनीति को नहीं समझ जिसकी बात लगातार अम्बेडकर कहते रहे हैं। यहाँ पर डॉ. लोहिया के इन विचारों का उल्लेख करना बहुत ही समीचीन लगता है। जिसमें उन्होंने कहा था कि "धर्म एक समय की राजनीति है और राजनीति एक छोटे समय का धर्म, तो वह बात गलत नहीं थी, आज आप देख ही रहे हैं कि धर्म और राजनीति एकमएक हो चुके हैं।"[352] 'धर्म' एक ऐसा मोहरा है जो किसी को नहीं छोड़ता है। लेकिन अस्सी-नब्बे के दशक बाद की जो दलित रचनाएं आती हैं उसमें अब प्रतिरोध करने की क्षमता दिखाई देती है।

अम्बेडकर का जीवन-दर्शन ने दलित समाज को ऐसी जड़ी-बूटी प्रदान की सदियों से सुप्त पड़ी नसों में मानों रक्त का संचार होने लगा। इस दौर ने सृजनात्मक साहित्य ने साहित्यिक जगत को काव्य-सृजन की नई धारा की ओर मोड़ दिया। जिसमें समानता रुपी धर्म ही प्रमुख रूप से दिखाई देता है। शरण कुमार लिम्बाले के अनुसार "बाबा साहब अम्बेडकर ने कहा-मेरे तत्वज्ञान में स्वतंत्रता और समता को स्थान है परन्तु असीम स्वतंत्रता से समता का नाश होता है और पूरी समानता, स्वतंत्रता की गुंजाइश नहीं रखती। मेरे तत्वज्ञान में बंधुता का बहुत ऊँचा स्थान है। स्वतंत्रता और समता की रक्षा बन्धुभाव के कारण होगी। बन्धुत्त्व यानी मानवता और मानवता ही धर्म का दूसरा नाम

[351] राजेन्द्र यादव-संपादक, हंस- अगस्त, 2002, पृष्ठ संख्या-43

[352] राजेंद्र यादव-संपादक, हंस- अगस्त, 2004, पृष्ठ संख्या-

है।"[353] देश-दुनिया में जितने भी आविष्कार हो रहे हैं, वे सब मानवता के विकास और मानव सभ्यता के निर्माण के लिए हो रहे है । कल तक जमीन पर चलने वाला आज आसमान में उड़ रहा है। परन्तु मानवता रुपी धर्म का अभी भी अभाव है। इसलिए दलित साहित्यकार उसी मानवता के निर्माण में लगे हुए हैं।

धर्म की आड़ में ईश्वर का भय दिखाकर लगातार मनुष्य का शोषण होता रहा, जिससे हम इनकार नहीं सकते हैं। एक तो मनुष्य-मनुष्य में अंतर दूसरा मोक्ष की आड़ में सामान्य से सामान्य मनुष्य के साथ धोखा होता रहा है। जिसको मलखान सिंह रचित इस कविता के माध्यम से बड़ी आसानी से समझ सकते हैं कि-

"ओ परमेश्वर !
कितनी पशुता से रौंदा है हमें
तेरे इतिहास ने।
देख, हमारे चेहरों को देख
भूख की मार के निशान
साफ दिखाई देंगे तुझे।"[354]

---

[353] शरण कुमार लिम्बाले, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या-57
[354] मलखान सिंह, ज्वाला मुखी के मुहाने, पृष्ठ संख्या-88

5.4 हिंदी दलित कविता आलोचना: राजनैतिक दृष्टि

5.4.1 साहित्य और राजनीति का गहरा सम्बन्ध

21वीं सदी का यह दौर ज्ञान-विज्ञान का है। जहाँ चीजों को देखने और समझने का नजरिया बदल गया है। एक समय जिस किसी भी चीज को मनुष्य सपने में देखा करता था। साहित्य का रूप समय-समय पर युगानुरूप बदला है। इसलिए हिंदी साहित्य के आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल, आधुनिक काल, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद आदि के स्वरूप में परिवर्तन दिखाई देता है। अब यहाँ यह भी सच है कि इन कालों की प्रवृत्तियाँ कभी भी समान नहीं रही है। बल्कि इन सब ने अपने समयानुरूप और युगानुरूप समाज का चित्रण किया है।

बीसवीं सदी के आठवें दशक में हिंदी साहित्य के समृद्ध होने के बावजूद इन्हीं रूपों और आकारों में सेंध लगाते हुए दलित साहित्य का बड़े ही तीव्रता के साथ आगाज होता है। जिसने पूरे साहित्यिक जगत की दशा और दिशा बदल दी। दलित साहित्य के विकास में अब तक कई गोष्ठियां और पत्र-पत्रिकाओं का आगमन हो चुका था। जिसने दलित साहित्य का पथ-प्रदर्शन करते हुए इसको दिशा प्रदान की। इस प्रकार साहित्यिक जगत में परम्परागत साहित्य से इतर साहित्य का युग परिवेश के अनुसार निर्माण हुआ। जिसमें 'निर्माता और भुक्तभोगी दोनों ही रचनाकार हैं एवं उनके द्वारा लिखित रचना ही 'आलोचना है', इसका मतलब यह है कि 'प्रत्येक कविता एक यथार्थ है जिसमें जीवन का सत्य मौजूद है'। जिसने भी इस यथार्थ को लिखा उनकी आँखें डब-डबाई और साथ ही उन्हें आश्चर्य हुआ कि राजनीति के तहत सदियों से उनके हक़ और हकूक को हड़पकर उन्हें दर किनार कर दिया जाता रहा। जबकि वैदिक-काल में भी 'सुदास' शूद्र राजा की चर्चा आती है। जिसका उल्लेख हरिनारायण ठाकुर ने इस प्रकार किया है कि "वैदिक काल में राजा जानश्रुति, सुदास आदि शूद्र राजाओं की चर्चा आती हैं। काशी में डोम

राजा का मिथक प्रचलित है। प्राचीन भारत में नन्द, मौर्य आदि राजवंशों को भी शूद्र राजवंश ही कहा जाता है। इसके बावजूद इतिहास-पुराण में ऐसा उदाहरण नहीं मिलता, जिसमें अछूत कही जानेवाली दलित जातियों का कोई राजवंश हो।"[355] इसलिए दलित समाज से निकले साहित्यकारों ने बेझिझक अपनी सदियों की पीड़ा को अभिव्यक्त किया।

जिस प्रकार समाज में दलितों को उपेक्षित किया था ठीक उसी प्रकार साहित्य और राजनीति से भी। जबकि सर्वविदित है कि साहित्य और राजनीति का गहरा सम्बन्ध है। साहित्य किसी भी दौर का रहा हो वह राजनीति विहीन नहीं रहा है। इस विषय में ओमप्रकाश वाल्मीकि की यह युक्ति प्रसांगिक लगती है कि-"साहित्य और राजनीति का गहरा सम्बन्ध है। कोई भी साहित्यिक आन्दोलन राजनीतिक आन्दोलन की भूमिका बनता है। हिंदी समीक्षक उस साहित्य में भी राजनीतिक प्रभाव ढूँढ़ लेते हैं, जो पूर्णरूपेण पलायनवादी और श्रृंगारिक रोमैंटिक होता है।"[356] जबकि दलित साहित्य न्याय और अधिकार के लड़ने वाला साहित्य है। इसलिए यह साहित्य राजनीति ने कैसे बच सकता है। दलित साहित्य के विविध आयाम को देखने के बाद उसके राजनीतिक प्रभाव का विश्लेषण करते समय उसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को समझना होगा। राजनीति समाज का वह हिस्सा है। जिससे समाज का प्रत्येक नागरिक प्रभावित है।

आधुनिक काल में दलित समाज का प्रवेश सबसे सशक्त रूप में डॉ. आंबेडकर के बाद होता है। जिसकी सबसे पहले शुरूआत 1923 में महाराष्ट्र विधान परिषद से होती है। जिसमें एक विधान पारित हुआ था कि सभी सर्वजनिक सुविधाओं पर सबका समान अधिकार है। जबकि सर्वविदित है कि यह दौर ब्रिटिश हुकूमत का था। इस देश में ब्रिटिश कानून का पालन होता था। देश के कोने-कोने से आजादी की गूँज उठ रही थी।

---

[355] हरिनारायण ठाकुर, दलित साहित्य का समाजशास्त्र, पृष्ठ संख्या-364

[356] ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या-65

परन्तु दलित मुक्ति की तरफ किसी का ध्यान नहीं था। दलित-मुक्ति की बात करना इसलिए भी आवश्यक है कि क्योंकि उसने सदियों से हिकारत भरी जिन्दगी जी थी।

ब्रिटिश शासन के दौरान थोड़ा सा उनके जीवन में सुधार आया था। परन्तु अभी उनका जीवन शोषण मुक्त नहीं हुआ था। इसलिए किसी को उनकी चिंता नहीं थी। अब यह प्रश्न समझने की आवश्यकता है कि दलित प्रश्न पर लोगों का ध्यान कैसे गया? इसका उल्लेख कँवल भारती ने इस प्रकार किया है कि "यहाँ बात यह समझने की है कि जो स्वतंत्रता संग्राम लड़ा जा रहा था, उसके केंद्र में दलित-मुक्ति का प्रश्न नहीं था। दूसरी बात यह समझने की है कि राजनीति में दलित प्रश्न किस तरह शामिल हुआ? प्रथम विश्वयुद्ध के बाद ब्रिटिश सरकार ने 1919 के अधिनियम में संवैधानिक सुधार करने के लिए विचार किया। कांग्रेस और हिन्दू नेताओं ने मुसलमान के पृथक राजनैतिक अधिकारों तथा हितों को स्वीकार कर लिया था। इस समझौते में यह चिंता नहीं की गई कि दलित वर्गों के भी कुछ हित हैं और उन्हें भी राजनैतिक अधिकार मिलने चाहिए। यह स्थिति दलित वर्ग के लिए चिंता जनक थी।"[357] दलितों की तरफ लोगों का ध्यान तब ज्यादा गया जब डॉ. अम्बेडकर ने दलितों के लिए अलग निर्वाचन की मांग की। अलग निर्वाचन की मांग पर साइमन कमीशन की रिपोर्ट आते ही तत्कालीन राजनीतिक पार्टी कांग्रेस और हिन्दू सभा ने जमकर विरोध किया। परन्तु डॉ. अम्बेडकर अपने मांग पर अड़े रहे, तब गांधीजी के अनिश्चितकालीन हड़ताल के चलते उन्हें झुकना पड़ा। जिसे 'पूना-पैक्ट' के नाम से जाना जाता है जो 1932 ई० में हुआ था। इस प्रकार गांधीजी अपने षड्यंत्र में सफल हो जाते हैं और समाज का बहुत बड़ा हिस्सा फिर उसी परम्परागत वर्णवादी व्यवस्था का शिकार हो जाता है।

---

[357] कँवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, पृष्ठ संख्या-72

अब उन्हें हिन्दू राज के ख़तरे का आभास हो गया था। जिस चिंता को डॉ. अम्बेडकर ने इस प्रकार व्यक्त किया है कि "अछूतों को डर है कि भारत की स्वतंत्रता हिन्दू राज्य स्थापित करेगी और अछूतों के लिए दरवाजे बंद हो जाएंगे। सदैव के लिए उनके जीवन की सभी आशाएं, स्वतंत्रता और उनकी खुशियों के स्रोत बंद हो जाएंगे तथा केवल लकड़ी चीरने वाले और पानी खींचने वाले ही बना दिए जाएंगे।"[358] यह बात सुनने में थोड़ा असहज जरूर लग सकती है लेकिन चिंता जायज है।

5.4.2 दलित-साहित्य राजनीति और डॉ. अम्बेडकर

दलित साहित्य में अगर किसी राजनीतिक व्यक्ति का प्रभाव ज्यादा दिखाई देता है, तो वह डॉ. अम्बेडकर का। डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर के जीवन पर सबसे अधिक साहित्यिक लेखन मिलता है। 'भीमचरित मानस'-लक्ष्मी नारायण सुधाकर, 'भीमसागर'-बाबूलाल सुमन, 'अम्बेडकर महाकाव्य' -जवाहर लाल व्यग्र 'कौल', 'मसीहा दलितों का'- राजवैध माता प्रसाद, गोरखनाथ करूणा कृत आल्हा छंद में 'भीमसागर', 'भीमशतक'-माताप्रसाद आदि के जीवन पर काव्यों और महाकाव्यों तक रचना हुई है। डॉ. अम्बेडकर के प्रभाव में जहाँ दलित लेखक उन्हें विविध रूपों में लिख रहे थे वहीं पं. धर्मदेव मार्तंड जैसे कवि संस्कृत श्लोकों के माध्यम से उनका चित्रण कर रहे थे। जिसका उल्लेख 'माता प्रसाद' ने इस प्रकार किया है कि-

"पदं महोच्चं विधि मन्त्रिण य:
सभा जयन भारत संविधाने।
चकार कार्य: सकले : प्रशस्यं-
स्तुत्यों विधिज्ञाग्रणिभीमराब:।।

[358] कँवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, पृष्ठ संख्या-75

जिन्होंने भारत के विधि-मंत्री के अत्यंत उच्च पद को सुशोभित करते हुए, भारत का संविधान बनाने में सबके द्वारा प्रशंसनीय कार्य को कर दिखाया, ऐसे विधि-शास्त्र को जानने वालों में अग्रगण्य डॉ. भीमराव स्तुति योग्य हैं।"[359] यह बाबा साहब का तत्कालीन समाज में पड़ रहे प्रभाव का असर था कि उनके जीवन से प्रभावित होकर लेखक हिंदी और संस्कृत में स्तुति करने लगे।

डॉ. एन. सिंह ने तो 'दृष्टिपथ के पड़ाव' नामक पुस्तक में 'आग और पानी' राजवैद्य माताप्रसाद सागर की पुस्तक में राजनीति के विभिन्न रूपों को सर्गों के माध्यम से को व्यक्त करने के तरीकों को इस प्रकार व्यक्त किया है कि "माताप्रसाद जी ने अपनी इस कृति सात सर्गों में प्रस्तुत किया है। पहले सर्ग में विभिन्न राजनीतिक वादों पर जानकारी दी गई है। इसमें लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, गांधीवाद, कम्युनिज्म, सोशलिज्म, मार्क्सवाद, फासीवाद, नाजीवाद, पूंजीवाद, अधिनायकवाद, नक्सलवाद, हिन्दूवाद तथा अम्बेडकरवाद पर दोहे हैं। यहाँ यह देखना रोचक होगा कि वे हिन्दूवाद और अम्बेडकरवाद के विषय में क्या सोचते हैं। हिन्दूवाद के विषय में वे लिखते हैं-

"वर्ण जाति के नाम पर, चले मनुस्मृति राज।
हिन्दू धर्म हो, अन्य न, सत्ता धर्महिं काज।।"[360]

वर्ण और जाति आधारित समाज ने मनुष्य-मनुष्य के बीच जबरजस्त खाई पैदा कर दी है। इसलिए उस खाई को भरने के लिए दलित साहित्यकार प्रतिबद्ध है। जातिवाद और छुआछूत किसी आसमान से नहीं टपका बल्कि यह मनुष्य की स्वनिर्मित चालाकी है। सत्ता पर काबिज होने की साजिश है। जिसको डॉ. अम्बेडकर के इन विचारों से समझा जा सकता है कि "डॉ. अम्बेडकर के जीवन के अनुभव ने स्पष्ट कर दिया है कि यद्यपि जातिवाद और छुआछूत हिन्दू धर्म की अपनी रचना है, फिर की भारत के

[359] माता प्रसाद, हिंदी काव्य में दलित काव्यधारा, पृष्ठ संख्या-214

[360] डॉ. एन. सिंह, दृष्टिपथ के पड़ाव, पृष्ठ संख्या-13

मुसलमान, पारसी और ईसाई भी इस विषय पर हिन्दू-धारणा से अलग नहीं है। अपने लम्बे संघर्ष के दौरान, उन्हें विश्व में विद्धानों की एक ऐसी अमूल्य मित्र-मंडली मिली जो मानव-मानव के बीच जाति के आधार पर किसी को विजातीय समझ कर प्यार की भाषा से वंचित नहीं करती।"[361] बाबा साहब के यही विचार आगे चलकर प्रेरणादायी सिद्ध हो रहे हैं जिससे प्रेरणा लेकर दलित साहित्यकार अनेक साहित्यिक और राजनीतिक संगठन के माध्यम से समानता का प्रसार का कर रहे हैं। जिन पर डॉ. अम्बेडकर के इन विचारों का प्रभाव अधिक है। "मैं अशक्त, मैं अज्ञानी हूँ, कम पढ़ा-लिखा हूँ, मेरे हाथ से क्या होने वाला है, मैं किसलिए इस झंझट में पडूं ऐसा सोचकर निराश मत होना। आज तुम्हें जो अवगत है वह तुम अपने अड़ोसी-पड़ोसी को बताओ जो सत्य तुम्हें दिखता है उसे अपनी भावी पीढ़ी को दिखाओं, पूर्वजों के जिन पागलपंथी, धार्मिक सामाजिक रूढ़ियों की वजह से तुम लोग पतन के स्तर पर जा पहुँचें इससे उठकर ऊपर जाओ। अगर वह तुमसे नहीं जगा तो कम-से-कम अपनी पीढ़ी को अज्ञान और संकुचित विचारों से और व्यवहार से चलता रहे अनिष्ट जाति बंधन से उसे छुड़ाओ। चावल सुपारी के काल्पनिक देवताओं का समाधान हो जायेगा, परन्तु हमारा नहीं अर्थात देवों की तृप्ति यह भोले लोगों को लूटने का मार्ग है। इसलिए सत्ता हासिल करो।"[362]

अस्सी का दशक आजाद भारत का था जिसमें लोकतंत्र ने सबको समान अवसर प्रदान किया है। लेकिन आशा के अनुरूप कुछ नहीं मिला जो मिला वह केवल संविधान के वजह से मिला। अगर समानता के लिए इस देश में संविधान का निर्माण नहीं हुआ होता तो यह आजादी शत-प्रतिशत झूठी लगती। बावजूद इसके भी डॉ. अम्बेडकर के बाद दलित समाज से कोई भी ऐसा नेता नहीं निकला की जिसका एजेंडा बाबा साहब की तरह मजबूत हो। वह लगातार किसी न किसी पार्टी के द्वारा ठगा जा रहा है। जिसका

---

[361] डॉ. अम्बेडकर, सम्पूर्ण वांङ्मय , खंड-18, पृष्ठ संख्या-xv
[362] हुकुम चन्द भास्कर, दलित राजनीति के मुद्दे, पृष्ठ संख्या-110

वर्णन 'हरिनारायण ठाकुर' ने इस प्रकार किया है कि "श्री वी.पी मौर्य ने स्वीकार किया है कि राजनीतिक दलों में सच्चे नेताओं की कोई कदर नहीं। चाहे लोकदल, कांग्रेस हो या कम्युनिष्ट पार्टियाँ। जब भी ये सुरक्षित टिकट से सीट देती हैं तो यह जरूर देखती हैं, कि आदमी उनके इशारे पर नाचने वाला है कि नहीं।"[363] इशारे पर नाचने वाले व्यक्ति से सामाजिक परिवर्तन की आशा करना व्यर्थ है। वह केवल मोहरा होता है जिसे कोई और संचालित करता है। फिर भी परिस्थिति कोई भी हो आशा और उम्मीद के साथ संघर्ष ही हमारे परिवर्तन की राह है। जिसे श्यौराज सिंह 'बेचैन' की इस कविता से समझ सकते हैं कि-

"नौजवां नया जहाँ बनायेंगे-बनायेंगे।

जात-पात का तनाव।

ऊँच-नीच का भेदभाव।

पेट में सवाल का।

जो दे नहीं सके जवाब।।

ऐसे रहनुमाई को हटायेंगे-हटायेंगे।।

पी गये थे आँसुओं के साथ रात।

कह नहीं सके थे दिल की बात रात।।

हम सुबह के वास्ते ही आये हैं।

हम सुबह जरूर लेके जायेंगे।।"[364]

दलितों की राजनीतिक चेतना का विकास क्रम कुछ इस प्रकार है। डॉ. अम्बेडकर से लेकर बाबू जगजीवन राम, बुद्ध प्रिय मौर्य, मान्यवर कांशीराम, डॉ. के. आर नारायण, माता प्रसाद, बंगारू लक्ष्मण, बहन कुमारी मायावती, मीराकुमार, रामविलास

[363] डॉ. एन. सिंह, दलित साहित्य के प्रतिमान, पृष्ठ संख्या-249

[364] कँवल भारती, दलित कविता का संघर्ष, पृष्ठ संख्या-168

पासवान, चन्द्रशेखर रावण और जिग्नेश मेवाणी आदि अनेक नाम लिए जा सकते हैं जिनसे सर्व समाज परिचित है। समकालीन समाज में दलित राजनीति और साहित्य ने परिवर्तन अवश्य किया है लेकिन यह भी सच है कि कुर्सी के लालच में कुछ दलित नेता भी ब्राह्मणवाद के जाल में समय-समय फँस जाते हैं। जिसका सबसे बढ़िया उदाहरण 'मलखान सिंह' की यह कविता है-

"उफ़! कैसा यह ताँता है
कि हमारी बस्ती का
जो भी चतुर सुजान
नगर को जाता है
डूबता है दल-दल में
जंगल के बीचों-बीच
एक नया ताड़ वृक्ष
और उग जाता है।"[365]

जहाँ एक तरफ दलितों की राजनीतिक भागीदारी बढ़ रही है वहीं दूसरी तरफ दलित समाज से निकला चतुर व्यक्ति भी उन पाखंडियों की जाल में अक्सर फंस जाता है। जिसे लेखक ने ताड़ वृक्ष कहा है।

5.4.3 हिंदी दलित कविता आलोचना की राजनीतिक: पृष्ठभूमि

दलित साहित्य सम्पूर्ण समाज का विषय है, जिसने साहित्यिक जगत में अपनी अलग छाप छोड़ी है। यह कोई एक दिन में नहीं हुआ, बल्कि इसके लिए अनेक प्रकार के संगठन और आन्दोलन हुए हैं। जिससे दलित साहित्य समृद्ध होता है। सत्य शोधक

[365] मलखान सिंह, ज्वालामुखी के मुहाने, पृष्ठ संख्या-95

समाज, आदि हिन्दू आन्दोलन, भारतीय बौद्ध महासभा, झलकारी बाई मिशन, दलित सेना, सामाजिक न्याय अधिकार मंच, बामसेफ, डॉ. अम्बेडकर मंच, दलित पैंथर, राष्ट्रीय अनुसूचित जाति-जनजाति भविष्य निधि संघ, अखिल भारतीय अनुसूचित जाति/जनजाति कर्मचारी कल्याण समिति आदि हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कई प्रकार के सरकारी संगठन बनाये गए हैं जिनका सीधा मकसद दलित समाज के सम्मान और अस्मिता की रक्षा करना है। इन महत्त्वपूर्ण आंदोलनों में से कुछ आन्दोलन का यहाँ उल्लेख किया जायेगा।

5.4.3.1 सत्यशोधक समाज

दलित साहित्य और सामाजिक आन्दोलन दोनों ने समाज में समता और बंधुतारुपी ज्ञान की लहर पैदा कर दी। लेकिन अब सबसे बड़ा सवाल यह खड़ा होता है कि इस आन्दोलन की शुरूआत को कहाँ से माना जाए? जाति-पांति, पाखण्ड और अन्धविश्वास का विरोध तो लम्बे समय से चला आ रहा है। किन्तु जो परिवर्तन आधुनिक भारत में हुआ, वह कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं। एक तो यह कि अब अपनी आवाज दलित शोषित स्वयं उठाने लगे और इस समय भुक्तभोगी समाज से निकले लेखक स्वलिखित साहित्य का भी निर्माण करने लगे। कँवल भारती आधुनिक आन्दोलन के विषय में लिखते हैं कि "आधुनिक भारत में नवजागरण की लहर बंगाल से चली, ऐसा माना जाता है, क्योंकि राजा राममोहन राय, रामकृष्ण और विवेकानन्द को पैदा करने का श्रेय बंगाल को जाता है। परन्तु वास्तव में जिसे हम 'नवजागरण काल' कह सकते हैं, उसकी लहर महाराष्ट्र से उठी थी और यह लहर दलित मुक्ति आन्दोलन की

जिसने न सिर्फ भारत की बल्कि पूरे विश्व का ध्यान आकृष्ट किया था। इस लहर को पैदा करने वाले थे महात्मा फुले जिनका जन्म 1827 और निधन 1890 में हुआ था।"[366]

महात्मा फुले ने समाज में व्याप्त असमानता के खिलाफ ऐसी अलख जगाई जिससे प्रभावित हुए बिना कोई भी समाज नहीं रह सकता। उन्होंने 1873 में 'सत्य शोधक' समाज की स्थापना की एवं 'गुलामगिरी' पुस्तक लिखकर समाज में व्याप्त ब्राह्मणवादी व्यवस्था पर करारा प्रहार करते हुए शिक्षा के महत्त्व को स्पष्ट किया है। जिसे इन पंक्तियों के माध्यम से समझ सकते हैं-

विद्या के अभाव से मती नष्ट हुई
मती के अभाव से नीति नष्ट हुई
नीति के अभाव से गति नष्ट हुई
गति के अभाव से वित्त नष्ट हुआ
वित्त के अभाव में शूद्रों का पतन हुआ।"[367]

महाराष्ट्र में ज्योतिबा फुले ने समाज को शिक्षा का महत्त्व बताते हुए; दलित मुक्ति के लिए, उनके बीच रौशनी डालने का कार्य प्रारम्भ किया। जिससे समाज में व्याप्त कई प्रकार की भ्रांतियों उजागर हुई, जिसे उन्होंने दूर करने के लिए जीवन भर प्रयत्न किया। 'सत्यशोधक समाज' ने शूद्रों की मुक्ति के लिए कार्य किये हैं। "ब्राह्मण, पंडित, जोशी, उपाध्याय-पुरोहित आदि लोगों की दासता से शूद्र लोगों को मुक्त करने के लिए, जो अपने स्वार्थी (धर्म) ग्रंथों के द्वारा आज हजारों साल से शूद्र लोगों को गफलत में लूटते आ रहे हैं। इसलिए उपदेश और ज्ञान के द्वारा उनको उनके सही अधिकार समझाने के लिए मतलब, धर्म और व्यवहार से सम्बंधित ब्राह्मणों के नकली और स्वार्थी ग्रंथों से उनको मुक्ति दिलाने के लिए कुछ जानकार

[366] बी.एस. साहू, दलित साहित्य और सामाजिक आन्दोलन. अपेक्षा पत्रिका, जुलाई-दिसम्बर, 2014 :15
[367] रजत रानी 'मीनू' वंदना, अस्मिता मूलक विमर्श और हिन्दी साहित्य, पृष्ठ संख्या-15

शूद्र लोगों ने इस समाज की स्थापना दि. 24 सितम्बर, 1873 को की है। इस समाज में राजनीतिक सवालों पर बोलना सख्त मना है।"[368]

इस समाज ने जहाँ एक तरफ ब्राह्मणों द्वारा शादी-विवाह के खंडन-मंडन, ब्राह्मणों द्वारा पिण्डदान आदि फालतू धार्मिक रिवाज का विरोध किया। वहीं दूसरी तरफ समान शिक्षा, शूद्र शिक्षा, स्त्री को प्रेरित करते हुए संगठन के माध्यम से सहयोग भी किया। जिसका परिणाम यह हुआ कि कई महत्त्वपूर्ण लोग यहाँ से निकले। "1848-54 में स्त्री और दलितों के लिए पाठशालाएँ खोलने के साथ ही शूद्रादि-अतिशूद्रों की मुक्ति के जो अभियान महात्मा फूले ने शुरू किये, उसका शमन 1873 में 'सत्यशोधक समाज' की स्थापना में होता है। इसके साथ ही दक्षिण भारत में स्त्री और शूद्रों के आन्दोलन चल पड़ते हैं। उसी 'सत्यशोधक समाज' से पहली नारीवादी विचारक ताराबाई शिंदे निकलती है और उनके स्कूलों से शिक्षित होकर फतिमा शेख तथा मुक्ताबाई जैसी तेजस्विनी नारियाँ आगे आती हैं, पं. रमाबाई जैसी नारियों को प्रेरणा मिलती है। उसी आन्दोलन से लोखंडे जैसे कार्यकर्त्ता भारत का पहला मजदूर संगठन 'बाम्बे मिल्हैंण्ड्स एसोसिएशन' खड़ा करता है और अन्तत: उसी वैचारिक बुनियाद पर पेरियार के 'आत्मसम्मान आन्दोलन' और डॉ. अम्बेडकर के 'दलित आन्दोलन' खड़े होते हैं।"[369]

जिस समय महाराष्ट्र में फुले इस प्रकार के आन्दोलन का निर्माण कर रहे थे। ठीक उसी समय देश के विभिन्न हिस्सों में समाज सुधार के आन्दोलन चल रहे थे। केरल में नारायणगुरू, उत्तर भारत में स्वामी अछूतानंद, बंगाल में चाँदगुरू और मध्यप्रदेश में गुरू घासीदास आदि विभिन्न जगहों में दलित समाज के नवनिर्माण के लिए आन्दोलन चला रहे थे। कुल मिलाकर इन महापुरूषों ने हजारों वर्षों से सामाजिक संसाधनों पर आधिपत्य जमा चुके लोगों के सामने चुनौती पेश की। जिसका विस्तार दलित साहित्य में दिखाई देता है।

[368]महात्मा ज्योतिबा फुले रचनावली, (संपा), एल. जी. मेश्राम 'विमल कीर्ति, खण्ड -1, पृष्ठ संख्या -241

[369] हरिनारायण ठाकुर, दलित साहित्य का समाजशास्त्र, पृष्ठ संख्या-256

5.4.3.2 ब्लैक पैंथर

ब्लैक पैंथर की स्थापना अमेरिका में हुई थी। जिसे दुनिया का सबसे शक्तिशाली देश माना जाता है। परन्तु गोरों के जुल्म के चलते यहाँ ब्लैक पैंथर, ब्लैक पावर जैसे आन्दोलन का उदय हुआ है। "अमेरिका में अश्वेत लोगों की श्वेत लोगों द्वारा अवमानना की जाती थी तथा उनकी दासता से मुक्ति दिलाने के लिए सबसे पहले अब्राहम लिंकन ने आवाज उठाई। उन्होंने 1896 में समानता के सिद्धांत पर आधारित तथा एक अलग प्रतिष्ठा के लिए 'नीग्रो लोगों' के लिए एक अधिनियम पारित किया था जो उनकी दासता की समाप्ति के लिए था। जबकि अश्वेतों के पहले नेता बूकर वाशिंगटन ने अश्वेतों की मौजूदा सामाजिक व्यवस्था में ही प्रगति करने की सलाह दी।"[370] अब यहाँ पर महात्मा गाँधी और डॉ. अम्बेडकर के विचार अत्यंत विचारणीय है। वह इसलिए कि महात्मा गाँधी भी 'हिन्दू धर्म' में रहकर ही दलितों का सुधार करना चाहते थे, जबकि डॉ. अम्बेडकर ने उनसे भिन्न मार्ग को अपनाया था।

श्वेत और अश्वेत के बीच असमानता और भेदभाव के इतिहास को इस प्रकार समझ सकते हैं कि "अमेरिका में ब्लैक पैंथर का महत्त्वपूर्ण इतिहास रहा है। ब्लैक पावर लिटरेचर- इन सबके पैंथर से रिश्ते रहे हैं। 1955 में मोण्टोगोमेरी (अल्बामा राज्य) में डॉ. मार्टिन लूथर किंग ने एक अश्वेत अहिंसावादी आन्दोलन छेड़ा। एटलांटा, जार्जिया में जो बसे चलती थीं उनमें गोरे आगे बैठते थे काले समुदाय के यात्री पीछे।"[371] इस प्रकार यह कह सकते हैं कि भारत में जो स्थिति दलितों की थी वही स्थिति अमेरिका में नीग्रो की थी।

भारत में दलितों के लिए गाँव में अलग बस्ती और आने-जाने के मार्ग के अतिरिक्त शिक्षा, न्याय आदि अनेक प्रतिबन्ध रहे हैं। फिर भी इन दोनों के बीच काफी अंतर रहा है जिसका उल्लेख शरण कुमार लिम्बाले ने इस प्रकार किया है-

---

[370] अजय कुमार, दलित पैंथर आन्दोलन, पृष्ठ संख्या-31

[371] मोहनदास नैमिशराय, भारतीय दलित आन्दोलन का इतिहास-4 पृष्ठ संख्या-400

"1. नीग्रो पैसा देकर अपनी स्वाधीनता खरीद सकते हैं, पर दलितों को पैसे देकर किराए का घर भी नहीं मिलता।

2. नीग्रो श्रम के काम करते हैं पर उनका श्रम अप्रतिष्ठित नहीं माना जाता। दलित हीन दर्जे का काम करते हैं, और उनका श्रम अप्रतिष्ठित माना जाता है।

3. नीग्रो गुलाम हैं, पर अस्पृश्य गुलाम नहीं। नीग्रो की नीलामी होती है। लेकिन अस्पृश्यों की नीलामी नहीं होती।

4. नीग्रो गुलामों को सँभालना श्वेत मालिक की जिम्मेदारी होती है।

5. अस्पृश्य गुलाम न होने के कारण सवर्ण उनकी चिंता नही करते। अस्पृश्य सार्वजनिक गुलाम हैं।

6. नीग्रो की गुलामी का कारण आर्थिक है। दलितों की अस्पृश्यता का कारण सामाजिक है।

7. नीग्रो अपना रंग छिपा नहीं सकते। अस्पृश्य जाति छिपा सकते हैं।

8. नीग्रो का राष्ट्र अलग है। उन्हें अफ्रीका से लाया गया है। दलित भारतीय ही है।"[372] जिस प्रकार भारत में जातिगत भेदभाव और उत्पीड़न की समस्या आज तक विद्यमान है उसी प्रकार अमेरिका जैसे पूंजीवादी विकसित देश में नस्लीय समस्या विद्यमान है। जिसका उदाहरण है, जार्ज फ्लायड की मौत का वीडियो जिसे पूरी दुनिया ने देखा है। "एक गोरा पुलिस अधिकारी जॉर्ज फ़्लॉयड नाम के एक निहत्थे काले व्यक्ति की गर्दन पर घुटना टेककर उसे दबाता दिखता है। इसके कुछ ही मिनटों बाद 46 साल के जॉर्ज फ़्लॉयड की मौत हो गई। वीडियो में देखा जा सकता है कि जॉर्ज और उनके आसपास खड़े लोग पुलिस अधिकारी से उन्हें छोड़ने की

[372] शरण कुमार लिम्बाले, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र , पृष्ठ संख्या-89

मिन्नतें कर रहे हैं। पुलिस अधिकारी के घुटने के नीचे दबे जॉर्ज बार-बार कह रहे हैं कि "प्लीज़, आई कान्ट ब्रीद (मैं सांस नहीं ले पा रहा)"। यही उनके आख़िरी शब्द बन गए।"[373]

इस प्रकार की घटनाएँ बताती हैं कि भारत के दलितों का रिश्ता दुनिया के उन शोषित देशों से भी रहा है, जिन्हें रंग और नस्लभेद के कारण शोषित किया जाता है। यहीं कारण है कि 'ब्लैक अमेरिकी' समाज चाहे जितना भिन्न रहा य उनके शोषण के तरीके भी भिन्न रहे हो उनका प्रभाव भारत में पड़ा है। जिसका परिणाम है भारत में 'दलित पैंथर' की स्थापना। जातिभेद और नस्ल भेद को समझने में 'Isabel Wilkerson' की पुस्तक 'caste the origins of our discontents' में देख सकते हैं कि "जाति और नस्ल न तो एक समान अर्थ वाले शब्द हैं और न ही एक-दूसरे से जुदा हैं। वे समान संस्कृति में साथ-साथ बने रह सकते हैं और एक-दूसरे को मज़बूती देने का काम भी कर सकते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका की नस्ल दरअसल जाति की अदृश्य ताक़त का दृश्य एजेंट है। जाति हड्डियों से बनी है, नस्ल चमड़ी से बनी है।"[374]

5.4.3.3 दलित पैंथर

आजादी के बाद दलितों के ऊपर बढ़ रहे अन्याय एवं अत्याचार के खिलाफ 1980 के दशक में अमेरिकी 'ब्लैक पैंथर' के समान यहाँ 'दलित पैंथर' आन्दोलन का उदय हुआ। इस आन्दोलन ने बहुत ही तेजी से अपनी पहचान स्थापित की थी। जिसे स्थापित करने वाले सदस्य इस प्रकार हैं। "दलित पैंथर एक सामाजिक-राजनीतिक संगठन है जो दलितों का प्रतिनिधित्व करने तथा दलितों और पिछड़ों में प्रबोधन लाने के उद्देश्य से स्थापित हुआ।

[373] विनीत खरे, अमरीका: जॉर्ज फ्लॉयड की मौत के बाद काले-गोरे पर सियासत गर्म, https:// www.bbc.com/ hindi/ international, 30 मई 2020

[374] hindi.newsclick.in/isabel-wilkerson-book-america-cast, लम्बे समय से क़ायम अमेरिका की जाति व्यवस्था पर इसाबेल विल्करसन का लेख, योगेश एस. 26 Aug 2020

दलित पैंथर की स्थापना नामदेव ढसाल एवं जे. वी. पवार द्वारा 21 मई सन 1972 में मुंबई, महाराष्ट्र में की गयी थी, जिसने बाद में एक बड़े आंदोलन का रूप ले लिया। नामदेव ढसाल, राजा ढाले व अरुण कांबले इसके आरंभिक व प्रमुख नेताओं में हैं।"[375] यह आन्दोलन जिस उदेश्य से स्थापित हुआ, उसे पूर्ण किए बिना ही बिखर गया। इस विषय में कँवल भारती ने लिखा है कि "दलित पैंथर' अस्सी के दशक का वह क्रांतिकारी आन्दोलन था, जिसने महाराष्ट्र के दलितों को ही नहीं, बल्कि वहां की राजनीति को भी प्रभावित किया था। इसी दलित पैंथर के गर्भ से मराठी दलित साहित्य का जन्म हुआ था। इससे पहले दलित शब्द का अस्तित्व तो था, पर वह प्रचलन में नहीं आया था। इस क्रांतिकारी संगठन का निर्माण 29 मई 1972 को हुआ था। किन्तु इसने लम्बी उमर नहीं पाई और पांच साल बाद 7 मार्च 1977 को ही उसे भंग कर दिया गया।"[376] जिसने दलित साहित्य के लिए नया मार्ग प्रशस्त किया युवाओं में नयी ऊर्जा का संचार किया उस आन्दोलन का इतना जल्दी बिखर जाना समाज की बहुत बड़ी क्षति है। किन्तु इस आन्दोलन ने अपने कम समय में कई महत्त्वपूर्ण कार्य किये। मित्र, शत्रु और दलितों के सामने जीवन के लिए ज्वलंत प्रश्नों की पड़ताल की "**हमारे मित्र कौन हैं?-** 1.जो क्रांतिकारी पार्टियाँ जाति-व्यवस्था तथा वर्ग शासन को तोड़ने के लिए सच्चे अर्थ में वामपक्ष हैं।

2. समाज के अन्य भाग जो आर्थिक तथा राजनीतिक अत्याचार के कारण पीड़ित हैं।

हमारे शत्रु कौन हैं?-1. शक्ति, धन, मूल्य (कीमत) 2. जमींदारी, पूंजीपति, साहूकार तथा चमचे या चापलूस। 3. वे पार्टियां जो धार्मिक या जातीय राजनीति की तृप्ति में लगी हैं तथा सरकार जो इन पर निर्भर हैं।

---

[375] https://hi. wikipedia.org/wiki/ दलित पैंथर, अंतिम परिवर्तन 21:36, 18 जनवरी 2021

[376] कँवल भारती, एक ज़रूरी किताब जो बताती है दलित पैंथर का दस्तावेज़ी इतिहास ! http://www. Mediavigil. com/dalit painthar , 28 दिसम्बर 2017

आज दलितों के सामने ज्वलंत प्रश्न-1. रोटी, कपड़ा और मकान (आवास) 2. रोजगार, भूमि, अस्पृश्यता (का अंत) 3. सामाजिक एवं शारीरिक अन्याय इत्यादि ।"[377] जिस प्रकार यह आन्दोलन कार्य कर रहा था अगर एक दो दशक एकजुट होकर कार्य कर लेता तो वास्तव में समाज का नक्सा कुछ और ही होता । परन्तु जिस सामंतवादी और पूँजीवादी ताकतों से लड़ने के लिए इसका जन्म हुआ था, उसे दरकिनार कर ये लोग आपस में ही लड़-झगड़कर बिखर गए, यही स्वार्थी रवैया इसके लिए घातक सिद्ध हुआ । "जे.वी. पवार लिखते हैं कि दलित पैंथर का जन्म अन्याय और अत्याचारों को रोकने के लिए हुआ था, परन्तु इस नई प्रवृत्ति के कारण दलित पैंथर के कुछ तालुका और जिला अध्यक्ष खुद भी दलितों के साथ अन्याय करने लगे थे । पहले दलित पैंथर जमीन हथियाने के मामलों में हस्तक्षेप करके जिसकी जमीन होती थी, उसे वापिस कराते थे । किन्तु अब वे उन जमीनों की सौदेबाजी में लिप्त होने लगे थे । पहले वे झुग्गियों में जाकर पीड़ित लोगों को सुरक्षा प्रदान करते थे, परन्तु अब कुछ दलित पैंथर झुग्गियों के ही मालिक हो गये थे, और नई झुग्गियों को बनाकर उन्हें बेचने का काम करने लगे थे । इन सब को देखकर पवार और उनके साथियों को लगने लगा था कि दलित पैंथर की जो छवि पीड़ितों के रक्षक की बनी थी, वह बदल रही थी । बात यहाँ बढ़ गई थी दलित पैंथर के कुछ सदस्यों ने शराब तस्करों से जबरन वसूली भी करनी शुरू कर दी थी और खुद ही ऐसे ही अवैध धंधों में लिप्त हो गये थे । इस तरह की गतिविधियों से आम आदमी ने दलित पैंथर के खिलाफ बोलना शुरू कर दिया था ।"[378] बहुत सारी असहमतियों के बावजूद इस आन्दोलन की अनेक उपलब्धियाँ रही है । जिसका प्रभाव साहित्य और समाज पर गंभीरता पूर्वक पड़ा है । "साहित्य के क्षेत्र में (विशेषत: कविताओं में) आन्दोलन में जान डालने के लिए एक नए प्रकार का प्रेरक साहित्य लिखा । शायद दलित पैंथरों की सभी उपलब्धियां इन साहित्यक जोशिली कविताओं की ही देन थी । जैसे कि 'विद्रोह' एक ऐसी

---

[377] अजय कुमार, दलित पैंथर आन्दोलन, पृष्ठ-संख्या-87

पत्रिका थी जो यह दावा करती थी कि "यह उन व्यक्तियों के लिए है जो साहित्य के बाहर सशस्त्र विद्रोह शुरू करना चाहते हैं।"[379]

5.4.3.4 बामसेफ

बामसेफ, BAMCEF (बैकवर्ड एंड माइनॉरिटीज़ एमप्लाइज़ कम्यूनिटीज़ फेडरेशन) की स्थापना 1973 में मान्यवर कांशीराम और डी. के. खरपडे ने की थी । यह संगठन अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ी जातियों तथा धर्मान्तरित अल्पसंख्यक समाजों के सरकारी कर्मचारियों का संगठन है जो समाज में उपेक्षित-पीड़ित जातियों को एकजुट करने में लगा हुआ है । यह संगठन देश का एकमात्र ग़ैर राजनीतिक, ग़ैर अनुशासनात्मक एवं ग़ैर धार्मिक संगठन है जो समाज हित में कार्यरत है । "आजकल यह संगठन 'मूलनिवासी बहुजन संघ' के नाम से जाना जाता है। बीच में कमज़ोर पड गई बामसेफ को बाबासाहब अम्बेडकर के जन्म दिन 14 अप्रैल को सन् 1978 में पुनः सशक्त बनाने का प्रयास किया गया। बामसेफ से कांशीराम ने दिल्ली, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश में दलित कर्मचारियों का संगठन मजबूत बनाया। इसके पश्चात 6 दिसम्बर को डीएस 4 की स्थापना की। कांशीराम ने नारा दिया 'ठाकुर, ब्राह्मण, बनिया छोड़, बाकी सब हैं डी एस 4' । इसी क्रम में सन 1984 में बहुजन समाज पार्टी की स्थापना की गई।"[380] यह संगठन महात्मा फुले एवं बाबा साहब अम्बेडकर के विचारों का पालन करते हुए समाज के शिक्षित वर्ग को जगाने का कार्य करता है। इनका मानना है कि शिक्षित वर्ग समाज का महत्त्वपूर्ण वर्ग होता है। संगठन सुचारू रूप से चल सके और समाज का विकास हो सके, इसलिए इसका लक्ष्य निर्धारित होता है। जिसको निम्न रूप से समझ सकते हैं-

---

[379] अजय कुमार, दलित पैंथर आन्दोलन, पृष्ठ संख्या-114

[380] https:// hi.wikipedia.org /wiki /बामसेफ, अंतिम परिवर्तन 17: 49, 14 नवंबर 2020

1-"बुद्धिजीवी वर्ग में सामाजिक ऋण से मुक्त होने की भावना का निर्माण करना।

2-मूलनिवासी बहुजन समाज (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़े वर्ग और इन्हीं से धर्मपरिवर्तित (अल्पसंख्यक) की गैर राजनीतिक जड़ों को लगाना और उन्हें मजबूत करना।

3-लक्ष्यभेदी और लक्ष्यप्रेरित जागृति का निर्माण करना।

4-राष्ट्रपिता जोतीराव फुले, पेरियार ई. वी. रामास्वामी एवं बाबा साहब डॉ.अम्बेडकर के विचारों का व्यापक प्रचार-प्रसार करना।

5-ब्राह्मणवादी समाज व्यवस्था से कम या अधिक पीड़ित लगभग 6000 जातियों में जागृति लाकर उनमें भाईचारा पैदा करना और इन जातियों को आपस में जोड़कर ध्रुवीकरण करना।

6-मूलनिवासी बहुजन समाज का आन्दोलन आत्मनिर्भर बनाने के लिए इनसे ही बुद्धि, पैसा और हुनर का निर्माण

7-नेतृत्वहीन समाज में कर्तव्यनिष्ठ एवं ईमानदार नेतृत्त्व का निर्माण करना और उनकी बेहतर व्यवस्था करना।

8-दिशाहीन समाज को सम्मान जनक एवं कल्याणकारी दिशा देना।

9-उदेश्य, विचारधारा, मूल्यों एवं सिद्धांतों के प्रति समर्पित पूर्णकालिक कार्यकर्ताओं का निर्माण करना और उन्हें विचार परिवर्तन के कार्य में लगाना।

10-ऐतिहासिक मूल्य का शोधपरक साहित्य तैयार करना और इसे मूलनिवासी बहुजन समाज के जन-जन तक पहुँचाना।"[381]

[381] बामसेफ परिचय, बामसेफ केन्द्रीय कार्यकारिणी द्वारा, डी. के. मेमोरियल ट्रस्ट के माध्यम से प्रकाशित, पृष्ठ संख्या-15

5.4.3.5 भीम आर्मी

दलित उत्पीड़न और अन्याय के खिलाफ अभी हाल ही में एक और अम्बेडकरवादी संगठन का उदय हुआ है, जिसका नाम 'भीम आर्मी' है। इसकी स्थापना सन् 2015 में हुई और इसके संस्थापक सदस्यों के नाम इस प्रकार हैं, सतीश कुमार, विजय रतन सिंह और चन्द्र शेखर आजाद। "भीम आर्मी भारत एकता मिशन भारत में एक बहुजन सामाजिक संगठन है। भीम आर्मी की लड़ाई धन-संपत्ति या शक्ति के लिए नहीं बल्कि स्वतंत्रता के लिए है मानवीय गरिमा में सुधार के लिए हैं।"[382] यह संगठन सबसे ज्यादा चर्चा में 'शब्बीर पुर में हुए दलित और ठाकुर विवाद से आया था। इस सन्दर्भ में जुबैर अहमद ने लिखा है कि "इस महीने के शुरू में दलित-ठाकुर हिंसा से पहले भीम आर्मी का शायद ही किसी ने नाम सुना हो। यहाँ के स्थानीय पत्रकारों ने भी मुझसे ज़ोर देकर कहा कि उन्होंने न तो भीम आर्मी और न ही इसके संस्थापक चंद्रशेखर आज़ाद का नाम इस महीने से पहले कभी सुना था। पांच मई को एक धार्मिक जुलूस को लेकर सहारनपुर के शब्बीरपुर गांव में ठाकुरों और दलितों में झड़पें हुईं। इस हिंसा में दलितों के 50 से अधिक घर जला दिए गए और एक ठाकुर युवक मारा गया।"[383] तब से लेकर यह संगठन लगातार कार्यरत है एवं लगभग सात राज्यों में यह सक्रिय होकर दलित उत्पीड़न और शोषण का पुरजोर विरोध लोकतांत्रिक तरीके से कर रहा है। साथ उत्पीड़ित दलित समाज में जागरूकता के प्रसार के लिए उन्हें शिक्षित और संगठित भी कर रहा है।

[382] https://hi.wikipedia.org/ भीम आर्मी, अंतिम परिवर्तन 10:31, 6 दिसम्बर 2020, Access date 21/1/2021

[383] https://www.bbc.com/hindi/india, ग्राउंड रिपोर्ट-4: किससे लड़ रही है आजाद की भीम आर्मी, जुबैर अहमद, 30/5/2017

निष्कर्ष

दलित साहित्य ने साहित्य को नया मोड़ दिया जो समाज सदियों से झूठ और काल्पनिक दुनिया में डूबा रहा । उससे इतर दलित साहित्य पहले समाज में व्याप्त जातिवाद, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक असमानता के यथार्थ को समाज सम्मुख लाता और फिर लोकतांत्रिक समाज का समर्थन करते हुए नए समाज का निर्माण करता है। परन्तु दलित साहित्यकार जहाँ समाज को जातिमुक्त बनाना चाहता है । वहाँ वह भी कई उप-जातियों में बँटा है, जिससे दलित आन्दोलन कमजोर होता है । उदाहरण के लिए श्यौराज सिंह 'बेचैन' का कविता-संग्रह 'चमार की चाय' ।

जिस प्रकार समाज में व्याप्त जातिवाद और पाखंड का विरोध दलित कविताओं में दिखाई देता है, उतना ही तीव्र विरोध आर्थिक-शोषण को लेकर दिखाई देता है । परन्तु इस विषय में और गंभीरता से सोचने की जरूरत है क्योंकि दलित समाज ने आर्थिक अभाव में 'गोबरहा' अनाज खाकर जीवन यापन किया है । धर्म के विषय में यही कहा जा सकता है कि ब्राह्मणवादी समाज ने इसका इस्तेमाल दलित शोषण के लिए अधिक किया है । इसलिए इससे धर्म-मुक्त समाज की कल्पना दलित समाज करता है ।

दलित समाज में पिछड़ेपन का एक कारण यह भी है कि वह व्यक्ति जो समाज को बड़े-बड़े सपने दिखाकर राजनीतिक ताकत हासिल करता है वह भी स्वार्थ में डूब जाता है। अंततः यही कहा जा सकता है अनेक सहमतियों और असहमतियों के बावजूद दलित साहित्य का भविष्य उज्जवल है क्योंकि इसने समाज और साहित्य को नई दिशा प्रदान की है ।

उपसंहार

दलित कविता शोषण से उत्पन्न 'दलित जीवन की गाथा' है, जिसे भुक्तभोगी सृजनकर्ता कविता के माध्यम से अभियक्त करते हैं। दलित रचनाकारों की कविताओं का मूल उद्देश्य विषमतावादी समाज के तिलिस्म को तोड़कर लोकतांत्रिक समाज की स्थापना करना है। इसलिए इनकी रचनाओं में परम्परागत धर्म, जाति, ब्राह्मणवाद और पूँजीवाद का प्रतिरोध दिखाई देता है जो अचानक उत्पन्न नहीं हुआ, बल्कि इसके पीछे, दलित शोषण का लम्बा इतिहास है। परम्परागत ब्राह्मणवादी समाज ने श्रेष्ठता और शुद्धता के चक्कर में ऐसा कुचक्र रचा कि मनुष्य-मनुष्य के बीच भेद उत्पन्न हो गया और वह कालांतर में वर्ण, जाति, वर्ग आदि में बँटकर लड़ता रहा। वर्ण-व्यवस्था और जाति व्यवस्था के चलते मनुष्य का एक वर्ग चाण्डाल, अस्पृश्य, अछूत, हरिजन एवं आज का दलित बना, इसलिए इस जाति व्यवस्था के ध्वस्त हुए बिना एक 'राष्ट्र का निर्माण' की कल्पना व्यर्थ है।

हिंदी साहित्य में दलितों की समस्या जैसे अस्पृश्यता, छुआछूत , ऊँच-नीच को लेकर बहुत पहले से लेखन हो रहा है। इसे हम हिंदी साहित्य में आदिकाल से आधुनिक काल तक देख सकते हैं। संत साहित्य के अंतर्गत तो कई संत ऐसे थे जो निम्न जाति से सम्बंधित थे और समाज को स्पष्ट सन्देश दे रहे थे कि-

वामन मत पूजिये, जऊ होवे गुन हीन,

पूजहिं चरण चांडाल के, जऊ होवे गुन प्रवीन। (संत रविदास)

इस क्रम में रीतिकाल एक ऐसा काल है। जिसमें समान्य मानव की समस्या लगभग गायब रही तो इस काल में दलित समस्या की पड़ताल करना व्यर्थ है।

आधुनिक काल में भारतेंदु हरिश्चंद और बदरी नारायण भट्ट एवं द्विवेदी युग में मैथिलीशरण गुप्त, सियाराम शरण गुप्त अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' इत्यादि रचनाकारों ने दलित समस्या पर लिखा है। इतना ही नहीं बल्कि छायावादी युग में पन्त और निराला एवं प्रगतिवादी युग में प्रगतिशील कवियों ने समाज में व्याप्त सामाजिक असमानताओं का चित्रण अपने कविताओं में किया, जिसमें प्रमुखता से त्रिलोचन, नागार्जुन, मुक्तिबोध आदि ने शोषित-वर्ग की आवाज उठाई हैं। परन्तु साठ के दशक के बाद दलितों द्वारा लिखित दलित कविता में जो चेतना और प्रतिरोध दिखाई देता है, वह उसके पूर्व किसी काल में नहीं। जबकि दलित समाज में व्याप्त असमानता और उत्पीड़न के चित्रण को ध्यान में रखते हुए इसे हम निम्न चरणों में बाँटकर देख सकते हैं। इसका प्रथम चरण आदिकाल और संत साहित्य का है, दूसरा आधुनिकाल हीराडोम और अछूतानन्द, तीसरा 1960 का समय जिसे कुछ आलोचकों ने 'अछूतानन्द युग' कहा है तथा इस क्रम में चौथा चरण 1990 है, जिसे दलित कविता और दलित चेतना का युग कह सकते हैं जो पूर्णत: 'अम्बेडकर' के विचारों से प्रेरित है।

बीसवीं शताब्दी के आठवें और नवें दशक से लेकर अब जो भी दलित कविता, दलितों द्वारा लिखी गई वह परम्परागत बंधनों को तोड़कर दलित जीवन के यथार्थ से जुड़ी है। इसमें न किसी प्रकार का शास्त्र का बंधन है न किसी प्रकार के मिथकीय कल्पना का चित्रण है, बल्कि इसमें समाज के सबसे निचले व्यक्ति की आवाज सुनाई देती है। जिसका केन्द्रीय आधार बिन्दु महात्मा गौतम बुद्ध, महात्मा फुले, डॉ. अम्बेडकर के विचारों का अनु पालन है। इन महापुरूषों के जीवन-दर्शन को आधार बनाकर वर्तमान में अनगिनत दलित रचनाकार, दलित चेतना को जाग्रत कर लिख रहे हैं। जिनमें से कुछ प्रमुख कवि स्वा.ओमप्रकाश वाल्मीकि, स्वा. मलखान सिंह, जयप्रकाश कर्दम, श्यौराज सिंह बेचैन, कँवल भारती, मोहनदास नैमीशराय, दलित कवयित्री सुशीला टाकभौरे,

स्वर्गीया रजनी तिलक, रजत रानी ‘मीनू’, कावेरी, नरेश कुमारी इत्यादि हैं जिनकी कविताएं अपने हक और अधिकार के प्रति दलित समाज को सचेत कर रही हैं।

हिंदी के दलित साहित्य के अध्येता ‘वर्ग’ का एक पाठ यह है कि दलित आलोचना वहीं से शुरू होती है, जहाँ से बुद्ध ने वर्णवादी व्यवस्था का खंडन किया, जिसमें कुछ नाम डॉ. तुलसीराम, तेज सिंह, अनिता भारती इत्यादि। परन्तु आधुनिक समय में इसकी शुरूआत कुछ निबंध और लेखों द्वारा होती है। डॉ. एन. सिंह की पुस्तक ‘दलित साहित्य के विविध आयाम’ पहली पुस्तक मानी जाती है, जिसमें लिखे लेखों से दलित कविता-आलोचना की शुरूआत होती है। अब तक इस क्षेत्र में दर्जनों पुस्तक आ चुकी है, जिससे दलित साहित्य के यथार्थ तक पहुंचा जा सकता है। माताप्रसाद की पुस्तक ‘हिंदी काव्य में दलित काव्यधारा’, डॉ. एन. सिंह, ‘दलित साहित्य चिंतन के विविध आयाम’, और ‘दलित साहित्य के प्रतिमान, कँवल भारती, ‘दलित कविता का संघर्ष’, और ‘दलित विमर्श की भूमिका’, ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, आदि पुस्तकों में दलित साहित्य की उत्पत्ति, सिद्धांत, दर्शन, विचारधारा और उसकी आवश्यकता एवं उसकी उपयोगिता को समझा जा सकता है।

दलित-समीक्षा यह आग्रह करती है कि दलित साहित्य की समीक्षा करने से पहले समीक्षक खुद दलित दंश की भावभूमि पर अवतरित हों तभी वह कृति के साथ न्याय कर सकेगा। वर्ना दलित वेदना उसे ‘बैठे ठाले का रोना लगेगा’। इस सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि हिंदी कविता का प्रतिमान और दलित कविता के प्रतिमान में जमीन-आसमान का अंतर है। हिंदी कविता का प्रतिमान परम्परागत संस्कृत साहित्य से प्रभावित रहा है। जबकि दलित कविता में स्वतंत्र प्रतिमानों को आविष्कृत किया गया है। दलित-कवि भी अज्ञेय की तरह ‘राहों के अन्वेषी’ हैं। उसके बिम्ब, प्रतीक और मिथकों में गरीबी, शोषण और उत्पीड़न का बिम्ब बनता है। प्रतीक के रूप में शम्बूक, एकलव्य,

कर्ण, झलकारी बाई, उदादेवी पासी, फूलन देवी आदि को नायक बनाया गया है। जबकि राम, कृष्ण, द्रोणाचार्य और अन्य पौराणिक पात्रों को प्रतिनायक के रूप में दिखाया गया है।

दलित साहित्य में 'नौ' रसों की संख्या का अभाव है किन्तु कुछ रस विषयक लेखों में 'क्रांति, आक्रोश, 'विद्रोह' नामक रसों पर अपर्याप्त बहस मिलती है। छन्द के रूप में स्वामी-अछूतानन्द हरिहर ने 'गजल', माताप्रसाद ने 'कवित्त छन्द', रघुनाथ प्यासा ने 'नवगीत विधा' आदि रूपों को चुना है। मुक्त छन्द में रचनाएँ करने वाले कवियों में मोहनदास नैमिशराय, जयप्रकाश कर्दम, ओमप्रकाश वाल्मीकि, सी.बी. भारती, चन्द्र कुमार वरठे, पुरूषोत्तम सत्यप्रेमी, सूरजपाल चौहान, श्यौराज सिंह 'बेचैन' आदि के नाम लिए जा सकते हैं। दलित कविता में रस, छंद की अनिवार्यता पर कहीं पर बल नहीं दिया गया है।

दलित कविता ने नयी-नयी बहसों को जन्म दिया है। उसकी पृष्ठभूमि प्राचीन है; वर्ण, जाति, ऊँच-नीच में विभाजित समाज इसके मूल में है। वैदिक-काल एवं स्मृति-काल की वर्ण-व्यवस्था और जाति व्यवस्था से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। वर्ण-व्यवस्था से शूद्र, जातियों, उपजातियों का विकास होता रहा, फिर इनको 'चाण्डाल', 'अस्पृश्य', 'अछूत', 'हरिजन' आदि अनेक नामों से पुकारा जाता रहा और मानवीय सुविधाओं से वंचित रखा गया। इस दर्दनाक व्यवस्था के निवारण के लिए बुद्ध, सिद्ध, नाथ, संत-साहित्य से लेकर आधुनिक काल में डॉ. अम्बेडकर ने भी भरसक प्रयास किया। परन्तु यह अब तक हू-ब-हू यह बनी हुई है, इसलिए अभी तक इससे संघर्ष जारी है।

समकालीन दलित कविता अम्बेडकरवाद से प्रेरित है और इन कविताओं ने जहाँ परम्परागत कविताओं के मायने बदले हैं, वहीं आलोचना के मायने को भी बदल दिया

है। इस कविता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि आज यह भारत के कई भाषाओं में अनूदित होकर जन-चेतना का संचार कर रही है । हिंदी के अतिरिक्त मराठी, तेलुगु, पंजाबी, उड़िया, बंगला, असमी, गुजराती, भोजपुरी, मलयालम आदि में प्रचुर संख्या में लिखी जा रही है ।

वैचारिकी दृष्टि से हिंदी साहित्य के विकास में संस्कृत साहित्य का प्रभाव रहा है। संस्कृत साहित्य में काव्य के विकास का आधार वेद-पुराण, इतिहास और धर्मशास्त्र रहा है । जिसके स्वनिर्मित लक्षण और सिद्धांत हैं । संस्कृत से प्रभावित होकर हिंदी काव्य की वैचारिकी विकसित हुई है । परन्तु कालान्तर में परम्परागत सिद्धांतों में परिवर्तन हुआ है । हिंदी साहित्य के अंतर्गत आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल तक, कभी भी प्रवृत्ति याँ एक समान नहीं रही हैं ।

जिस काव्य-लक्षण को कविता का प्रमुख भाग माना जाता था । उसके विषय में यह कहा जाने लगा कि 'मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है' । उत्तर आधुनिक काल ने तो मनुष्य, ईश्वर, स्त्री-पुरूष के सम्बन्ध को ही बदल दिया था । इस दौर में भावुकता की जगह को बौद्धिकता और तार्किकता ने ले लिया था । उत्तर आधुनिकता ने निम्नलिखित घोषणाएँ की हैं जो ल्योतार की विकेन्द्रित सोच के प्रभाव का परिणाम है- 1.विचारधारा का अंत 2. ईश्वर का अंत 3.मानव का अंत 4.इतिहास का अंत 5. साहित्य, साहित्यकार, आलोचना की मृत्यु ।

परन्तु इसी दौर में 1980 में दलित साहित्य का उदय होता है । जिसमें कई विचारधाराओं का मिश्रण दिखाई पड़ता है या यह कहें की यह साहित्य विचारधारा के आधार पर ही इतना मजबूत स्तंभ स्थापित कर सका । वैसे तो उत्पीड़न शोषण और नई-नई प्रवृत्तियों का अन्वेषण तो छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, आदि काव्यान्दोलनों ने किया है । परन्तु दलित साहित्य की विचारधारा परम्परा से भिन्न है । इस साहित्य ने उस

विचारधारा को ग्रहण किया जिसमें स्वत्रंत चिंतन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और तार्किकता की भावना प्रबल है। अन्धविश्वास, पाखंड और ब्राह्मणवाद का खात्मा जिनका मुख्य उद्देश्य है। इस दृष्टि में दलित साहित्य महात्मा बुद्ध. मक्खलि गोसाल, आजीवक दर्शन, सिद्ध-नाथ और संत साहित्य के समीप है। महात्मा बुद्ध जिन्होंने सबसे पहले जाति प्रथा का विरोध कर मनुष्य को उसके वास्तविकता से परिचित कराते हुए कहा कि किसी बात को तर्क की कसौटी पर कसकर विश्वास करो। महात्मा बुद्ध के ही समकालीन 'चार्वाक दर्शन' था जिसने वेदों के भीतर लिखी सारी चीजें नकारी और वेदों से कुछ ज्ञान नहीं मिलेगा, ऐसी उसकी निन्दा की है। 'भूतान निधनं निष्ठा स्रोतसामिव सागर' मृत्यु ही देह का अंत है। यही देहात्मवाद असुर राज विरोचन के भीतर भी देख सकते हैं।

आगे चलकर परम्परा वर्णवादी व्यवस्था का खण्डन करने वाले सिद्धों और नाथों ने दलित समाज के अन्दर चेतना का संचार किया। हालाँकि संत साहित्य सगुन-निर्गुण में फँसा रहा लेकिन 'निर्गुणवाद' उनकी नवीन खोज थी जिसके बल पर उन्होंने एक बहुत बड़े वर्ग को संभाला था। जिसे दलित साहित्य के बहुत समीप माना जाता है। दलित साहित्य के विकास में मार्क्सवाद का भी प्रभाव दिखाई देता है, परन्तु भारतीय मार्क्सवाद 'जातिवादी' मानसिकता से ग्रसित इसलिए वह दलितों के लिए बड़ा आन्दोलन नहीं खड़ा कर सका। भारत विविध जातियों और समुदायों वाला देश है, इसलिए दलित साहित्य के लिए अम्बेडकरवाद ही 'मुक्ति' का साधन है।

इसके अतिरिक्त अनेक संगठनों और आंदोलनों ने दलित साहित्य को मजबूत करने में भूमिका निभाई। भारतीय बौद्ध सभा, ब्लैक पैंथर, दलित पैंथर आदि का विशेष प्रभाव पड़ा है। भारतीय बौद्ध महासभा से दलित साहित्य निकला है इस विषय में शरण कुमार लिम्बाले ने लिखा है कि 'बाबा साहब अम्बेडकर से पहले दलित साहित्य प्रकाशित हो रहा था। हलाकि 14 अक्टूबर, 1956 को दलितों का धर्मान्तरण हुआ फिर

2 मार्च, 1958 को दलित लेखकों का पहला साहित्य सम्मेलन संपन्न हुआ। यहाँ यही ध्यान देने योग्य है कि इसे बौद्ध साहित्य की बजाय 'दलित साहित्य' नाम से संबोधित किया गया।'

दलित साहित्य मात्र साहित्य नहीं बल्कि 'एक आन्दोलन है' जो समता और स्वतंत्रता के लिए बाबा साहब डा. भीमराव अम्बेडकर के इस विचारों के साथ खड़ा होकर सामाजिक समानता के प्रतिबद्ध होकर उनके विचारों का अनुसरण करता है जो अनुभव के दंश पर निर्मित हुआ है।

अंतत: यही कहा जा सकता है कि दलित साहित्य डॉ. अम्बेडकर के आदर्श लोक की स्थापना के लिए प्रतिबद्ध है। यह आदर्शलोक बहुत ही यथार्थवादी और व्यावहारिक था। यह न्याय का नगर था-इंसाफ का शहर-सांसारिक न्याय। उन्होंने एक प्रबुद्ध भारत की परिकल्पना की, जिसमें बौद्ध विचारों के साथ-साथ यूरोपीय ज्ञान के सर्वोत्तम विचारों को जोड़ा गया था। अपने जीवन के चार समाचार पत्र जो उन्होंने सम्पादित किए, आंबेडकर ने उनका नामकरण भी 'प्रबुद्ध भारत' नाम से किया था।

दलित साहित्य में दलित लेखन के विषय में गैर-दलित लेखकों की अनेक सहमतियों और असहमतियाँ के बावजूद यह कहा जा सकता है कि भुक्तभोगी द्वारा लिखा गया साहित्य ही प्रमाणिक साहित्य है। जिसको अन्तत: हिंदी के प्रमुख विद्वानों ने भी स्वीकृति दी है। जिनमें कुछ नाम इस प्रकार है, नामवर सिंह, मैनेजर पाण्डेय, राजेंद्र यादव, रमणिका गुप्ता इत्यादि।

दलित साहित्य के अंतर्गत लेखन के सवाल को भी गंभीरता से लिया जाता है कि इसका वास्तविक लेखक कौन है? इस विषय में यह स्पष्ट है कि लेखन, लेखक का व्यक्तिगत आजादी का मामला है। इसलिए वह जो चाहे वह लिख सकता है लेकिन अगर वह लेखक दलित साहित्य लिखेगा तो उसमें अम्बेडकरवादी मानदंड का होना

अनिवार्य है। जिसे न पालन करने वाला दलित समाज का लेखक भी दलित साहित्यकार के बाहर माना जायेगा। निराला और नागार्जुन, दलित संवेदना के करीब होते हुए भी केवल दलित संवेदना के कवि कहे जा सकते हैं न कि दलित चेतना का । वह इसलिए कि निराला और नागार्जुन अन्तत: वर्णवादी व्यवस्था के ही पोषक है। नागार्जुन की 'हरिजन गाथा' इसका सबसे बढ़िया उदाहरण है जिसमें रचनाकार दलित समाज को भाग्य, भगवान और वैदिक ऋचाओं में जोड़ता है, जिसका दलित साहित्य में कोई स्थान नहीं है। दलित साहित्यकार स्वानुभूति को व्यक्त करता है तो उसके पीछे उसकी मनसा सामाजिक परिवर्तन करते हुए लोकतांत्रिक समाज की स्थापना करना है न कि दया और सहानुभूति के प्राप्त करना।

हिंदी दलित साहित्य के विकास में इन आलोचकों का विशेष योगदान है, वह इसलिए भी कि इन्होंने दलित साहित्य को नई दृष्टि प्रदान करते हुए इसके मार्ग सरल किया है। माताप्रसाद दलित साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। हिंदी दलित साहित्य के विकास में उनका विशेष योगदान है। हिंदी दलित कविता के आलोचना के क्षेत्र में उनके द्वारा लिखी गयी पुस्तक 'हिंदी काव्य में दलित काव्यधारा' में उन्होंने वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक दलित कविताओं का विवरण प्रस्तुत किया है। जिससे समय-समय पर हुए जातिवाद और पाखंडवाद के खिलाफ प्रतिरोध को समझा जा सकता है। इसको उन्होंने निम्न रूप में विभाजित किया है-सिद्ध और नाथ-योगियों द्वारा 'भेदभाव' का निवारण, सन्तों की वाणी में 'जाति-पाँति' की निंदा, आर्य समाज काव्यधारा में 'समता' का आमंत्रण, राष्ट्रीय आन्दोलन और गाँधीवाद से प्रभावित कवियों द्वारा 'अस्पृश्यता-विरोध, स्फुट कविताओं में दलितों की स्थिति इत्यादि। इस पुस्तक में दलित साहित्य के लिए उन्होंने कोई मानदंड तो स्थापित नहीं किया परन्तु हिंदी साहित्य में

सहानुभूति पूर्वक गैर-दलित कवियों का विवरण प्रस्तुत कर दलित साहित्य को विकसित किया है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने ‘दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र’ नामक पुस्तक में दलित जीवन और उनके अनुभव द्वारा समय-समय पर किये गये सामाजिक और साहित्यिक कार्यों का वर्णन किया है। जिसे ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने क्रमवार प्रस्तुत कर दलित साहित्य के विकास और उसके प्रभाव को स्पष्ट किया है। जिसमें दलित साहित्य की आवश्यकता क्यों पड़ी? इसके लिए अलग भाषा, सौन्दर्य का निर्माण क्यों हुआ है? आदि प्रश्नों का समाधान पाठक को मिल जाता है। साथ ही दलित लेखक और गैर-दलित लेखक के अनुभव भिन्न कैसे हैं? दलित साहित्य ने अम्बेडकरवाद, मार्क्सवाद, बौद्ध-दर्शन से किस प्रकार प्रेरणा ग्रहण कर समाज निर्माण में अपनी भूमिका को निभाया है।

कँवल भारती दलित साहित्य और दलित कविता आलोचना के क्रान्तिकारी आलोचक है। दलित कविता के विषय में इनका मानना है कि इसका इतिहास बहुत प्राचीन है। जिसे आप संत साहित्य से जोड़ ही नहीं सकते हैं बल्कि यह कह सकते हैं कि दलित साहित्य की जड़ संत साहित्य ही है। दलित साहित्य के अंतर्गत जब दलित कविता की खोजबीन आलोचकों के बीच जारी थी तब उन्होंने ‘दलित कविता का संघर्ष’ नामक पुस्तक लिखकर सं. 1900ई० से लेकर सं 2000ई० तक के बीच लिखित 2000 काव्य- संकलनों को प्रस्तुत कर गैर-दलित आलोचकों का मुख बंद कर दिया जो लोग यह कहते थे दलित कविता का अपना कोई इतिहास नहीं है, यह मराठी की नक़ल है। दलित कविता का इतिहास लगभग सौ वर्ष पुराना है और जो दलित साहित्य को मराठी की कलम मानते हैं। उन लोगों ने अछूतानन्द ‘हरिहर’ केवालानन्द, मंगलदेव

विशारद, महाशय रूपचन्द, बिहारीलाल 'हरित' दुलारेलाल भार्गव आदि लोगों का नाम तक नहीं सुना है।

डॉ. एन. सिंह का मानना है कि दलित साहित्य की वकायदा शुरूआत बीसवीं शताब्दी के आठवें दशक में हुई थी। परन्तु दलित कविता और दलित चेतना के प्रथम संत कवि रविदास हैं। हालाँकि यह परम्परा बीच के वर्षों में सूख गयी थी लेकिन 19वीं सदी में फिर पुनर्जीवित हुई। जिसे बुद्ध, फुले और अम्बेडकर के विचारों ने पुष्ट कर नये मार्ग का निर्माण कर दिया। जिस पर चलकर दलित रचनाकार लोकतांत्रिक समाज का निर्माण कर रहे हैं।

तेजसिंह ने दलित साहित्य को उस शिखर तक पहुँचाने का कार्य किया है। जिसकी दलित समाज को सदियों से तलाश थी। मतलब उन्होंने दलित साहित्य, दलित कविता उसके मानदंड और विचारधारा को स्पष्ट करते हुए। अम्बेडकरवाद के साथ पूरे तार्किक विचारों के साथ सहमत होते हुए। उस महल का निर्माण किया है। जिसकी नींव अब बहुत मजबूत है। इनका मानना है कि पहला दलित जन-जागरण महात्मा बुद्ध के यहाँ हुआ था। परन्तु दलित चेतना का प्रथम कवि 'स्वामी अछूतानन्द' हैं क्योंकि हीराडोम भोजपुरी के कवि है और उनकी अन्य कोई रचना भी नहीं मिलती हैं।

डॉ. धर्मवीर के विषय में यह कहा जा सकता है कि अनेक विवादों के बावजूद भी उनका नाम दलित साहित्य से मिटाया नहीं जा सकता। यह स्पष्ट है कि लेखन के क्षेत्र में सबकी अपनी-अपनी आजादी होती है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। शायद इसी के बल पर उन्होंने कलम को हथियार बनाया है और दलित समाज के लिए 'दलित धर्म' की खोज कर डाली जिसका संघर्ष बुद्ध से भी था। डॉ. धर्मवीर ने ब्राह्मणवाद के लिए ब्राह्मणों को जिम्मेदार ठहराया। दलित समाज के स्वतंत्रता के लिए डॉ. अम्बेडकर के

विषय में भी लिखा है कि बाबा साहब का चिंतन बुद्ध धर्म में जाकर स्वत्रंत चिंतन नहीं उन्होंने विवेक, ज्ञान और तर्क के आधार पर हिंदी साहित्य को आलोचना के बल पर नई-नई दिशा प्रदान की है। दलित साहित्य के सृजन का आधार अनुभव जनित होता है। यह सामाजिक असमानता के खिलाफ सदियों से मुठभेड़ कर रहा है। परन्तु वर्णवादी व्यवस्था लगातार अपने नए-नए स्वरूपों में समाज को दिग्भ्रमित कर रही है। जबकि यह बात भी स्पष्ट है कि समाज में व्याप्त इस सामाजिक असमानता के खिलाफ बुद्ध, अश्वघोष, राहुल सांकृत्यायन आदि ने भी प्रयास किया। जिसका उल्लेख प्रसिद्ध दलित चिन्तक तुलसीराम ने इस प्रकार किया है कि 'रही बात दलित साहित्य के वैचारिक आधार की तो, मैं इसका स्रोत गौतम बुद्ध को मानता हूँ। बुद्ध पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने ढाई हजार पूर्व वर्ण-व्यवस्था पर जबरदस्त प्रहार किया श्रावस्ती के प्रवास के दौरान सुनीता नामक शोषित भंगी को संघ में शामिल करके नई चेतना का संचार किया।' लेकिन अंतत: यही कहा जा सकता है कि अनेक विवादों और आलोचनाओं के बादजूद डॉ. धर्मवीर की अपनी अलग पहचान है।

श्यौराज सिंह बेचैन, पत्रिका से अपनी पहचान बनाने वाले कवि हैं, लेखक और आलोचक 'श्यौराज सिंह बेचैन' का जीवन सघर्षो भरा रहा है। अपने शुरूआती दिनों में कम्युनिष्ट पार्टी के विचारों से प्रभावित रहे हैं। परन्तु कालांतर में अम्बेडकरवाद के प्रबल समर्थक हैं। इनके अनुसार दलित वहीं है जिसे भारतीय संविधान में जिन्हें 'अनुसूचित जाति' कहा जाता है और आधुनिक दलित साहित्य के जनक 'स्वामी अछूतानंद ' थे। श्यौराज सिंह बेचैन ने दलितों के एक ऐसे रचनाकार से पहचान करायी जो लोग अम्बेडकरवाद से नहीं ब्राह्मणवाद से प्रभावित थे। उन्होंने लिखा है कि 1950 के आस-पास दलितों में जो पीढ़ी अपनी थोड़ी बहुत पढ़ाई-लिखायी का उपयोग कर रही थी, यह कविता के साथ-साथ अपने नाम के साथ पंडित विशेषण जोड़कर ब्राह्मण जैसा दिखने

का प्रयास कर रहे थे । आगरा क्षेत्र में पंडित दौजीनाथ, पंडित प्यारे लाल और पंडित रत्नकुमार ने ब्राह्मणों की पंडिताई के विकल्प में पंडिताई शुरू की थी ।

मोहनदास नैमिशराय का मानना है कि दलित साहित्य ने नया विमर्श खड़ा किया जिससे दलित और द्विज के बीच सामाजिक न्याय के लिए संवाद बना है । साथ ही दलित रचनाकारों को शब्दों के ताकत का सन्देश देते हुए, परम्परागत शोषणवादी शब्दावली को निषिद्ध माना है । जयप्रकाश कर्दम ने दलितों की कैटेगरी में आदिवासी और किन्नर को भी शामिल करने की वकालत की हैं । उनके अनुसार साहित्य का जुड़ाव/जीवन और संवेदना से है न कि उत्कृष्ट कलात्मकता से । हीराडोम के समकालीन मारकंडे दलित (चिरंजीत) नाम से थे और इलाहाबाद में परसन कवि भी । उनका स्पष्ट मानना है कि 'दलित साहित्य ब्रम्हा को नहीं जगत को सत्य मानता है । दलित साहित्य की दृष्टि में ब्रम्हा या ईश्वर नहीं संसार सत्य है दलित साहित्य ब्रह्मा को नहीं जगत को सत्य मनाता है। दलित साहित्य की दृष्टि में ब्रह्मा या ईश्वर नहीं संसार सत्य है ।'

विमल थोरात का मानना है कि हिंदी दलित साहित्य मराठी से प्रेरित है । इनका मानना है कि दलित स्त्रियों का तिहरा शोषण होता है । इनका सबसे बडा योगदान दलित साहित्य को पाठ्यक्रम में शामिल कराने का रहा है । साथ ही इन्होंने दलित कविताओं को विभिन्न भाषाओं में अनूदित कराकर,दलित साहित्य को विस्तृत किया है । रजनी तिलक का मानना है कि दलितों में सबसे ज्यादा शोषण दलित स्त्रियों का होता है । इसलिए स्त्रियों को अब आगे बढ़कर शोषण का मुँहतोड़ जवाब देना चाहिए । साथ ही उनका मानना है कि मानवता को 'युद्ध नहीं बुद्ध चाहिए' ।

अनिता भारती वर्तमान में सबसे सशक्त अम्बेडकरवादी स्त्री है जिन्होंने स्त्री मुक्ति का प्रथम स्वर 'बुद्ध' के यहाँ से माना है और इन्होंने पितृसत्ता पर जमकर प्रहार करते हुए कहा है कि दलित आलोचक भी पक्षपाती है।

दलित साहित्य ने साहित्य को नया मोड़ दिया जो समाज सदियों से झूठ और काल्पनिक दुनिया में डूबा रहा। उससे इतर दलित साहित्य पहले समाज में व्याप्त जातिवाद, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक असमानता के यथार्थ को समाज सम्मुख लाता और फिर लोकतांत्रिक समाज का समर्थन करते हुए नए समाज का निर्माण करता है। परन्तु दलित साहित्यकार जहाँ समाज को जातिमुक्त बनाना चाहता है। वहाँ वह भी कई उप-जातियों में बँटा है, जिससे दलित आन्दोलन कमजोर होता है। उदाहरण के लिए श्यौराज सिंह बेचैन का कविता-संग्रह 'चमार की चाय' या उनके द्वारा चयन पर यह कहना कि "शीर्षक को लेकर सोचना शुरू किया तो मेरे सामने चमार केन्द्रित अनेक शीर्षक चित्रपट में घूम गये। मसलन मैंने देखा सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का उपन्यास 'चतुरी चमार' मेरे संग्रह में मौजूद है। मैंने इसे पढ़ा और लिखा भी है। रैदास के प्रति 'निराला' की एक कविता दलितों को प्रिय है-कर्म के अभ्यास में, अविरत बहे, ज्ञान गंगा में, समुज्ज्वल चर्मकार, चरण छूकर कर नमस्कार।' अदम गोंडवी नामक एक ठाकुर की कविता 'चमारों की गली' भी मेरे ध्यान में आयी। डॉ. धर्मवीर की समीक्षा पुस्तक 'चमार की बेटी रूपा' भी मै पढ़ चुका हूँ।"

जिस प्रकार समाज में व्याप्त जातिवाद और पाखंड का विरोध दलित कविताओं में दिखाई देता है, उतना ही तीव्र विरोध आर्थिक-शोषण को लेकर दिखाई देता है। परन्तु इस विषय में और गंभीरता से सोचने की जरूरत है क्योंकि दलित समाज ने आर्थिक अभाव में 'गोबरहा' अनाज खाकर जीवन यापन किया है। धर्म के विषय में यहीं कहा जा

सकता है कि ब्राह्मणवादी समाज ने इसका इस्तेमाल दलित शोषण के लिए अधिक किया है। इसलिए इससे धर्म-मुक्त समाज की कल्पना दलित समाज करता है।

दलित समाज में पिछड़ेपन का एक कारण यह भी है कि वह व्यक्ति जो समाज को बड़े-बड़े सपने दिखाकर राजनीतिक ताकत हासिल करता है वह भी स्वार्थ में डूब जाता है। अंततः यही कहा जा सकता है अनेक सहमतियों और असहमतियों के बावजूद दलित साहित्य की आलोचना विधा की यह पहल अभी अधूरी है। इसके विकास की अनंत संभावनाएं हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

आधार ग्रन्थ-सूची

1. अनिता भारती-बजरंग बिहारी तिवारी, यथास्थिति से टकराते हुए दलित- स्त्री-जीवन से जुडी आलोचना, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण: 2015
2. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला, छात्र संस्करण: 2014
3. कँवल भारती, दलित कविता का संघर्ष (हिंदी दलित कविता के सौ वर्ष), स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2012
4. कँवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, साहित्य उपक्रम प्रकाशन, पुनर्मुद्रण : फरवरी 2012
5. कँवल भारती, दलित-निर्वाचित कविताएं, (संपादन) साहित्य उपक्रम प्रकाशन, दिल्ली, पुनर्मुद्रण- फरवरी, 2012
6. डॉ. एन. सिंह, दलित कविता के प्रतिमान, वाणी प्रकाशन-नयी दिल्ली, आवृत्ति: 2014 दलित
7. डॉ. जयप्रकाश कर्दम, इक्कीसवी सदी में दलित आन्दोलन (साहित्य और समाज – चिंतन), पंकज पुस्तक मंदिर, प्रथम संस्करण : 2005
8. डॉ. जयप्रकाश कर्दम, दलित विमर्श साहित्य के आईने में, साहित्य संस्थान, गाजियाबाद, प्रथम संस्करण : 2009
9. डॉ. धर्मवीर, कबीर नई सदी में एक कबीर, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का प्रक्षिप्त चिंतन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2010
10. तेज सिंह,अम्बेडकरवादी साहित्य की अवधारणा, लोकमित्र प्रकाशन, शाहदरा दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2010

11.माता प्रसाद, हिंदी काव्य में दलित काव्यधारा, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी : 1993

12.मोहनदास नैमिशराय, हिंदी दलित साहित्य, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण (पेपर बैक) : 2018

13.रजनी तिलक, पदचाप, सेंटर फार अल्टरनेटिव दलित मीडिया (कदम), शालीमार बाग, दिल्ली, प्रथम संस्करण : फरवरी 2000

14.विमल थोरात, सूरज बडत्या (संपा), दलित कविता का विद्रोही स्वर, रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली, आई आई डी एस : 2008

15.श्यौराज सिंह 'बेचैन', चमार की चाय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2017

सहायक ग्रन्थ-सूची

1. अजय कुमार, दलित पैंथर आन्दोलन, गौतम बुक सेंटर, शाहदरा दिल्ली, संस्करण : 2015
2. अज्ञेय, दूसरा तारसप्तक, भारतीय ज्ञान पीठ, संस्करण : 1970
3. अभय कुमार दुबे, साहित्य में अनामंत्रित, सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2018
4. अवधेश कुमार सिंह, संस्कृत आलोचना की भूमिका, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली, पहला संस्करण : 2017
5. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, कमल प्रकाशन, नयी दिल्ली : नवीन प्रकाशन
6. इंतिजार नईम, दलित समस्या जड़ में कौन?, साहित्य सौरभ प्रकाशन नई दिल्ली, पाँचवा संस्करण : 2011

7. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1997
8. ओमप्रकाश वाल्मीकि, सदियों का संताप, गौतम बुक सेंटर, दिल्ली, द्वितीय संस्करण: 2008
9. कँवल भारती, (संपा), स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' संचयिता , स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2011
10. कँवल भारती, आरएसएस और बहुजन चिन्तन, फारवर्ड प्रेस साउथ गणेश नगर नई दिल्ली, प्र.सं: 2019
11. कँवल भारती, तब तुम्हारी निष्ठा क्या होगी, बोधिसत्त्व प्रकाशन रामपुर, प्र.सं : 1996
12. कँवल भारती, दलित काव्य में हासिए के कवि, संपा (डॉ. मनोहर भंडारे), दलित साहित्य समग्र परिदृश्य : 75
13. कँवल भारती, दलित साहित्य और विमर्श के आलोचक, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2009
14. कँवल भारती,तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती, बोधिसत्त्व प्रकाशन रामपुर, प्र. सं: 2016
15. काली चरण स्नेही, जय भारत जय भीम, नवभारत प्रकाशन : 2011
16. चौथीराम यादव, उत्तरशती के विमर्श और हाशिए का समाज, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2014
17. जगदीश प्रसाद कौशिक, भारतीय काव्य शास्त्र के प्रतिमान, जयपुर साहित्य घर, प्र.सं: 1988
18. जयप्रकाश कर्दम, इक्कीसवीं सदी में दलित आन्दोलन, पंकज पुस्तक मंदिर, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2005

19.ज्या द्रेज /अमर्त्य सेन, भारत और उसके विरोधाभास, अनुवाद-अशोक कुमार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण : फरवरी, 2019

20.डॉ. अमरनाथ, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चौथा छात्र संस्करण : 2016

21.डॉ. अम्बेडकर, सम्पूर्ण वांडमय, खण्ड-1, भारत में जाति प्रथा एवं जातिप्रथा-उन्मूलन भाषायी प्रान्तों पर विचार रानाडे, गाँधी और जिन्ना, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, दसवां संस्करण : 2014

22.डॉ. अम्बेडकर, सम्पूर्ण वाङमय खण्ड -13, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, आठवां संस्करण: 2014 फरवरी पृ.

23.डॉ. अम्बेडकर, सम्पूर्ण वाङमय, खण्ड-9, अस्पृश्यता अथवा भारत में बहिष्कृत बस्तियों के प्राणी, नौवां संस्करण : 2014 (फरवरी)

24.डॉ. आंबेडकर वाङमय, क्रांति तथा और प्रतिक्रांति बुद्ध अथवा काल मार्क्स, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली खंड-7, आठवां संस्करण : 2014 फरवरी

25.डॉ. आंबेडकर वाङमय, हिंदुत्व का दर्शन, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली खंड-6, आठवां संस्करण : 2014 फरवरी

26.डॉ. एन. सिंह, (संपा) दलित साहित्य चिंतन के विविध आयाम, आकाश पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, गाजियाबाद, द्वितीय आवृत्ति : 2009

27.डॉ. एन. सिंह, चेतना के स्वर, साहित्य संस्थान गाजियाबाद, द्वि.सं: 2006

28.डॉ. एन. सिंह, दृष्टिपथ के पड़ाव, आकाश पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, गाजियाबाद, संस्करण : 2011

29.डॉ. गुणशेखर, दलित साहित्य का स्वरूप विकास और प्रवृत्तियाँ, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण : 2012

30.डॉ. जय प्रकाश कर्दम, गूंगा नहीं था मैं, सागर प्रकाशन, दिल्ली, तृतीय संस्करण : 2006

31.डॉ. धर्मवीर भारती, सिद्ध साहित्य, हिन्दुस्तानी अकेडमी पुस्तकालय इलाहाबाद : 90

32.डॉ. धर्मवीर, प्रेमचंद की नीली आँखे, खंड तीन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2010

33.डॉ. नगेन्द्र, आधुनिक हिंदी कविता की मुख्य प्रवृत्तियां, गौतम बुक डिपो, दिल्ली, प्र. सं : 2003

34.डॉ. प्रभाकर माचवे, हिंदी आलोचना का अतीत और वर्तमान, हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद, प्र. सं : 1988

35.डॉ. मनोहर भंडारे, (संपा), दलित साहित्य समग्र परिदृश्य, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2013

36.डॉ. रश्मि चतुर्वेदी, दलित विमर्श के आलोक में, सरस्वती प्रकाशन कानपुर, प्रथम संस्करण: 2013

37.डॉ. राजेंद्र मिश्र, साहित्य की वैचारिक भूमिका, तक्षशिला प्रकाशन, पृ.सं : 202

38.डॉ. रामचंद्र, डॉ. प्रवीण कुमार (सम्पा), दलित चेतना की कविताएं, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2014

39.डॉ. वीरेंद्र सिंह, मिथक दर्शन का विकास, स्मृति प्रकाशन इलहाबाद, प्रथम संस्करण : 1984

40.डॉ. श्यौराज सिंह 'बेचैन', डॉ. देवेन्द्र चौबे, चिंतन की परम्परा और दलित साहित्य, लता साहित्य सदन, गाजियाबाद, संस्करण : 2010

41.डॉ.सम्पूर्ण वाङमय, डॉ. अम्बेडकर सेन्ट्रल लेजिस्लेटिव काउन्सिल में, खंड -18, सातवां संस्करण : 2014 (फरवरी)

42.डॉ.हरिनारायण ठाकुर, दलित साहित्य का समाजशास्त्र, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, तीसरा संस्करण : 2014

43.तेज सिंह, अम्बेडकरवादी विचारधारा, इतिहास और दर्शन, संपादक वेद प्रकाश, प्रथम संस्करण : 2012

44.दीप्ति गुप्ता, दलित आन्दोलन और सामाजिक न्याय, राधा पब्लिकेशन, दिल्ली, प्र. स: 2010

45.नामवर सिंह (संपा) आशीष त्रिपाठी, आलोचना और विचारधारा, पहली आवृत्ति : 2014

46.नामवर सिंह, आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, लोक भारती प्रकाशन, नवीन प्रकाशन : 2011

47.नामवर सिंह, कविता के नए प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, बारहवीं आवृत्ति : 2014

48.प्रणव कुमार बंदोपाध्याय, (संपा), दलित प्रसंग, एस के जी पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2008

49.प्रो. काली चरण स्नेही, दलित विमर्श और हिंदी दलित काव्य, ज्ञान विज्ञान संस्थान, हापुड़, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2013

50.प्रो.हरिमोहन, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र की पहचान, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण : 2013

51.बजरंग बिहारी तिवारी, दलित साहित्य एक अन्तर्यात्रा, नवारूण प्रकाशन, प्रथम संस्करण : 2015

52.बामसेफ परिचय, बामसेफ केन्द्रीय कार्यकारिणी द्वारा, डी. के. मेमोरियल ट्रस्ट के माध्यम से प्रकाशित : 15

53.बी.एस. साहू, दलित साहित्य और सामाजिक आन्दोलन. अपेक्षा पत्रिका, जुलाई-दिसम्बर, 2014 :14

54.मधुरेश, हिंदी आलोचना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण : 2017

55.मलखान सिंह, ज्वाला मुखी के मुहाने, शब्दारम्भ प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2016

56.मलखान सिंह, सुनो ब्राह्मण, रश्मि प्रकाशन, लखनऊ, पहला संस्करण : 2018

57.महात्मा ज्योतिबा फुले रचनावली, (संपा), एल. जी. मेश्राम 'विमल कीर्ति, खण्ड-1, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली चौथा संस्करण: 2015

58.मुद्राराक्षस, धर्मग्रंथों का पुनर्पाठ, गौतम बुक सेंटर, प्रथम संस्करण : 2014

59.मैनेजर पाण्डेय, सर्वेश कुमार मौर्या, (संपादक) साहित्य और दलित दृष्टि, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2015

60.मैनेजर पाण्डेय, साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकुला, तृतीय संस्करण : 2006

61.मोहनदास नैमिशराय, आग और आन्दोलन, श्री नटराज प्रकाशन, द्वितीय संस्करण : 2013

62.मोहनदास नैमिशराय, भारतीय दलित आन्दोलन का इतिहास -4, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण : 2013

63.रजत रानी 'मीनू' वंदना, (संपा) अस्मिता मूलक विमर्श और हिंदी साहित्य [पाठ एवं आलोचना], वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण : 2016

64.रजत रानी 'मीनू', नवें दशक में हिंदी दलित कविता, दलित साहित्य प्रकाशन संस्था, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 1996

65.रजनी तिलक, रजनी अनुरागी, (संपा), समकालीन भारतीय दलित महिला लेखन, खण्ड-1, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2011

66.रमणिका गुप्ता, दलित चेतना की कविता, नवलेखन प्रकाशन हजारीबाग, प्रथम संस्करण : 1996

67.रश्मि चतुर्वेदी, दलित विमर्श के आलोक में, सरस्वती प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण : 2013

68.रामविलास शर्मा, आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना, राजकमल, पाचवां. सं : 2017

69.रेने बेलेक, आलोचना की धारणाएं (संपा) और भूमिका, स्टीफन जी. निकोलस, जूनियर, रूपांतरण, इंद्रनाथ मदान,   हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़ : द्वि. सं : 1990

70.लक्ष्मीकान्त वर्मा, नई कविता के प्रतिमान, भारती प्रेस प्रकाशन इलाहाबाद

71.लाल चन्द्रराम, डॉ. सर्वेश कुमार मौर्य, सी. वी भारती, दलित साहित्य चिंतन, दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, प्र. संस्करण: 2013

72.विमल थोरात, दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर, अनामिका पब्लिशर्स नई दिल्ली : प्र.सं, 2008

73. विमल थोरात, मराठी दलित कविता और साठोत्तरी हिंदी कविता में सामाजिक और राजनीतिक चेतना, हिंदी बुक सेंटर, प्र.सं : 1996

74.विश्व नाथ त्रिपाठी, हिंदी साहित्य का सरल इतिहास, ओरियंट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली, पुनर्मुद्रित : 2013

75.शम्भुनाथ सिंह एम.ए, छायावाद युग, सरस्वती-मंदिर जतनबर, बनारस, प्र. सं: 1952

76.शम्भुनाथ, (संपादक) सामाजिक क्रांति के दस्तावेज, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, आवृत्ति :2017

77.शरण कुमार लिम्बाले, दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, अनुवाद (रमणिका गुप्ता), वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्र. सं : 2016

78.सच्चिदानंद चतुर्वेदी, भारतीय काव्य शास्त्र (एक शिक्षक के क्लास-नोट्स), अमन प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण : 2018

79.सर्वेश कुमार मौर्य, यथार्थवाद और दलित साहित्य, स्वराज प्रकाशन, पृ.संख्या 123, प्र.संस्करण : 2012

80.सूरज बड़त्या, सत्ता संस्कृति और दलित सौन्दर्यशास्त्र, अनामिका पब्लिशर्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2010

81.हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य की भूमिका, हिंदी साहित्य की भूमिका, रत्नाकर कार्यालय बम्बई, प्रथम बार : 1940

82.हजारी प्रसाद, नाथ संप्रदाय, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण : 2010

83.हरपाल सिंह 'अरुष' दलित साहित्य के आधार तत्त्व, भारतीय पुस्तक परिषद, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2011

84.हुकुम चंद भास्कर, दलित राजनीति के मुद्दे, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2013

वेबसाइट

1. Forward press.in/2019/08/ history-india-makhkali goshal-ajivak ,प्रेम कुमार मणि- 1 अगस्त 2019
2. hindi.newsclick.in/isabel-wilkerson-book-america-cast, लम्बे समय से क़ायम अमेरिका की जाति व्यवस्था पर इसाबेल विल्करसन का लेख, योगेश एस. 26 Aug 2020
3. http:// hi.wikipedia.org/ wiki, अंतिम परिवर्तन, 22 मई 2020, समय 15:25
4. http://egyankosh.ac.in/bitstream/123456789/13945/1/Unit-2.pdf, Access date: 28/11/2020
5. https://hi. wikipedia.org/wiki/ दलित पैंथर, अंतिम परिवर्तन 21: 36, 18 जनवरी 2021
6. https://hi.wikipedia.org/ भीम आर्मी, अंतिम परिवर्तन 10:31, 6 दिसम्बर 2020, Access date 21/1/2021
7. https://hi.wikipedia.org/wiki,भारतीय बौद्ध महासभा, अंतिम परिवर्तन 16:01, 15 अक्टूबर 2020
8. https://hi.wikipedia.org/wiki/बामसेफ, अंतिम परिवर्तन 17: 49, 14 नवम्बर 2020
9. https://www.bbc.com/hindi/india, ग्राउंड रिपोर्ट-4: किससे लड़ रही है आजाद की भीम आर्मी, जुबैर अहमद, 30/5/2017
10. https://www.bbc.com/hindi/india/2016/04/ बौद्ध बनने से हिंदू दलितों के दिन फिरे, ‘अनिल यादव’,

11.Khurshid Alam, Mediamorcha.com/entries/18/may/2020/कैलाश दहिया roar.media/ hindi/main/ history/ rajini-tilak-a-great-socialist, रजनी तिलक,महिलाओं के अधिकारों की वकालत करने वाली क्रांतिकारी: 23 jul 2018

12.lokmitr.blogspot.com/2010/02/blog-post_17.html, post by ved Prakash, 17/02/2010, 2:10 am

13.streekaal.com/2017/05/researchpapaer-lokayat-ashishpadwa

14.W w w. Posham.org/mai-waha-hoon…by ageyeya, साभार- 20/05/2020, time-12:00 am

15.www.egyankosh, हिंदी आलोचना का विकास, फारुकी नीलम, चतुर्वेदी, स्मिता, IGNOU, acess date 22/11/2020

16.www.egyankosh.ac.in, भारत की चिंतन परम्पराएं और दलित साहित्य access date: 22/09/2020

17.www.egyankosh.com, IGNOU (PDF) विमल थोरात, दलित साहित्य की अवधारणा और स्वरूप , access date: 22/09/2020

18.www.egyankosh.com, एम. एच डी-18-दलित साहित्य की अवधारणा का स्वरुप, विमल थोरात, दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र खण्ड-4, प्रकाशक इग्नू नई दिल्ली, जून-2014

19.www.egyankosh.com, एम. एच डी-18-दलित साहित्य की अवधारणा का स्वरूप , access date: 22/09/2020

20.www.forwardpress.in/2020/03/tribute-rajni-tilak-hindi/संपादन, नवल

21.अनीता भारती दलित महिला विरोधी डॉ. धर्मवीर,

http://oppressedworldBlog spot. com / 2011/ 04 / blog

22.आज हम ईश्वर से मुक्त हुए, https:// www.bbc.com/ hindi/india /2016/ 04/ 160414_ rohit _vemula_ brother-statement

23.कँवल भारती, एक ज़रूरी किताब जो बताती है दलित पैंथर का दस्तावेज़ी इतिहास !

http://www. Mediavigil. com/dalit painthar, 28 दिसम्बर 2017

24.प्रो. रेवतीरमण, e-PG PATHSHALA : 3, साभार, Access date- 25/8/2020, time : 8:28

25.विनीत खरे, अमरीका: जॉर्ज फ्लॉयड की मौत के बाद काले-गोरे पर सियासत गर्म, https:// www.bbc.com/ hindi/ international, 30 मई 2020

पत्र-पत्रिकाएं

1. अपेक्षा पत्रिका, तेजसिंह, अंक 11, अप्रैल-जून, 2005, स्वामी संपादक, प्रकाशक एवं मुद्रक तेजसिंह की ओर से फाईन आफसेट प्रेस, सी-20, ज्योति कालोनी, लोनी रोड शहादरा दिल्ली-110032 द्वारा मुद्रित एवं 27, घौंडली, कृष्णा नगर, दिल्ली -110051 से प्रकाशित ।
2. अपेक्षा पत्रिका, तेजसिंह, जुलाई-सितम्बर 2005, कृष्ण नगर, दिल्ली -110051 से प्रकाशित।
3. अपेक्षा, तेजसिंह, अंक 28-29, जुलाई-दिसम्बर 2009, 27-घौंडली, कृष्णा नगर, दिल्ली -110051
4. कथादेश, हरिनारायण, अगस्त, 2005, एल-57 बी, दिलशाद गार्डन दिल्ली 110095

5. दलित अस्मिता, विमल थोरात, अंक -18, जनवरी-मार्च 2015, सेंटर फार दलित लिटरेचर एण्ड आर्ट डी-2/1, रोड न.- 4, अड्र्यूज गंज नई दिल्ली-1100049

6. दलित साहित्य (वार्षिकी) 2014, जयप्रकाश कर्दम, वर्ष 16, अंक 14, सम्यक प्रकाशन, 32/3 पश्चिम पुरी, नई दिल्ली-110063,

7. बहुजन वैचारिकी, तुलसीराम विशेषांक, धर्मवीर यादव गगन, अंक-1, जनवरी 2016, सम्पादकीय संपर्क, मानसरोवर, 412, अपोजिट-जी. टी. बी. खालसा कालेज, दिल्ली विश्व विद्यालय, नई दिल्ली -110007

8. मगहर, मुकेश मानस, जुलाई 2018 (अम्बेडकरवादी आलोचक डॉ. तेज सिंह,विशेषांक), ए-2/ 128, सेक्टर-11, रोहिणी, दिल्ली-110085

9. सम्यक भारत, डॉ. श्यौराज सिंह, 'बेचैन' पर विशेषांक, मंजू मौर्य, वर्ष : 9, अंक : 1 नवंबर, 2012, सी 1/98 रोहिणी सेक्टर-5, नई दिल्ली-85

10. हंस, राजेंद्र यादव, अंक 1, अगस्त 2004, अक्षर प्रकाशन प्रा. लिमिटेड, 2/36 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

11. हंस, राजेंद्र यादव, अंक 1 अगस्त 2002, अक्षर प्रकाशन प्रा. लिमिटेड, 2/36 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-11000

साक्षात्कार

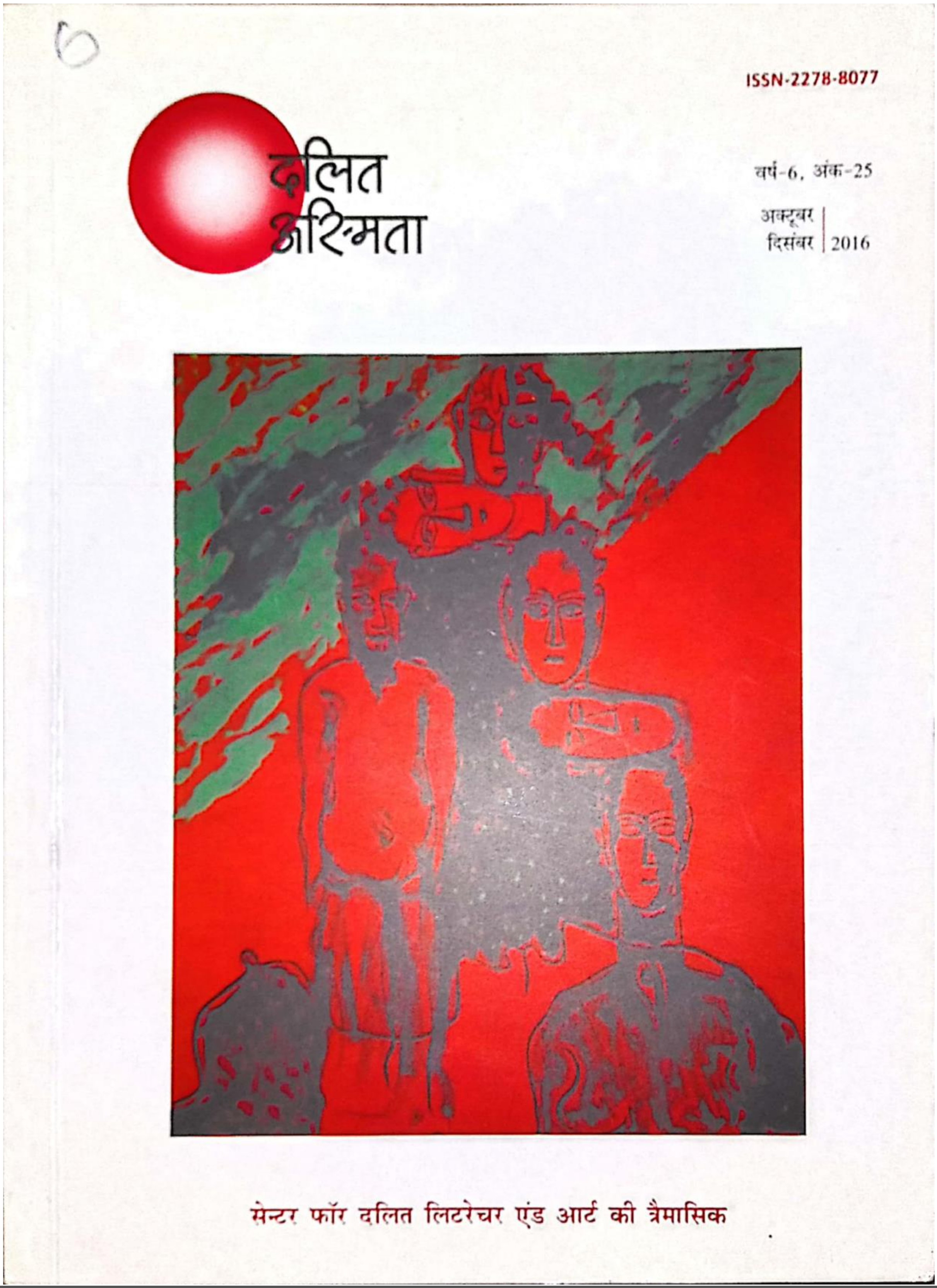
ISSN-2278-8077
दलित
अस्मिता
वर्ष-6, अंक-25
अक्टूबर
दिसंबर 2016
सेन्टर फॉर दलित लिटरेचर एंड आर्ट की त्रैमासिक

दलित अस्मिता

सेन्टर फॉर दलित लिटरेचर एंड आर्ट की त्रैमासिक

विशिष्ट परामर्शकर्ता

एलिनार झेलियट, अमेरिका

परामर्श मंडल

लक्ष्मण गायकवाड़, अर्जुन डांगले, चौथीराम यादव, अनिल सरकार, हरीश मंगलम्

कुसुम मेघवाल, बामा, वी. कृष्ण, दयानंद बटोही, इंतिजार नईम, शबनम हाशमी, आर. के. नायक

एंडलूरी सुधाकर, सवि सावरकर, वाहरु सोनवणे, सिद्दलिंगय्या

संपादक

विमल थोरात

सहायक संपादक

दिलीप कठेरिया

सूरज बड़त्या

संपादन सहयोग

सुनील कुमार 'सुमन', प्रमोद कुमार, भीम सिंह, शिवदत्त वावलकर

इस अंक में

संपादकीय 5
विमल थोरात

पाठक संवाद 9

स्तंभ

यात्रा का प्रस्थान-बिंदु तलाशती कविताएं - चौथीराम यादव 12
आंबेडकर की दृष्टि में नाटक - राजेश कुमार 19

वैचारिकी

विमर्शों का कला पक्ष - डॉ. सूर्य नारायण रणसुभे 24
दलित साहित्य में दलित स्त्री विमर्श - हरपाल सिंह 'अरुष' 34
जनशिक्षा की अवधारणा और डॉ. भीमराव आंबेडकर - निरंजन सहाय 38

युवा लेखन

समकालीन आदिवासी कविता के आयाम - डॉ. भीम सिंह 44
गुरु रविदास और मीराबाई : एक आलोचनात्मक अध्ययन - मुन्नी भारती 50

सिनेमा और सामाजिक सरोकार

जातिवादी फांस का जायजा लेती एक फिल्म - जनार्दन 57

साक्षात्कार

मलखान सिंह से संदीप कुमार की बातचीत 63

हिन्दी कहानी

दर्द से रिश्ता - ईश कुमार गंगानिया 68
अलाव की एक शाम - डॉ. बी. एस. त्यागी 75
पगली लड़की - आर. बी. यादव 79

लघु कथा

एम आई फ्रॉम मसीहगढ़ - डॉ. पूरन सिंह 82

साक्षात्कार

कविता कर्म अर्जित कौशल है

भारतीय दलित कविता के प्रमुख हस्ताक्षर मलखान सिंह के साथ संदीप कुमार की बातचीत

प्रश्न – आपने कविता लिखना कब शुरू किया?

मलखान सिंह – मैं यह स्वीकार नहीं करता कि कविता लिखने की शक्ति प्रकृति प्रदत्त होती हैं। हां इतना अवश्य स्वीकार करता हूं कि कविता पढ़ने का शौक बचपन से ही था यही शौक कालांतर में जाकर लेखन में परिवर्तित हो गया। शुरुआती कविताओं के पीछे किशोर मन की भावुकता अधिक थी। लेकिन उम्र बढ़ने के साथ-साथ सामाजिक विद्रूपताएं हावी होकर कविता का रूप लेने लगी। छात्रवास जीवन में पग-पग पर 'जाति' अपमान झेलना, मेस में दलित छात्रों के साथ भेदभाव बरता जाना, अध्यापकों द्वारा 'जाति' आधार पर व्यवहार करना कविता लिखने की लालसा को और तीव्र करने लगे।

प्रश्न – आपके अनुसार 'दलित' और 'दलित चेतना' किसे कहेंगे?

मलखान सिंह – भारतीय समाज के अंतिम पायदान पर बैठा हुआ व्यक्ति दलित है। जिसके पास शताब्दियों तक सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक अधिकार नहीं थे, जो सामाजिक असमानता और घृणा का शिकार था। ब्राह्मणी-व्यवस्था द्वारा थोपी गयी बन्दिशों के अधीन वह पाशविक जीवन जीने के लिए बाध्य था। इन बन्दिशों के प्रति जागरूकता और उन्हें उखाड़ फेंकना ही दलित चेतना है जो वर्तमान दलित साहित्य की विभिन्न विधाओं में प्रकट हो रही है। जिसका लक्ष्य लोकतांत्रिक समाज की स्थापना करना है।

प्रश्न – आपकी नजर में भारत की सामाजिक संरचना में दलित-दुर्दशा के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक कारण क्या है?

मलखान सिंह – व्यक्ति के चेतना और उसके व्यवहार के निर्धारण में धर्म की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जिसे हम संस्कृति के नाम से पुकारते हैं। भारतीय समाज में ब्राह्मणी सांस्कृतिक व्यवस्था ने पूरे दलित समुदाय को वस्तु के रूप में बदल दिया। उसकी स्वतंत्र चेतना को सदैव के लिए नष्ट कर परिवर्तन के हर रास्ते को रोक दिया। यह ब्राह्मणी व्यवस्था ही है। जिसे आज भी हमारा समाज कोढ़ की तरह झेल रहा है।

प्रश्न – आपके अब तक दो कविता संग्रह 'सुनो ब्राह्मण' और 'ज्वालामुखी के मुहाने' आ चुके हैं। पहले संग्रह का शीर्षक 'सुनो ब्राह्मण' रखने के पीछे की दृष्टि क्या है? ब्राह्मण का हृदय परिवर्तन करने का या दलितों में

परिवर्तन की चेतना जागृत करना?

मलखान सिंह - मेरा दूसरा कविता संग्रह 'ज्वालामुखी के मुहाने' नाम से प्रकाशन हेतु तैयार है। पहला संग्रह 'सुनो ब्राह्मण' शीर्षक रखने के पीछे दलित वर्ग में परिवर्तन की चेतना पैदा करना प्रमुख था। रहा सवाल ब्राह्मण के हृदय परिवर्तन का वह इतना चिकना घड़ा है कि उसके ऊपर शब्दों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता साथ ही जाति के रूप में प्राप्त वह अपने विशेषाधिकारों को छोड़ने के लिए आज भी तैयार नहीं है।

प्रश्न - 'सुनो ब्राह्मण' संग्रह की इसी शीर्षक की अंतिम कविता में 'ब्राह्मण' के अंत की कामना की है। यहां ब्राह्मण के अंत से क्या अभिप्राय है?

मलखान सिंह - 'सुनो ब्राह्मण' कविता की प्रथम दो पक्तियां 'हमारे दासता का सफर तुम्हारे जन्म से होता हैं और इसका अंत तुम्हारे अंत के साथ होगा' इस तथ्य को दर्शाती है कि भारतीय सामाज में व्याप्त चतुर्वर्णी सामाजिक व्यवस्था को स्थापित करने का श्रेय ब्राह्मणी व्यवस्था को है। जब तक हमारी चेतना से ब्राह्मणी व्यवस्था के संस्कार समाप्त नहीं होंगे तब तक यह व्यवस्था भी बनी रहेगी। अस्तु वर्ण व वर्ग विहीन समाज की स्थापना करने के लिए ब्राह्मणवाद का समाप्त होना अनिवार्य है।

प्रश्न - 'सुनो ब्राह्मण' संग्रह में दलित के आदमी से जानवर बनने की अमानवीय त्रासदी का चित्रण है। क्या जीते जागते मनुष्य को डी-हयूमनाइज करने वाली व्यवस्था जानवर से ज्यादा खूंखार और नृशंस होगी?

मलखान सिंह - ब्राह्मणी-व्यवस्था कितनी नृशंस और खूंखार है इसका अंदाजा आप केवल शब्दों से नहीं लगा सकते इसके वास्तविक स्वरुप को समझने के लिए किसी दलित परिवार में एक पूरी उम्र गुजारनी होगी तब महसूस कर सकेंगे की यह व्यवस्था कितनी कुरूप अमानवीय और कितनी पाशविक है ।

प्रश्न - 'सुनो ब्राह्मण' संग्रह की एक कविता में दलित जीवन में गुणात्मक परिवर्तन दिखाया गया है जहां बाप बेगार करने के बजाय कविता लिखने लगा और बेटा स्कूल जाने लगा किन्तु मां अभी भी 'मैला' कमाने गई। आपके अनुसार दलित स्त्री के जीवन में परिवर्तन कब आयेगा?

मलखान सिंह - संकलन की कविता 'मुझे गुस्सा आता है' के अन्तर्गत तीन पीढ़ी की मानसिक सोच को दर्शाया गया है। जिसमें मैं (मुझे) उस पीढ़ी का प्रतीक है जिसका जन्म परतंत्र भारत में हुआ, स्वतंत्र भारत में उसने शिक्षा दीक्षा प्राप्त की इसके बावजूद भी वह सामाजिक सम्मान नहीं प्राप्त कर सका, पढ़ने-लिखने के बावजूद भी ब्राह्मणी व्यवस्था ने उसे कूकर-दृष्टि से देखा और वैसा ही व्यवहार किया। 'मैं' में खुले विद्रोह की क्षमता नहीं है इसलिए नहीं की अर्थ व्यवस्था उसे ऐसा करने से रोकती है। इसलिए वह अपने क्रोध को शब्दों में व्यक्त करता है। बेटा द्वितीय पीढ़ी का प्रतीक है जो आजाद भारत में पैदा हुआ है। जो सामाजिक अन्याय, भेदभाव, असमानता के प्रति खुले विद्रोह के लिए उतारू है। लेकिन मैं के रूप में पहली पीढ़ी उसे करने से रोक रही है। क्योंकि उसकी दृष्टि में सामाजिक-परिवर्तन के लिए मात्र एक व्यक्ति का विरोध पर्याप्त नहीं है। पत्नी मैला कमाने गयी है का प्रतीक समय के साथ अंतिम पायदान में खड़े वाल्मीकि समुदाय से लिया गया है। जहां आज भी मैला साफ करने का दायित्व महिला के कंधों पर है। शिक्षा ही वह अस्त्र है जिसके द्वारा दलित स्त्री की स्थिति में गुणात्मक परिवर्तन आ सकता है।

प्रश्न - आपकी कविताओं में दलितों की आर्थिक दुर्दशा का चित्रण अधिक है इसलिए आलोचकों ने आपको 'दलित कविता का मुक्तिबोध' कहा है। आप इससे कहां तक सहमत हैं?

मलखान सिंह - दलित साहित्य के प्रमुख आलोचक कंवल भारती के शब्दों में- मैंने अपनी किसी टिप्पणी में कहा था कि मलखान सिंह दलित कविता के मुक्तिबोध हैं। इसको लेकर यह निष्कर्ष निकाल लिया

मलखान सिंह - इस संबंध में मेरे द्वितीय कविता संकलन 'ज्वालामुखी के मुहाने' में सम्मिलित कविता 'पतित पावनी गंगा' पठनीय है-

कैसा अजूबा यह
कि आज
मंदिर हो
मस्जिद हो
गिरजा हो
या हो गुरुद्वारा
सभी के द्वार से
निकलने वाले रास्ते
उन्हीं संकरें-सड़ांध भरे
गलियारों में जा सिमटते हैं
जिन्हें छोड़ने के लिए कभी
टोपियां बदली थी हमने।

अस्तु यह कटु सत्य है कि आज भारत में उपस्थित प्रत्येक धर्म ब्राह्मणी व्यवस्था के दोषों से ग्रसित हो चुका है। ऐसी स्थिति में केवल बौद्ध धर्म ही एक ऐसा धर्म है। जो व्यक्ति को वैज्ञानिक सोच, वैश्विक दृष्टि प्रदान करते हुए हर प्रकार के पाखंड़ और आसमानता के विरोध में आवाज उठाते हुए लोकतांत्रिक समाज की ओर ले जाता है।

प्रश्न - आपकी कविताओं में ब्राह्मण व्यवस्था के पाखंड़ के साथ उसके अमानवीय क्रूर चेहरे को उघाड़ने की सफल कोशिश की गई है जिससे दलित कविता का प्रतिरोधी स्वर बड़े तीखे रूप में व्यक्त हुआ है। लेकिन ऐसा लगता है कि उसमें दलित की अपनी वैकल्पिक व्यवस्था स्पष्ट रूप से नहीं उभर सकी है। आपकी नजर में क्या दलित अभी अपनी वैकल्पिक स्थिति बनाने की स्थिति में नहीं है?

मलखान सिंह - 'सुनो ब्राह्मण' मेरा भोगा हुआ सच है जो दलित के रूप में आज भी दलित समाज भोग रहा है। उसी भोगे हुए सच की अभिव्यक्ति ही 'सुनो ब्राह्मण' के अन्तर्गत हुई है मेरा द्वितीय संकलन 'ज्वालामुखी के मुहाने' उस वैकल्पिक व्यवस्था को प्रस्तुत करता है, जो कि दलित समाज को पाशविक जीवन से निकलने का रास्ता दर्शाता है।

प्रश्न - आपके अनुसार भूमण्डलीकरण के दौर में दलित की स्थिति कैसी होगी?

मलखान सिंह - भूमण्डलीकरण को उत्तर-साम्राज्यवाद के नाम से भी पुकारते है। जिसका आधार नवउदारवाद है। भूमण्डलीकरण, पूंजीवादी व्यवस्था का सर्वाधिक क्रूर चेहरा है। जो दलित समाज को हर क्षेत्र से बेदखल कर उस स्थान पर खड़ा कर देगा, जहां उसकी प्रगति का हर रास्ता बंद होगा। मेरे द्वितीय कविता संकलन 'ज्वालामुखी के मुहाने' में भूमण्डलीकरण पर लिखी यह कविता उसी यथार्थ को व्यक्त कर रही है-

कैसा उदारवाद यह
जो हमें
हमारे हाल पर छोड़
मुफ्तखोरों को लूट की
खुली छूट दे
तिजोरियां खुद की भरता है।
आज
देश की शिक्षा
देश की चिकित्सा
देश के बाजार
आकाश-पाताल
धरती की कोख तक
बस उन्हीं की सत्ता चलती है
नगर चौराहों पर बिकने वालों की
इतनी भीड़ है कि
पांव रखने की जगह नहीं
गांव बंजर हो गये हैं
हम सिमाने पर खड़े पेट के भेड़िये से जूझ रहे हैं
और सत्तासीन
खुद की गर्दन की मोटाई
छिपाने के लिए
मुफ्तखोर गर्दन को
प्रगति का पैमाना बना

घोषित कर रहे हैं कि
देश समृद्धि कर रहा है।

प्रश्न – दलित कविता के वैचारिक, दार्शनिक पक्ष के बारे में आपका क्या मत हैं?

मलखान सिंह – बिना किसी लाग लपेट के यह कहा जा सकता है की लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था सर्वश्रेष्ठ शासन व्यवस्था है जो प्रत्येक व्यक्ति को समानता, स्वतंत्रता और प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास के लिए समान अवसर प्रदान करती है।

दलित साहित्य की वैचारिकी का दार्शनिक पक्ष लोकतांत्रिक वैचारिकी ही है जिसकी पहल सर्वप्रथम बुद्ध दर्शन ने की थी कालांतर में ज्योतिबा फुले, बाबा साहब आंबेडकर, इसी वैचारिकी के पथ-प्रदर्शक बने।

प्रश्न- आपकी नजर में दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र कैसा होगा?

मलखान सिंह – दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र चार तत्वों को लेकर चलता है –

1 श्रम के प्रति प्रतिष्ठा
2 व्यक्ति की गरिमा
3 व्यक्ति का कल्याण
4 व्यक्ति जीवन की सुन्दरता

यही दलित साहित्य के मूल आधार हैं।

प्रश्न – अन्य दलित कवियों से आपकी कविता कैसे और किस रूप में भिन्न है?

मलखान सिंह – इस प्रश्न का निर्णय मुझसे अधिक पाठक पर छोड़ दिया जाये तो ज्यादा श्रेष्ठ है।

प्रश्न – आज कल आप क्या लिख रहे हैं और भविष्य में क्या लिखने की योजना है?

मलखान सिंह – इस समय लेखन कार्य बिल्कुल बंद है। जीवित रहने के लिए संघर्ष कर रहे हैं।

प्रश्न – क्या कविता के अलावा आप अन्य विधाओं में लिखेंगे?

मलखान सिंह – कविता के अलावा साहित्य की अन्य विधाओं में लिखने का प्रयास ही नहीं किया।

प्रश्न – दलित आत्मकथाएं दलित साहित्य का सर्वश्रेष्ठ रूप है। आपकी आत्मकथा कब आयेगी?

मलखान सिंह – निश्चित ही दलित आत्मकथाएं दलित जीवन की सर्वश्रेष्ठ कृतियां हैं। रहा सवाल मेरी आत्मकथा का अभी कुछ भी नहीं कहा जा सकता है।

❐ ❐

संपर्क
शोध छात्र, हिन्दी विभाग
हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद
फोन : 9369485212, 9063426591

क्रांतिज्योति सावित्रीबाई फुले पर 'दलित अस्मिता' का अगामी विशेषांक

दलित अस्मिता का अगला अंक भारत की पहली महिला शिक्षिका क्रांतिज्योति सावित्रीबाई फुले के व्यक्तित्व, कृतित्व और उनके महान सामाजिक योगदानों पर केन्द्रित होगा। इस विशेषांक हेतु सामग्री, रचनाएं व आलेख आमंत्रित है। लेखकों और रचनाकारों से अनुरोध है कि कृपया 31 जनवरी 2017 तक अपनी रचनाएं व आलेख भेजें।

– संपादक

शोध-आलेख

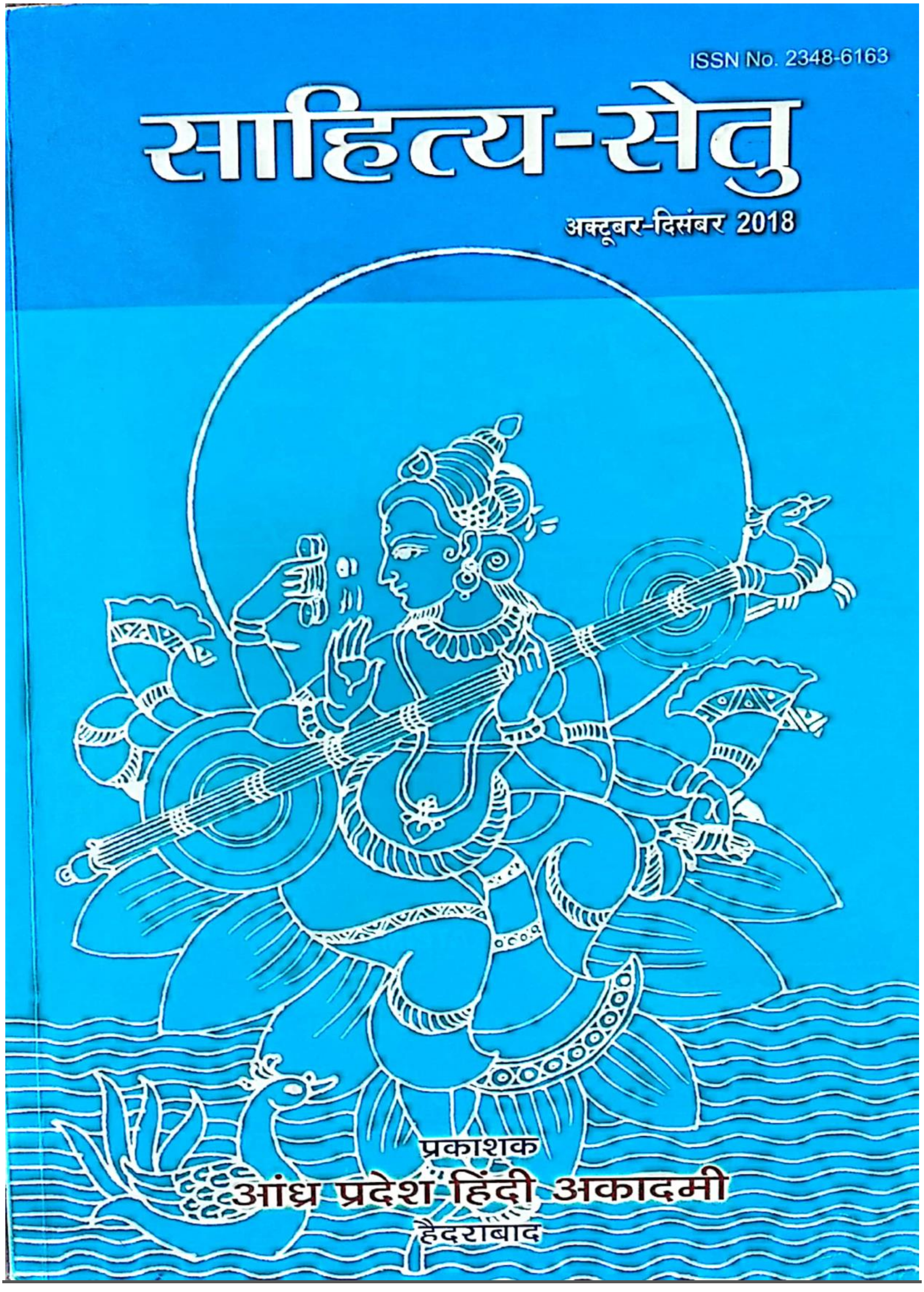

ISSN No. 2348-6163
साहित्य-सेतु
अक्टूबर-दिसंबर 2018
प्रकाशक
आंध्र प्रदेश हिंदी अकादमी
हैदराबाद

साहित्य-सेतु

त्रैमासिक

वर्ष : 5 ◆ अंक : 17 ◆ अक्तूबर-दिसंबर 2018 ई.

संपादक
डॉ.चंद्रा मुखर्जी
निदेशक
आंध्र प्रदेश हिंदी अकादमी

परामर्शमंडल
डॉ.एम.वेंकटेश्वर
डॉ.बी.सत्यनारायण
डॉ.शुभदा वांजपे
डॉ.अनिता गांगुलि
डॉ.बी.कृष्ण
डॉ.ऋषभदेव शर्मा

सह संपादक
श्रीमती पी.उज्ज्वला वाणी

प्रकाशक
आंध्र प्रदेश हिन्दी अकादमी
हैदराबाद

तेलुगु-साहित्य

80 तेलुगु साहित्य में राष्ट्रीय चेतना - डॉ. भागवतुला हेमलता

89 जाजुल गौरी की तेलुगु कहानियों में चित्रित दलित जीवन संघर्ष - के.कांचना

दलित-साहित्य

95 'दलित कहानियों में अभिव्यक्त चेतना, संघर्ष और प्रतिरोध' - झिल्ली नायक

100 हिन्दी दलित कविता के अभ्युदय की पृष्ठभूमि - संदीप कुमार

108 हिन्दी दलित कथा साहित्य में स्त्री विमर्श - दिवाकर एन

कविता

112 इतना सा जीवन - सैयद दाऊद रिजवी

113 दाम - देवेन्द्र कुमार मिश्रा

114 कुछ दोहे - सीताराम गुप्ता

115 समय के हाशिए - राजेंद्र निशेश

कहानी

116 "जीवन" - देवेन्द्र कुमार मिश्रा

पुस्तक-समीक्षा

118 महाकवि शेषेन्द्र का साहित्य हिन्दी में - आचार्य वै.वेंकटरमण राव

....

हिन्दी दलित कविता के अभ्युदय की पृष्ठभूमि

- संदीप कुमार

वर्तमान समाज का रूप जिस गति से बदला है साहित्य भी उतनी ही गति से परिवर्तित हुआ है। ये दोनों समय और परिस्थितियों के साथ-साथ हमेशा बदलते रहे हैं। क्योंकि ये एक दूसरे के पूरक हैं। अब हम इक्कीसवीं सदी के उस दौर में रहे हैं जिसमें ज्ञान-विज्ञान कला, संस्कृति, परम्परा, इतिहास सब बदल चुके हैं। यहाँ तक कि इतिहास की पुनर्व्याख्या की मांग होने लगी हैं। वह सब कुछ जिसका उपयोग देश और समाज निर्माण में होता रहा है, वे सब मिथक पाखंड से लगने लगे हैं। साथ ही अविश्वास और अधूरापन का एहसास करा रहे हैं। यह सब क्यों हो रहा है? इसे जानने के लिए हाशिये पर पड़े भूखें, अधनंगें, शोषित, पीड़ित जीवन जी रहे समाज के भुक्तभोगी बहुत बड़े हिस्से को देखना होगा। जिसको आज भी चमचमाती लक्जरी गाड़ियाँ, गगनचुम्बी इमारतें, स्मार्ट शहर, काले सफ़ेद हो चुके धन से नहीं बल्कि भूखे पेट को भरनें और सम्मानित जीवित रहनें के साधन की जरूरत है। ऐसे ही पीड़ित जनों की आवाज को दलित कवियों ने उठाया। जिससे समाज के हर वर्ग के सामने सवाल खड़ा हुआ कि उसका दोषी कौन है? जिसको आज भी सम्मानित दृष्टि से नहीं देखा जाता, अधिकार मिलना तो दूर की बात है। आखिर ऐसे कौन से तत्व हैं? जिनके चलते हिन्दी साहित्य के इतने समृद्ध होने के बावजूद अलग-अलग कुछ जाति गत विमर्श बन चुके हैं और कुछ बन रहे हैं।

समाज में असामनता के बीज कैसे पनपे और फिर आज तक कैसे फल-फूल रहे हैं? इन सब को समझने के लिए दलित कविता की पृष्ठभूमि क्या है? इसका विस्तार से अध्ययन करना आवश्यक है। चूंकि दलित कविता समाज में हो रहे भेदभाव, उत्पीड़न, शोषण, धार्मिक पाखंड आदि मुद्दों को लेकर चलती है। इसलिए दलित समाज की सामजिक पृष्ठभूमि को समझना होगा। इस समाज को लेकर प्राचीन काल से अब तक के इतिहास में अनेकों प्रकार का द्वंदात्मक रूप दिखाई देता है जिसका उल्लेख दलित चिन्तक माता प्रसाद ने 'हिन्दी काव्य में दलित काव्य धारा' नामक पुस्तक में लिखा है ''वैदिक-काल एवं स्मृति-काल की वर्ण-व्यवस्था और जाति व्यवस्था से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। वर्ण-व्यवस्था से शूद्र जातियों, उपजातियों का विकास होता रहा, फिर इनको 'चांडाल', 'अस्पृश्य', 'अछूत', 'हरिजन' आदि अनेक नामों से इनको पुकारा जाता रहा है। इनके साथ समाज और राज्य सत्ता ने जो दुःखद व्यवहार किये वे दर्दनाक है।''[1] माता प्रसाद का यह मत उस ऐतिहासिक घटना की ओर ले जाता है, जिसमें दलितों को कमजोर, बेबस, बेजुवान बनायें रखने के लिए साजिश बनती रही। समाज को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए वर्ण-व्यवस्था जैसी सामाजिक व्यवस्था की गयी थी। लेकिन उसके परिणाम अलग ही रहे, क्योंकि उसी से समाज में जातिवाद, संप्रदाय, रूढ़िवाद जैसे समाज विरोधी जहर फैलते रहे। लोगों के अन्दर मानवमात्र के लिए प्रेम नहीं बल्कि नफरत और घृणा जैसे विचार उत्पन्न हुए। वर्ण व्यवस्था के विषय में इंतिजार नईम खां ने इस प्रकार लिखा है कि ''हिन्दू समाज की लोकोत्तर विशेषता उसमें प्रचलित वर्ण-

व्यवस्था तथा जाति प्रथा है, जिन्हें संसार का आठवॉ आश्चर्य कहने में कोई अत्युक्ति नहीं है। हिन्दी समाज की कमर तोड़ने वाली यह वर्ण-व्यवस्था हिन्दू जति के लिए दुर्भाग्यवश उसमें क्यों प्रचलित हो गई, इसका संक्षिप्त इतिहास पाठकों को देना परमावश्यक है।''[2]

यह व्यवस्था जिसे नईम खां ने हिन्दू जाति का कमर तोड़ माना है। वास्तव में यह गंभीर विचारणीय मुद्दा है। क्योंकि इससे केवल हिन्दू ही नहीं बल्कि पूरी मानवीय गरिमा तार-तार हुई है। दिनों-दिन यह अलग-अलग रूप में बदलती रही। जिसकी शुरूआत कर्मों को संचालित करने के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के रूप में हुई। वह जातिवाद के रूप में फैल गया। जिसने समाज का बखूबी विखंडन किया। इससे समाज की कितनी छवि दूषित हुई इसे बताने की आवश्यकता नहीं। क्योंकि आज तक समाज इस खाईं को नहीं पाट पाया। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने भारतीय समाज का उल्लेख इस प्रकार किया है कि ''भारतीय समाज-व्यवस्था ने वर्ण-व्यवस्था का एक ऐसा जिरहबख्तर पहन रखा है, जिस पर लगातार हमले होते रहे हैं फिर भी वह टूट नहीं पाई। बीसवीं सदी में सबसे बड़ा हमला डॉ.अम्बेडकर ने किया और बौद्ध धर्म को पुनर्जीवित किया। वर्ण-व्यवस्था के स्वरुप में बदलाव दिखाई पड़ा। इस व्यवस्था को तोड़ने के लिए जाति-व्यवस्था का टूटना जरूरी है, तभी समाज में समरसता उत्पन्न हो सकती है और साहित्य में उपजी विभ्रम स्थिति से मुक्त हो सकते हैं।''[3] परम्परागत रूप से यह व्यवस्था सदियों से चली आ रही है। इतनी अव्यवहारिक और घातक होते हुए भी यह जीवित कैसे है? इन मुद्दों पर सोचना आवश्यक ही नहीं बल्कि एकजुट होकर इसको ध्वस्त किया जाना चाहिए। लेकिन सत्ता के लोभी लोग किसी भी तरह इसको जीवित बनाए रखना चाहते हैं। समानता भाईचारा के लिए बड़े-बड़े ग्रन्थ, बड़े-बड़े संतों के व्याख्यान, सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्, वसुधैव कुटुब्कम की भावना रखने वाले भी असफल दिखे। या तो यह कहे कि उनका चोला वही है। सदियों से जो चला आ रहा है, 'मन में राम बगल में छूरी'। सच बात तो यह है कि अब झूठ और वेबुनियादी स्तर पर यह बहुत दिनों तक टिका नहीं रह सकता।

डॉ.अम्बेडकर ने लिखा है कि ''मेरी राय में इसमें कोई संदेह नहीं है कि जब तक आप अपनी सामाजिक व्यवस्था नहीं बदलेंगे, तब तक कोई प्रगति नहीं होगी। आप समाज को रक्षा या अपराध के लिए प्रेरित कर सकते हैं। लेकिन जाति-व्यवस्था के नींव पर आप कोई निर्माण नहीं कर सकतें : आप राष्ट्र का निर्माण नहीं कर सकते, आप नैतिकता का निर्माण नहीं कर सकते। जाति-व्यवस्था की नींव पर आप कोई भी निर्माण करेंगे, वे चटक जायगा और कभी पूरा नहीं होगा।''[4] समाज के विकास के लिए समानता होना आवश्यक है। बिना समानता के सम्पूर्ण विकास होना असम्भव है। प्रतिरोध और अपराध से न कभी कोई सार्थक मूल्य स्थापित हुआ है न कभी होने की उम्मीद की जा सकती है। इसलिए राष्ट्र निर्माण के लिए परम्परागत रूढ़िवादी मानसिकता को बदलना होगा। आपसी द्वेष को त्यागकर प्रेम और भाईचारा को अपनाना होगा। जिन्होंने तकलीफे झेली, अपमान सहा, घुटन से भरा जीवन जिया। वह परिवर्तन की माँग करते हैं तो उनका साथ देना होगा। उन सारे कारणों को ढूँढ़ना चाहिए जो इसके लिए जिम्मेदार है। आजकल साहित्य की भरमार है परन्तु उसमें वह नहीं है जो दलित साहित्य में है। सर्वेश कुमार मौर्य ने लिखा है कि ''आज दलित साहित्य लेखन प्राचीन काल से चले आ रहे उसी दलित विरोधी साहित्य के प्रतिरोध का परिणाम है। वेद पुराण, महाभारत, गीता, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, याज्ञवल्य स्मृति, मनुस्मृति, रामायण, रामचरित

मानस, कुमारिल भट्ट का श्लोकार्तिका, तेजवार्तिका तथा शंकराचार्य का ब्रम्हा-सूत्र भाष्य आदि सभी दलित-विरोधी साहित्य, जिनका मूल्य आधार वर्ण-व्यवस्था है। यदि इस तरह के साहित्य की भरमार न होती तो दलित साहित्य की कभी आवश्यकता ही न पड़ती। यह एत ऐतिहासिक सत्य है।''[5] अगर कोई क्रिया होगी तो उसकी प्रतिक्रिया भी होगी; यह वैज्ञानिक नियम सर्वथा सत्य है। क्योंकि भारतीय समाज में न हिन्दी साहित्य की कमी और न ही साहित्यकार की। लेकिन उनका आधार वर्ण-व्यवस्था को बनाएं रखने वाला रहा है। जिसमें मानव मुक्ति और मोक्ष प्राप्ति के लिए सारे तत्व उपलब्ध हैं। परन्तु यही साहित्य मनुष्य-मनुष्य के बीच खाईं भी बनाता रहा है। जिसके परिणाम बहुत ही घातक सिद्ध हुए। क्योंकि समाज ने वही अपनाया जो इन साहित्यकारों ने लिखा। उतना ही सोचा जितना इन विद्वानों ने सोचा। अगर किसी ने कह दिया कि क्षत्रिय समाज में जन्म लेने वाला मनुष्य सबसे ताकतवर मनुष्य है, तो वही सही है। भले ही वह बेहद कायर और डरपोक ही क्यों न हो। ब्राह्मण के घर पैदा होने वाला ज्ञानी बना दिया गया और शूद्र के घर पैदा होने वाला अज्ञानी। इस प्रकार के विचारों ने समाज के बड़े वर्ग को एक लम्बी अवधि तक अशिक्षित और अस्पृश्य बनाये रखा। यहाँ तक कि अगर कोई अपनी प्रतिभा के बल पर ज्ञान अर्जित भी कर लिया तो उसे रोकने की चाल चलने से बाज नहीं आए। माता प्रसाद ने लिखा है कि ''रामायण-काल में शम्बूक ऋषि के शूद्र होने पर भी तपस्या करने पर, राजा राम चन्द्र द्वारा उसका वध किया गया। महाभारत-काल में एकलव्य की कथा शूद्रों पर शिक्षा-प्राप्ति में प्रतिबंध पर अच्छा उदाहरण है। गुरू द्रोणाचार्य द्वारा शिक्षा न देने पर भी 'एकलव्य' का दायाँ अँगूठा कटवा लेना शूद्रों के साथ छल-प्रपंच करके उनको आगे बढ़ने से रोकना ही था।''[6] इस तरह की घोर समाज विरोधी गतिविधियों के चलते ही हिन्दी कविता होने के बावजूद भी दलित कविता की उत्पति हुई जिसने अपनी अलग पृष्ठभूमि का निर्माण किया। जिसके केंद्र में बुद्ध, कबीर, रैदास, नाथ, सिद्ध, आंबेडकरवादी और मार्क्सवादी विचारधारा की मुख्य भूमिका रही। इन महापुरूषों ने बड़ी गहराई से सोच-विचार कर जड़ता को तोड़ने का प्रयास किया। उन सारी मान्यताओं को ख़ारिज कर दिया जिसके आधार पर हिन्दी साहित्य टिका था। प्रतिरोध का इतिहास कोई एक दो दिन में नहीं निर्मित हुआ बल्कि सौ साल से भी ज्यादा का है। कँवल भारती ने लिखा है कि ''हिन्दी दलित कविता का इतिहास सौ साल से भी ज्यादा पुराना है। इसे हम और पीछे ले जा सकते हैं, मध्यकाल से वैदिक काल तक दलित ने अपनी व्यथा को हर युग और काल में व्यक्त किया। वह आत्याचार और अन्यायों के खिलाफ सदैव मुखर रहा है। उसने अपने व्यवस्था के विरूद्ध व्यवस्था के प्रतिबंधों को सभी स्वीकार नहीं किया और न सहन किया। आर्यों के वैदिक दर्शन (परलोकवादी) के विरुद्ध अनार्यों (मूलनिवासी) की अजीवक दर्शन-धारा (लोकवादी) ने व्यापक जन-जागरण किया। मनुस्मृति से पता चलता है कि शूद्रों ने ब्राह्मण की सत्ता को स्वीकार नहीं किया और सदैव समानता के स्तर पर ही उससे व्यवहार किया।''[7] संकट की घड़ी में कौन चैन की वंशी बजाता है। सभी उससे निदान ही चाहते हैं। अपनी सुरक्षा के लिए तो जानवर भी दुश्मन को देखर हुंकार भरता है। यहाँ तो पूरी-पूरी मानवीय अस्मिता ही दांव पर लगी हुई है। जातिवाद, अन्धविश्वास, पाखंड, अस्पृश्यता के चलते घुटन से भरी जिन्दगी जीने वाला कैसे शांत बैठेगा।

अपने-अपने ढंग से सब आवाज उठाते रहे हैं। इसके कुछ उदाहरण हजारी प्रसाद द्विवेदी के

'हिन्दी साहित्य की भूमिका में' मिल जाते हैं जिसमें सरहपा नामक सिद्ध कवि ने कहा है कि ''फिर भी उच्च वर्ग के लोगों ने तटस्थता का ही आलंबन नहीं किया। कभी उन्होंने भी उग्रतम आक्रमण किया है। अश्वघोष (कालिदास के पूर्ववर्ती कवि) की लिखी हुई वज्रसूचि एक ऐसी ही पुस्तक है। सरोरूहपाद (सरहपा) नामक सहजयानी सिद्ध जाति व्यवस्था के भयंकर विरोधी थे। वे कहते हैं ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुए थे, जब हुए थे तब हुए थे। इस समय तो वे भी दूसरे लोग जिस प्रकार पैदा हुए होते हैं वैसे ही पैदा हो रहे हैं तो फिर ब्रह्मत्व कहाँ।''[8] कहने का मतलब है कि ब्राह्मणवाद का विरोध विद्वानों द्वारा समय-समय पर किया जाता रहा है।

साहित्य अपने समय का दस्तावेज होता है। वह तत्कालिक समाज की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक स्थिति का हूबहू चित्रण करता है। जिसका प्रमाण सर्वदा साहित्य में मौजूद रहता है। इसलिए कविता में, गीत में तत्कालीन समाज की स्थिति खोजनें का प्रयास किया जाता है क्योंकि उसमें समाज की वास्तविक छवि मिलती है। समाज में समानता और भाईचारा के लिए नाथों, सिद्धों और भक्तिकाल के संत साहित्य के अंतर्गत आने वाले निर्गुणधारा के कवियों ने जो प्रयास किया वह तत्कालिक समाज के यथार्थ से रूबरू कराता है। कबीरदास, रैदास, नानक, सेना, पीपा, धन्ना आदि निम्न जाति के कवि थे। जिनके यहाँ पाखंड, आडम्बर, जातिवाद, अस्पृश्यता आदि का खुलकर विरोध मिलता है। कबीरदास और रैदास जैसे संत कवि हुए जिन्होंने जाति-पांति का खंडन किया। रजत रानी मीनू ने उल्लेख किया है कि ''कबीरदास जात-पात व साम्प्रदायिकता के खिलाफ बोलनें वाले कदाचित अपने समय के प्रखर तेजस्वी और सशक्त कवि रहे। उनकी रचनाओं की सम्प्रेषणीयता बेजोड़ थी। कबीर का रचना कर्म स्वयं इसका साक्षी है :-

''संतन जात न पूछो निरगुनियां
साध ब्राह्मण साध छत्तरी
साध जाती बनियां
साधन मां छतीस कौम है टेड़ी तोर पुछानियां।
हिन्दू तुर्क दुई दीन बने हैं कछू नहीं पहचानियां।''

कबीर के समकक्ष 'रैदास' भी हिन्दी साहित्य में बहुचर्चित कवि हैं। पर उतने निडर शायद नहीं। हम यहाँ उनकी प्रतिनिधि पंक्तियों को उद्धृत करेंगे -

''रैदास वामन मत पूजिये, जऊ होवे गुण हीन,
पूजहि चरण चांडाल के, जऊ होवे गुन प्रवीन।''[9]

इन संतों के पास दलित चिंतन के वे सारे तत्व मौजूद थे। जिससे दलित चेतना का विकास होता है। जातिवाद, ब्राह्मणवाद, वर्ण-व्यवस्था आदि का खंड़न इनका प्रमुख विषय रहा है। इन्होंने भेदभाव को भुलाकर आपस में समानता का पाठ सदैव पढ़ाया। इन संतों के बीच कबीरदास एक ऐसे संत कवि थे जिन्होंने सामाजिक बुराइयों का पूरे तेवर के साथ विरोध किया है। इतना ही नहीं बल्कि समाज में व्याप्त कुरीतियों, अंधविश्वासों, दकियानूसी मान्यताओं और रूढ़ियों में लिप्त लोगों को जमकर फटकार लगाई है। संतों ने वास्तव में इतिहास को एक नया मोड़ दिया। लेकिन भक्ति कवि के भांति उस भावना को नहीं त्याग पाए जिनका दलित कवि प्रतिकार करते हैं।

ओम प्रकाश वाल्मीकि के शब्दों में ''हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में रैदास और कबीर जहाँ एक ओर वर्ण-व्यवस्था के विरुद्ध खड़े दिखाई पड़ते हैं और सामाजिक बदलाव के लिए संघर्ष करते हैं, वहीं वे आध्यात्मिक दलदल में फँसकर उसी सामंती व्यवस्था में विलीन हो जाते हैं। जिसनें वर्ण व्यवस्था को पुक्ता किया है। उनका क्रांतिकारिता सामाजिक स्तर पर गहन अभिप्रेरणा उत्पन्न करती है, हिन्दी साहित्य में विरोध के स्वर को ऊँचा करतीं है और प्रासंगिक बनकर दलित चेतना के लिए प्रेरणा बनती हैं। लेकिन रहस्यवाद, भक्तिवाद, निर्गुणवाद आदि उन्हें उसी परम्परा से जोड़ देते हैं। जिसके विरुद्ध दलित साहित्य खड़ा है।''[10] सगुण-निर्गुण भक्ति, प्रेम आदि दलित रचनाकारों के विषय नहीं हैं। जबकि कबीरदास सगुन-निर्गुण के रहस्य में उलझे रहे। उनका ईश्वर निर्गुण निराकार है जबकि दलित साहित्य में ईश्वर नाम की कोई चीज नहीं है। परन्तु कबीरदास के पास जो आक्रामकता और तेवर है, वहीं दलित साहित्य के पास है। उनका चिंतन दलित साहित्य के लिए प्रेरणा प्रदान करता है। निश्चित ही दलित साहित्य की जो नीव संतों ने रखी थी वह दिनों-दिन अपने मुकाम हासिल करने में सफल दिख रही है। कबीरदास का सामाजिक चिंतन मानव कल्याण के लिए था। जिस प्रकार का आत्मबल इनके पास था। वह बहुत कम लोगों के पास होता है। उन्होंने अकेले ही पाखंडियों को धूल चटाया है। आज कोई कुछ भी कहें लेकिन कबीर के बिन दलित साहित्य अधूरा है। खैर वैदिक काल में निर्मित वर्णव्यवस्था और जाति व्यवस्था पर जिस प्रकार प्रहार किया उसी का परिणाम है कि अब दलित कविता अपनी पहचान बना सकी।

आधुनिक हिन्दी दलित कविता की शुरुआत नाथ, सिद्ध, कबीर, रैदास की ही देन है। जिसकी शुरुआत 'हिराडोम' की कविता 'अछूत की शिकायत' से मानी जाती है। जिसका उल्लेख हरिनारायण ठाकुर ने इस प्रकार किया है कि ''भला हो महावीर प्रसाद द्विवेदी का, जिन्होंने चाहे जैसे छापी यह कविता सितम्बर 1914 की 'सरस्वती' में छपी थी फिर यह कविता ही हीराडोम का इतिहास बन गयी। इसमें जाहिर है कि भारतीय समाज खासकर हिन्दू समाज से हीराडोम अछूतों की दुर्दशा की शिकायत की है। बड़े ही कातर स्वर में हीरा डोम ने दलितों के दीन हीन दशा का हाल सुनाया है। इसमें वर्णित यथार्थ भारतीय समाज में दलित जीवन का नंगा यथार्थ है।''[11] वास्तव में इस कविता में बहुत बड़ा सवाल उठाया गया। जिसे दुनिया प्रजापालक मानती है। जिसने द्रोपदी और प्रह्लाद को बचाने के लिए अवतार लिया। वह हमारा दर्द क्यों नहीं सुनता है। जब कि हम अपनी पसीनें की कमाई खाते हैं, फिर भी सुकून नहीं पाते। कविता ने जातिवाद पर बहुत बड़ा प्रश्न चिन्ह लगाया है और कहा कि डोम जानकर वह भी हमको छूनें से डरता है। इसका उल्लेख रजत रानी मीनू ने इस प्रकार किया है। 'सरस्वती' पत्रिका में 'हीरा डोम' की दलित कविता प्रकाशित हुई। डॉ. मैनेजर पाण्डेय के मत से यह 1914 में छपी। एम.आर. विद्रोही के अनुसार यह 1916 में छपी। पाण्डेय जी इसे दलित चेतना की पहली कविता मानते हैं। इसी सन्दर्भ में वह एक मत कायम करते हैं कि 'प्रमाणिक चेतना की अभिव्यक्ति दलित ही कर सकता हैं।''[12] दलित समाज जैसा जीवन जीता है इनके कविताओं में वही आत्मानुभव दिखाई देता है। ऐसी व्यथा किसी एक की नहीं है बल्कि सम्पूर्ण दलित समाज की है। जिनका सुनने वाला भगवान भी नहीं है। कविता से स्पष्ट हो जाता है कि ऐसी व्यवस्था स्वनिर्मित है। जिसे पढ़ने के बाद संवेदनशील व्यक्ति बेचैन हुए बिना नहीं रहता है। 'अछूत की शिकायत' कविता के विषय में मैनेजर पाण्डेय ने लिखा हैं कि ''अछूत की

शिकायत' आधुनिक चेतना की कविता है क्योंकि इसमें मध्यकाल के संतों की तरह जाति व्यवस्था के शिकंजे से छुटकारा पाने के लिए न संत बनने की आकांक्षा है और न लोक के दुःख के बदले परलोक में सुख पाने की चिंता है।

यहाँ कवि हिन्दू धर्म और हिन्दू धर्म के भगवान से निराश ही नहीं नाराज भी है इसलिए वह कहता है -

हमनी के दुःख भगवनओ न देखताटे
हमनी के कबले कलेसवा उठाइबि।''[13]

यह कविता इसीलिए दलित कविता की आधार स्तम्भ बनतीं है। क्योंकि इसमें जहाँ अपने समाज की पीड़ा है वहीं धर्म के रक्षकों को फटकार है। कवि ने भगवान से सवाल किया है कि तू भी मुझे छूने से डरता है। इस तरह के तार्किक प्रश्नों ने चले आ रहे परम्परागत हिन्दी कविता के सामने चुनौती खड़ी की जिससे दलित कविता का आगाज हुआ। अपनी बात को अपनी भाषा और अपनी अनुभूति में कहकर सबको चौका दिया। वास्तव में हिन्दू समाज में व्याप्त जातिवादी व्यवस्था पर गहरा प्रहार किया। ऐसे ही आक्रोश अछूतानन्द के कविताओं में दिखा है। जिसका उल्लेख हरिनारायण ठाकुर ने किया है कि ''आछूतानन्द' ने अपनी कविताओं में वर्ण-व्यवस्था की तीखी आलोचना की है। उन्होंने अपने गीत और गजलों द्वारा मनु और मनुवादी व्यवस्था की खिल्लियाँ उड़ायी है। अपनी कविताओं में दलितों के गौरव पूर्ण इतिहास की याद करते हुए स्वामी ने उन्हें सतर्क और सावधान किया है। आत्म-हीनता की भावना को त्यागकर दलितों को सीना तानकर जीने की प्रेरणा देते हैं। इन्हीं भावों को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने जागरण अन्य गीत भी गाये। हिन्दू-वंश का गौरव दिखाते हुए स्वामी जी ने 'थियेटर ध्वनि' कविता लिखी। इस कविता द्वारा स्वामी जी ने तत्कालीन समय और समाज का चित्रण करते हुए दलित जीवन का जो मार्मिक और यथार्थ चित्र खींचा है, वह स्वयं स्पष्ट है -

मनुजी तुमने वर्ण बना दिए चार।
जा दिन तुमने वर्ण बनाये, न्यारे रंग बनाये क्यों ना
गोरे ब्राह्मण लाल क्षत्री बनिया पीले बनाये क्यों ना
शूद्र बनाते काले वर्ण के, पीछे को पैर लगाये क्यों न?।''[14]

इसका मतलब यह है कि जिस ईश्वर की कल्पना की जाति है। उसने अलग-अलग नहीं किया। अगर उसे अलग करना होता तो पैदा करने से पहले रूप, रंग, आकार आदि में भिन्नता करता। परन्तु उसने सबको समान बनाया। लेकिन जड़ मानसिकता वाले आज भी इसको मानने को तैयार नहीं हैं। इस प्रकार अनेक संतों, लेखकों, प्रगतिशील लोगों ने वैज्ञानिक और तार्किक ढंग से अपनी बात रखी है। जिसका परिणाम यह हुआ कि यह अब असमानता का विरोध पूरे तेवर के साथ दलित रचनाकार कर रहे हैं। परिवर्तन लाने का सबसे बड़ा श्रेय डॉ. अम्बेडकर को जाता है। जिन्होंने सुस्त पड़ चुकी नसों में जान डाला। दलित साहित्य में डॉ. अम्बेडकर के प्रभाव को समझने के लिए ओमप्रकाण वाल्मीकि का यह कथन काफी है ''दलित साहित्य का वैचारिक आधार डॉ. अंबेडकर का जीवन-संघर्ष एवं ज्योतिबा फुले का दर्शन उसकी दार्शनिकता का आधार है। सभी दलित रचनाकार इन बिन्दुओं पर एकमत है कि ज्योतिबा फुले ने स्वयं क्रियाशील रहकर सामंती मूल्यों

और सामाजिक गुलामी के विरोध का स्वर तेज किया था। ब्राह्मणवादी सोच और वर्चस्व या प्रभुत्व के विरोध में उन्होंने आन्दोलन खड़ा किया था। यही कारण कि जहाँ रचनाकारों ने ज्योतिबा फुले को अपना विशिष्ट प्रचारक माना है वहीं डॉ. अम्बेडकर को अपना शक्तिपुंज स्वीकार किया है।''15. वास्तव में डॉ. अम्बेडकर दलित समाज के लिए शक्ति बने। उनके द्वारा दिया गया मूलमंत्र शिक्षित बनो, संगठिन बनो, संघर्ष करो से लोगों के अन्दर जन चेतना का संचार हुआ। साथ ही वे अपनी अस्मिता की सुरक्षा और सम्मान के लिए तत्पर हुए। शताब्दियों से ज्ञान विहीन अंधकार में जी रहे लोगों के अन्दर अद्‌भुत क्षमता का विकास हुआ।

कविता का जो रूप नाथों, सिद्धों से मिला था। अम्बेडकरवाद के बाद उसमें आक्रोश, तेवर और आक्रामता दिखने लगीं। दलित कवि अपनी बाते स्वयं की जुवान से सुनाने लगे। लोगों ने तव विरोध भी किया। लेकिन कुछ लोगों ने समर्थन किया कि जिस समाज को सदियों से बोलने न दिया गया हो वह अगर वोले तो उसमें कोई बुराई नहीं। क्योंकि उसमें कल्पना नहीं हैं, वल्कि जीवन की वास्तविक सच्चाई है। अगर उनके पास आक्रोश है तो वह वाजिब है। क्योंकि इससे संवेदनशील व्यक्ति के रोंगटे खड़े हुए। स्वर्ग नर्क की कल्पना छोड़कर जमीन पर खुशहाल रहने वाली आवाज की दुहाई देने वाले लोग दिखाई दिए। बदतर जीवन स्थितियों के खिलाफ बेहतर जिन्दगी के लिए संघर्षशील लोग एकजुट हुए। चारों तरफ हो हल्ला हुआ अभद्र कहा गया, जंगली कहा गया लेकिन इसकी परवाह किये बिना दलित साहित्यकार अंवेडकर के विचारों के साथ खड़े रहे।

इन साहित्यकारों के क्षेत्र में डॉ. अम्बेडकर का जीवन-दर्शन मुख्य भूमिका में होता है। जिसका उल्लेख ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इस प्रकार किया हैं कि ''दलित चिंतन डॉ.अम्बेडकर के जीवन-दर्शन में मुख्य उर्जा ग्रहण करती है। इस तथ्य से सभी दलित लेखक एकमत हैं। दलित चेतना के प्रमुख विंदु हैं -

1.मुक्ति और स्वतंत्रता के सवालों पर डॉ. अम्बेडकर के दर्शन को स्वीकार करना।
2.वुद्ध का अनीश्वरवाद, अनात्मवाद, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, पाखंड-कर्मकांड विरोध।
3.वर्ण-व्यवस्था का विरोध, जातिभेद-विरोध, साम्प्रदायिकता विरोध।
4.अलगाववाद का नहीं भाईचारा का समर्थन।
5.स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय की पक्षधरता।
6.सामाजिक बदलाव के लिए प्रतिबद्धता।
7.महाकाव्य की रामचन्द्र शुक्लीय परिभाषा से असहमति।
8.पारम्परिक सौन्दर्यशास्त्र का विरोध.
9.वर्णविहीन, वर्गविहीन समाज की पक्षधरता
10.भाषावाद, लिंगवाद का विरोध।''16.

दलित कविता हो या अन्य साहित्यिक, सामाजिक गतिविधियां इन्हीं अम्बेडकरवादी सिद्धांतों पर चलती हैं। जिसके केंद्र में मानव मुक्ति, समानता और भाईचारा है। लेकिन पूंजीवाद, ब्राह्मणवाद, आसमानता के प्रति आक्रोश है। दलित कविता की पृष्ठभूमि का निर्माण अचानक नहीं हुआ। इसके निर्माण के लिए बहुत दिनों से संघर्ष होता रहा है। डॉ. एन.सिंह ने लिखा है कि ''हिन्दी दलित कविता की शुरूआत सही मायने में उन्नीसवीं सदी के आठवे दशक में हुई। इसकी प्रेरक

डॉ.अम्बेडकर की विचारधारा तो थी ही, महात्मा फुले का संघर्ष, मार्क्स की क्रांति दृष्टि और अश्वेतों द्वारा लिखा गया ब्लैक लिटरेचर भी था। इसके प्रारंभिक दौर में हम माता प्रसाद और डॉ. शिरोमणि होरिल जैसे कवियों के सृजन को देख सकते हैं।''[17] इस प्रकार कहा जा सकता है कि हिन्दी दलित कविता की पृष्ठभूमि के निर्माण का इतिहास वहुत पुराना है। इसमें प्रतिरोध है तो वह समानता के लिए है। परम्परागत सौन्दर्य का खंडन है तो पूरे तर्क के साथ है। जो भी हो इसके निर्माण का इतिहास हिन्दी साहित्य में मौजूद है। जिसने लम्बे समय तक राजमहलों और फूलों की वादियों का वर्णन तो किया है लेकिन भूख, प्यास से जूझ रहे झोपड़ियों की तरफ देखना अच्छा नहीं समझा। जिससे दलित कविता के स्वरूप का निर्माण हुआ।

संदर्भ ग्रन्थ :-

1.माता प्रसाद, हिन्दी काव्य में दलित काव्य धारा, विश्व प्रकाशन, वाराणसी :1

2.इंतिजार नईम, दलित समस्या जड़ में कौन?, साहित्य सौरभ:29

3.ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, राधा कृष्ण प्रकाशन : 60

4.डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वांग्म्य, खंड-1 : 89

5.सर्वश कुमार मौर्य, यथार्थवाद और दलित साहित्य, स्वराज प्रकाशन : 123

6.माता प्रसाद, हिन्दी काव्य में दलित काव्य धारा, विश्व प्रकाशन, वाराणसी : 11

7.कँवल भारती, दलित कविता का संघर्ष, स्वराज प्रकाशन : 13

8.हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका : 42-43

9.रजत रानी मीनू, नवे के दशक में हिन्दी दलित कविता, दलित साहित्य प्रकाशन : 10

10.ओम प्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौदर्न्य शास्त्र : 73

11.हरिनारायण ठाकुर, दलित साहित्य का समाज शास्त्र : 403

12.रजत रानी मीनू, नवे के दशक में हिन्दी दलित कविता, दलित साहित्य प्रकाशन : 12

13.मैनेजर पाण्डेय, दलित साहित्य और दलित दृष्टि, संपा.सर्वश कुमार मौर्य : 158

14.हरिनारायण ठाकुर, दलित साहित्य का समाज शास्त्र : 405-406

15.ओम प्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र : 31

16.ओम प्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र : 53

17.प्रणव कुमार बंदोपाध्याय, दलित प्रसंग : 64

...

संपर्क-सूत्र :- शोधार्थी, हिन्दी विभाग, हैदरावाद विश्वविद्यालय, हैदरावाद-500 046

मो:936948212, 8074425417

+91-9460711896 About Archive Coming Editor Founder Home Latest Peer Reviewed Journal UGC Ca

डॉ. माणिक (संस्थापक)
(PEER REVIEWED/REFEREED JOURNAL)
साहित्यिक ई–पत्रिका
अपनी माटी
ISSN 2322-0724 Apni Maati
www.apnimaati.com
सम्पादक जितेन्द्र यादव ई मेल apnimaati.com@gmail.com

निबंध आलेख शिक्षा किसान विमर्श बातचीत स्त्री विमर्श आदिवासी विमर्श दलित विमर्श कहानी कविता समीक्षा व्यंग्य फीचर

नवीनतम रचना 34 कविताएँ : नरेश अग्रवाल 34 अपनी माटी: 34वाँ अंक अनुक्रमणिका 34 आलेख : 'अपने अपने राम' उपन्यास में अभिव्यक्त समक

Home » 26 » अपनी माटी ई-पत्रिका » आलेख » दलित विमर्श » UGC Care Listed Issue » शोध आलेख: हिंदी दलित कविता का स्वरुप/ सन्दीप कुमार

शोध आलेख: हिंदी दलित कविता का स्वरुप/ सन्दीप कुमार

26, अपनी माटी ई-पत्रिका, आलेख, दलित विमर्श, UGC Care Listed Issue,

हिंदी दलित कविता का स्वरुप

भारत एक लोकतांत्रिक देश है। यहाँ विभिन्न संस्कृतियों, कलाओं, धर्मों एवं भाषाओं का संगम है जिसमें विविध समुदायों, वर्गों के लोग जीवन यापन करते हैं। सबका जीवन समान और सुचारु रूप से चल सके इसलिये एक संविधान का निर्माण किया गया है; जिसमें सम्पूर्ण देशवासियों के लिए एक सामान व्यवस्था है एवं दलित, शोषित, उपेक्षित, गरीब, असहाय और पीड़ित वर्ग के हितो के रक्षा के लिए बहुत से कानून है। परन्तु आश्चर्य होता है कि ये लोग शोषण मुक्त नहीं है। जिसकी लड़ाई आजाद भारत में भी चल रही है। बहुत से संगठनिक, राजनीतिक, साहित्यिक आन्दोलन देश के कोनें-कोनें चल रहे हैं। अपने हक के लिए हर कोई आवाज उठा रहा है। मानव-मानव में समानता के लिए जद्दोजहद चल रही है। सभी यह चाहते हैं कि सामान अधिकार और सम्मान मिले। इसी लड़ाई को समाज में सदियों से बेबस और बदतर जिन्दगी जी रहे दलित वर्ग लड़ रहे हैं।

उन्होंने अपनी आवाज साहित्य के विभिन्न विधाओं के माध्यम से उठाया है। कविता उसी सबमे एक सशक्त विधा है। जिसने दलित समाज के लोगों के अंदर चेतना का संचार किया है। इन शोषित लोगों ने अपने दुःख दर्द को कहने के लिए स्वयं की भाषा, सौन्दर्य का निर्माण किया। तब हिन्दी साहित्य के प्रबल समर्थकों ने दावा किया कि दलित हित में हिन्दी साहित्य में बहुत कुछ लिखा गया है। परन्तु कितने भी दावे किये जाय, नारे लगाये जाय, सब व्यर्थ है। क्योंकि दलित रचनाकारों ने सिद्ध कर दिया है कि उसमें वह संवेदना नहीं है जो दलित साहित्य में है। इस विषय में संदीप जायसवाल द्वारा लिखित विचार उपयुक्त है "कि इसी के साथ यह बात भी ज़ाहिर है कि नवजागरण काल में दलित चेतना को विशिष्ट रुप में नहीं व्याख्यायित किया गया, बल्कि गाँधी, आचार्य शुक्ल, प्रेमचंद निराला आदि की दृष्टि में सम्पूर्ण शोषित समाज था एक संवेदनशील रचनाकार अपनी संवेदना को जातीय नहीं वैश्विक और सार्वजनीन पृष्ठभूमि में देखता है। निराला जब प्रभु से प्रार्थना करते हैं –

'दलित जन पर करो करुणा
दीनता पर उतर आये प्रभु तुम्हारी शक्ति अरुणा"1

हाल का अंक

सदस्यता लें
पोस्ट
टिप्पणियां

नवीनतम रचनाएँ
अपनी माटी: 34वाँ अंक अनुक्र
अपनी माटी,चित्तौड़गढ़
आलेख : 'अपने अपने राम' उप अभिव्यक्त समकालीन संदर्भ / यादव
अपनी माटी,चित्तौड़गढ़
कविताएँ : गोलेन्द्र पटेल
अपनी माटी,चित्तौड़गढ़
संपादकीय : ... - खिड़ नन्हीं लड़की', ... द्र यादव

इस प्रकार दलित साहित्य में प्रभु करूणा और दया नहीं है। वल्कि शोषण के लिए निर्मित सारे जड़ों को उखाड़ फेकने की प्रतिबद्धता है। दलित कविता के स्वरुप की निर्मिती से पहले दलित कविता को समझना आवश्यक है। दलित कविता दलित जीवन की यथार्थ कथा कहती है। यह कविता हवा में बात न कर जीवन के सच्चाईयों से रूबरू कराती है।यह न तो कल्पना में डूबती है और न हि सौन्दर्य खोजती है। इसके माध्यम से दलित कवि अपनी बात करते हैं। जिसमें उनके जीवन के अनुभव और दलित समाज के अनुभव व्यक्त होते हैं।

दलित कवियों की कविता पढ़ते समय संवेदनशील व्यक्ति के सामने विभिन्न प्रकार के चित्र उभरकर सामने आ सकते हैं। कभी वह क्रोधित हो जाता है तो कभी गहन विचार धारा में डूब जाता है। या कह सकते हैं जो भुक्तभोगी रहता है उसकी आँखे नम हों जाती है।जिसका वर्णन दलित कवि कविता के माध्यम से करतेहैं। यह दलित जीवन के दमित, शोषित, पीड़ित लोगों के अन्दर पूर्व परम्परागत व्यवस्था के प्रति नकार और विद्रोह का रूप जागृत करती है। यह कविता लोगों के बंद आँखों को खोलती है। उनके अधिकारों और आत्मसम्मान के प्रति सचेत करती है। हरपाल सिंह 'अरुष' दलित कविता के विषय में लिखते हैं कि "कविता पर पर्याप्त विचार किया जाना चाहिए इस लिए जरूरी है क्योंकि कविता ग्राहता,स्वीकार्यता और प्रभावशीलता के नाजुक स्वभाव के कारण संवेदात्मक अभिव्यक्ति का सशक्त कलात्मक माध्यम है। यहाँ पर यह जान लेना बहुत जरूरी है कि दलित काव्य पारम्परिक काव्य की अपेक्षा आगे के स्तर पर जाकर क्रिया शील हो रहा है।"2

दलित कविता आज ऐसे विमर्श के रूप में उभरकर आयी है जिसने पूर्व परम्परा का खंडन किया है, साथ ही अपनी अलग पहचान बनाई है। इसके अलावा हिन्दी साहित्य के विकास में सहायक भी सिद्ध हो चुकी है। अब यह भी कहा जाने लगा है कि हिंदी साहित्य को एक नया विमर्श मिला, जिसने समाज की सच्चाइयों को उजागर किया। जिसको परम्परागत साहित्यकार छोड़ते रहे है।

हलाकि दलित साहित्य की झलक हमे संत साहित्य में दिखाई देती है। जिनमें से कबीर,रैदास आदि संतो का नाम उल्लेखनीय है, जिसको भुलाया नहीं जा सकता है। परन्तु दलित कविता का जो वास्तविक रूप मिला है। वह हीराडोम की कविता से मिलता है। क्योंकि उसके पहले ऐसी वेदना कहीं नहीं मिलती, जितनी इस कविता में मिलती है। संत साहित्य भी उतना विस्तार दलित कविता का नहीं कर पाया। जितना हीरा डोम की कविता में दिखाई देता है। उन्होंने कविता के माध्यम से अनेक सवाल उठाया है। जो तार्किक और यथार्थ है, जिसका असर तात्कलिक समाज पर पड़ा। क्योंकि उन्होंने भगवान को भी कटघरे में खड़ा किया है। कँवल भारती ने लिखा है "अछूतानन्द की परम्परा के दलित कवि केवलानंद ने वर्णव्यवस्था का बहुत ही वैज्ञानिक खंडन करते हुए यह कविता लिखा है -

"ब्राह्मण कहते मुख से पैदा मुख फार फिर आये क्यों ना ?

क्षत्री कहते भुजा से पैदा भुजा फार फिर आयें क्यों ना।

बनिया कहते उदर से पैदा टूंडी में बिल बनायें क्यों ना।

चारो वरण भाग द्वारे ही आये कहने में शर्मायें क्यों ना।"3

इस प्रकार के वैज्ञानिक और तार्किक सवाल का जवाब किसी के पास नहीं रहा। यह वर्ण व्यवस्था पर जबरदस्त प्रहार है।

हमारे समाज में धारणा तो ऐसी रही कि मानव का जन्म पुरुष के मुख से हुआ है,जिसका उल्लेख वेदों में मिलता है। इसलिए जो निचले क्रम यानी पैर से उत्पन्न हुआ है, वह सबकी सेवा करेगा। परन्तु यह अतार्किक सिद्ध हो चुका है, क्योंकि इसका खंडन केवलानन्द ने पहले ही कर दिया था। साथ ही चेतावनी भी,दी कि सभी एक ही रास्ते से आये हैं, यह कहने से तुम क्यों भाग रहे हो। दलित साहित्य के विषय में सी. बी. भारती ने लिखा है कि "दलित साहित्य काव्यशास्त्रीय पद्धतियों,काव्य चेतनाओं वर्जनाओं का कोई बंधन नहीं स्वीकार करता। वह प्राच्य व पाश्चात्य सौन्दर्य निरूपण पद्धतियों को नकारता है। दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र महान यूनानी विचारक सुकरात के इन विचारों का अनुगामी है कि 'गोबर से भरी टोकरी भी सुन्दर बन जाती है,या वह अपना सब कुछ उपयोग रखती है। जबकि सुवर्णढाल भी असुन्दर है,यदि वह उपयोग की दृष्टि से अपूर्ण है' सुकरात के इस विचारधारा के अनुसार अधिकतम हिन्दी साहित्य निरर्थक व अनुपयोगी सिद्ध होता है।"4दलित कविता में परम्परागत सौन्दर्य को खोजना बेईमानी है। क्योंकि इस कविता के केंद्र में दमित, शोषित, पिछड़ा, लाचार है। इनका सौन्दर्य भूखे पेट को भरने के लिए साधन जुटाने में समाहित हो जाता है। वह अपने उपयोग की वस्तुओं में अपना सौन्दर्य देखता है। मजदूरी करते समय प्रयोग की जाने वाली वस्तुओं रापी, कुदाल, फावड़ा,हसियां आदि उसके लिए सौन्दर्य है। प्रो. टी कट्टीमनी ने इसका उल्लेख दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र का समाज विज्ञान नामक लेख में लिखा है कि "दलित साहित्य के कथावस्तु में न ताजमहल की सुन्दरता है न लाल किये की भव्यता है। मामूली से मामूली गरीब, लाचार, अशिक्षित फटीचर, घर बार हीन, मूक दलित इस साहित्य का नायक है तथा केन्द्र विंदु है।"5

इस प्रकार जब वे देखते हैं कि पूर्व विद्धानों ने उन्हें सदैव हाशिए पर रखा तब अपनी बात को अपने भाषा में कहना शुरू किया। जिससे कविता के नयें स्वरुप का जन्म हुआ जिसका उल्लेख संदीप जयसवाल ने 'भारतीय दलित काव्य की वास्तविकताएँ नामक लेख' में लिखा है कि "कविता का स्वभाव ही वेदना और पीड़ा में ढला होता है। अतः दलित लेखक कविता जैसी सशक्त विधा से दूरी बनाकर अपनी भावनाओं को कैसे अभिव्यंजित कर पाते। आधुनिक काल में छपाई की सुविधाओं और दलित आन्दोलन के 1960 के आस-पास उभार ने आधुनिक दलित कविता का नया रूप गढ़ा।"6

दलित कविता के स्वरुप का निर्धारण अचानक असमान से नहीं टपका बल्कि सदियों से हुए अन्याय का परिणाम है जिसने उन लोगों की चेतना को झकझोरा जो सदियों से मूक बने रहे। चारों तरफ चौखटों में जकडे हुए थे। महान समाजशास्त्री राजनीतिज्ञ और चिंतक रूसो का यह कथन सवर्था सत्य सिद्ध हुआ। जिसने कहा था कि 'मनुष्य स्वतंत्र पैदा हुआ है, परन्तु चारों तरफ जंजीरों में जकड़ा हुआ है'। दलितों का जीवन तो ऐसा ही रहा, जब वह पैदा होता है और बड़ा होने पर दुनिया को देखता है। फिर अपने आप को उस सामाजिक समानता के तराजू में तौलता है। तब दुनिया के सातों अजूबे कमजोर पड़ जाते हैं। उसके अपमान, तिरस्कार और शोषण के

अपनी माटी,चित्तौड़गढ़ De
कविताएँ : नरेश अग्रवाल
अपनी माटी,चित्तौड़गढ़ De
कविताएँ : आशीष कुमार वर्मा
अपनी माटी,चित्तौड़गढ़ De
आलेख : आदिवासी दृष्टि और प्रारंभिक उपस्थिति: दुलायचन्द्र जैन
अपनी माटी,चित्तौड़गढ़ De
आलेख : रेहन पर रग्घू : एक अ वर्मा
अपनी माटी,चित्तौड़गढ़ De
आलेख : गोदान:एक संवाद / र
अपनी माटी,चित्तौड़गढ़ De
आलेख : 'अपनी कथाओं में आ स्त्रियों का वध करेंगे आप' / ए
अपनी माटी,चित्तौड़गढ़ De
आलेख : हिंदी आलोचना की वै विवेक भट्ट
अपनी माटी,चित्तौड़गढ़ De
आलेख : अलका सरावगी के उ जनसंचार विमर्श / मैना शर्मा
अपनी माटी,चित्तौड़गढ़ De
आलेख : 'अस्थियों के अक्षर' म अपराधीकरण तक का सफ़र /
अपनी माटी,चित्तौड़गढ़ De
आलेख : नई सदी के कथाजग संवेदना के शिल्पी 'तरुण भटन माली
अपनी माटी,चित्तौड़गढ़ De
समीक्षा : कब तक मैला साफ क तक मारे जाओगे / डॉ. पूनम तु
अपनी माटी,चित्तौड़गढ़ De
शोध आलेख : आत्मकथा लेख डॉ. राजकुमार व्यास
अपनी माटी,चित्तौड़गढ़ De
पाठक साथी
2 7 6 4 7 5 5
रचनाएं यहाँ खोजिएगा
ज्यादा जानकारी के लिए यहाँ क्लिक क
टिप्पणियाँ
Anonymous
"kya aap ne baba jaharveer par

चैताली सिन्हा अपराजिता
"सुंदर अभिव्यक्ति और यथार्थपरक भी
Dr.R.Ramkumar

आगे, क्योंकि जानवरों की हालत तो ठीक थी पर इनकी नहीं। लेकिन अब वर्तमान में उनकी आँखें खुली, तब कुछ सामाजिक परिवर्तन दिखा। स्वतंत्रा पूर्व की स्थिति दलित कविता के लिए बहुत अच्छी नहीं रही। उसमें वह तेवर नहीं था जो स्वतंत्रा के बाद की कविता में दिखाई पड़ता है। कँवल भारती ने लिखा है कि "जिस समय हिन्दी में 'नया क्या है' और कविता क्या है? कि बहस चल रही थी, उस समय दलित कवियों की दूसरी ओर नई पीढ़ी तैयार हो रही थी।अभिप्राय यह है कि हिन्दी में दलित कविता अपने सामाजिक सरोकारों के साथ तब भी थी,जब भद्र कवि बसंत, सामंतो की प्रशस्तियाँ और हिंदुत्व लिख रहे थे।यदि हम 1950 तक की हिन्दी कविता को देखे तो वह इसी रास रंग की कविता है। उसमें वसंत की बहार है।

देस देस में मचति मंजू मन मादक होरी

उड़त अबीर गुलाल चोच सो झोरी

चारहु ओर घमार चारु चैती धुनी गावत

उफ़ मृदंग कर ताल ताल मुह चंग बजावत।"7

उस समय कविता में रास रंग की बातें ज्यादा चल रही थी। लग रहा था समाज में कोई समस्या ही न रही हो। उस समय बाबू जगन्नाथ [1900] महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथली शरण गुप्त 1908, सियाराम शरण गुप्त 1912, जयशकर प्रसाद 1936, की कविताओं को को देखकर लगता है कि तात्कालिक समाज में कोई समस्या ही नहीं थी। सब कुछ ठीक-ठाक चल रहा था। जनता खुश थी, कोई सामाजिक समस्या नहीं थी, न ही आर्थिक समस्या थी। लेकिन दलित कविता इससे अलग स्वरुप लिए हुए है। इसमें रास, रंग, गीत-संगीत का अभाव है। प्रो. टी. कट्टीमणि द्वारा वर्णित इन पंक्तियों से समझा जा सकता हैं जिसमें उन्होंने ने कहा है कि "यह समझने के लिए एवं दलित साहित्य की मूल संवेदना का विश्लेष्ण करने के लिए हमें भारतीय समाज विज्ञान का विश्लेष्ण करना अनिवार्य बन जाता है –

ओ रास्ते में जाने वाले

मुझे गाने को मत कह देना

यह नहीं गाना

है अंतड़ियों की धड़कती आग

जैसी कविता में रचना का यहीं संकेत अभिव्यक्त होता है। रास्ते में जाने वाले कवि से अनुरोध करते हैं कि गाओ, तुम्हारा गाना सुन्दर है लेकिन कलाकार कहता है यह गाना नहीं है और मैं गा भी नहीं सकता, क्योंकि यह मेरे अताडियों की अग्नि है, इसलिए मैं गा नहीं पाता, इस तरह गाने के लिए अनुरोध करने वालों को विनयपूर्वक नकार देता है।"8 दलित कविता में दुःख- दर्द मिलता है न कि आनंद और संगीत। दलित लेखक मुक्ति के लिए लिखते हैं। भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति करते हैं। सूखे पड़ चुके वृक्षों में जान डालते हैं और काठ बन चुके जड़ बुद्धि वालों को फटकारते हैं।

यह सब वह समाज में भाईचारा बनायें रखने के लिए करते हैं। पराधीनता को त्यागकर स्वाधीनता के लिए तत्पर दिखाई देते हैं। 'भारतीय दलित साहित्य के विद्रोही स्वर' की प्रस्तावना में विमल थोराट ने लिखा है कि "दलित कवि का यह तेवर संघर्ष के अलाव में पककर आता है, वह जानता है कि अब तक की सहनशीलता और कर्म सिंद्धांत के झूठ से भयभीत दलित वर्ग को दास्यत्व से मुक्ति तब तक नहीं मिल सकती जब तक वह स्थापित मूल्यों से सीधे नहीं टकराता। बाबा साहब ने कहा था 'गुलाम को जब यह अहसास होगा कि वह गुलाम हैं तो उन बेड़ियों को खुद ही काटकर फेकेंगा'। पंजाबी के सशक्त हस्ताक्षर मदनवीरा ने गुलामी का वह दर्दनाक अहसास और मुक्ति की आकांक्षा की ताकत को घोड़े की प्रतिकात्मक शक्ति के रूप दर्शायी है –

घोड़े के पास। सिर्फ हां में हिलाने के लिए सिर है

नर्म पीठ है

और दिशाहीन वह दौड के लिए चार टागें हैं

वह दौड़ता है सवार के हुक्म पर.....

घोड़ा नहीं जानता है कि वह पैरों से खोद सकता है धरा

दुलतित्यों से तोड़ सकता स्वर चेहरा...।"9

एक बात सर्वथा सत्य है कि जुल्म करने वाले से ज्यादा गुनाहगार जुल्म सहने वाला होता है। अगर लगातार किसी ने गुलाम बनाने की साजिश की तो इसमें कुछ दोष उन लोगों का है जो जानबूझकर अनजान बने रहे। लेकिन यहाँ तो दुनियां रोज बनती और बिगड़ती है। कल जो सो रहा था वह आज जाग रहा है। दलित कविताओं ने दलित चेतना को, न केवल जगाया बल्कि सीधे-सीधे बुत हो चुके मस्तिष्क पर जबरजस्त प्रहार किया। तब-लोगों की आँखें खुल गयी, वीभत्स जीवन को देखकर रूह काप गयी, कलेजे हाथ में अ गए।

"कविताएं ताज़ा फुलकों की तरह सौंधी

Rajendra

"satik vivechan vishleshan mam"

Yogesh Sharma

"apni maati is a best hindi blog t d..."

पुरानी रचनाएं यहाँ मिलेंगी

फ़रवरी (55)

दलित कविता पर आरोप-प्रत्यारोप भी लगनें लगे,अनगढ़पन, खुदरापन, विद्रोहीपन,असभ्य आदि। लेकिन जितने भी आरोप लगे उसे निराधार करते हुए। दलित रचनाकार बेपरवाह होकर अपनी बात कह रहे हैं। क्योंकि अब उनके समझ में स्वत्रंता और समानता का मार्ग आ गया है। वह अब सपाटबयानी से नहीं बल्कि अपनी अनुभूतियों के आधार पर रचना कर रहे हैं।

प्रेम और सौन्दर्य की प्रशंसा करने वालों को क्या समाज के इस वर्ग को नहीं देखना चाहिए? हिंदी साहित्य की दृष्टि से 1900 से 1918 तक का समय जागरण सुधार काल माना जाता है। पर इस काल के कवि भी न दलित रचनाशीलता से परिचित नजर आते हैं,न ही उनकी कविता में दलित प्रश्न दिखाई पड़ता है। इस प्रकार देखा गया है कि आज दलित अपने बनाये मार्ग के अनुसार उच्चतम शिखर पर पहुँच रहा है। तब सब लेखन की समस्या को लेकर चल रहे हैं। आखिर इनको पहले ये समस्या क्यों नहीं दिखी? आज जब इन्होंने अपनी शक्ति पहचानी और अपनी शक्ति का अहसास हुआ तब इन्होंने शोषण के खिलाफ आवाज उठाया है। जिससे हमारा साहित्य एक लम्बे समय तक अछूता रहा है। उसको दलित कवियों ने जोड़ने का प्रयास किया। दलित कविता केवल नकार और विद्रोह तक सीमित नहीं है। बल्कि यह समाज के सबसे निचले से निचले व्यक्ति की पहचान कराती है। उनको अधिकार और सम्मान दिलाने के लिए लड़ती नजर आती है। जब जागरण सुधार काल चल रहा था उसी समय हीरा डोम ने अपनी आवाज उठाई थी। जिनके बारे में कँवल भारती ने लिखा है कि "हीरा डोम उसी काल खंड में ईश्वर को कटघरे में खड़ा कर रहे थे। वह पूँछ रहे थे की खम्भा फाड़कर प्रह्लाद को बचाने वाला और कनकी अंगुली पर पर्वत उठाने वाला भगवान अछूतों की क्यों नहीं सुनता? क्या वह भी डोम जान उन्हें छूने से डरता है? यथा

खम्भवा के फारी प्रहलाद के बचवले जो

ग्राह के मुहें से गजराज के बचवले

धोती जुरजोधना कई भैया छोरत रहै

परगट होके तहां कपडा बढ़वले।

मरले रवानवाँ के पलले भभिखना के,

कानी अंगुरी पै धैके पथरा उठवले।

कहंवा सुतल वाटे अब,डोमा जानि हमनी के छुए से देरइले।।"10

हीरा डोम ने इस प्रकार के सवाल उठाकर उस समय के कवियों को निरुत्तर कर दिया था। क्योंकि उन्होंने अपनी कविता में जो प्रखर दलित चेतना को उभारा वह तार्किक है। जिसमें उन्होंने भगवान को केंद्र बिन्दु में रखा है। सीधा-सीधा उन्हीं से पूछ्ना की जाति के नाम पर तू भी भेदभाव करता है। क्योंकि जब भी सवर्णों पर मुसीबत आयी है। तेरा अवतार हुआ है, तुझे हमारे मुसीबतो का एहसास नहीं हुआ है। जब सब तेरे ही संतान हैं तो ये कैसा भेदभाव। तभी उस परम्परागत व्यवस्था के सम्मुख सवाल खड़ा होता है कि अगर मेरा नहीं सुनता तो मै विश्वाश कैसे करू तुझ पर? दलित कवि सब का विरोध करते हैं। धर्म का ईश्वर का,सौन्दर्य का शिल्प का आदि। इन कवियों की मान्यता है कि समाज में सबको सामान दृष्टि से देखा जाना चाहिए। दलित कविता की जो धारा संत साहित्य से होकर चली थी। वह अब धीरे-धीरे वास्तविक रूप में पहुँच चुकी है। अर्थात आजादी के बाद इस कविता का काफी विकास हुआ।जिसमें यह मुख्य धारा में जा मिली है। इस प्रकार अब जो कवि आये हैं वे तेवर के साथ उपस्थित होते हैं। वह सीधा जवाब देना सीख गये हैं। वे अब किसी भी तरह की गफलत में नहीं पड़ना चाहते हैं। बल्कि अपने अभिव्यक्ति को बड़े तेवर के साथ प्रस्तुत करते हैं। कविता के विषय में कहा जाता है।"अभिव्यक्ति में सहज होने पर भी तासीर उत्तेजक है।ये आवेग और आवेश की कवितायें हैं। ज्वलनशीलता इन कविताओं का गुण धर्म है। ये तेजाब में भिगोयी कवितायें है। इन कविताओं को पढ़ते समय जबान जलती है, आँखे सुर्ख हो जाती है, मन संताप से भर आता है, सब कुछ नोच-चोट देने की तबियत होती है। मनुष्य को हजारों हजार सालों से जिस तरह कीलित रहना पड़ा, उसके अतीत वर्तमान और आगामी काल को अंधकार से भर दिया गया था।सारी भावनाएं छीन ली गयी थी। उन्हें खोज लाने वाले ये अग्नि धर्मी कविहै।11 दलित कविता में कवि उस घटना की ओर ध्यान देते हैं, कि उनके पुरखों को किस प्रकार से अपमानित किया गया। वह अपने आप को लिखने से रोक नहीं पाते हैं। उसके स्मृतियों में घोर अपमान के खिलाफ आवाज उठाना उनका दायित्व हो जाता है। ये इन सब पाखंडो अंधविश्वास के तहस- नहस कर देना चाहते हैं जो उन्हें जीवन जीने का अधिकार तक नहीं देना चाहते थे।इसलिए इन्होंने अपनी एक नई दृष्टि विकसित की। वर्चस्वशाली सभ्यता एवं संस्कृति के हजारों वर्ष के इतिहास को प्रश्नांकित कर नए स्वरुप का निर्माण किया।

यह कोई शून्य में विकसित नहीं हुई। इसके पीछे इनका लम्बे समय का इतिहास बोध रहा है जिसका इतिहास गवाह है। इनकी दशा क्या रही है? ये क्यों नहीं ऊपर उठ पायें हैं ? इन्हें निरंतर यातना,समय का ताप सहना पड़ा है। समाज में शास्त्र निर्माताओं ने किस प्रकार से समाज को दूषित किया है? यह बड़े ही आश्चर्य की बात है। ये लोग सामंतवर्ग के हितो के पोषक रहे हैं। उसकी सुरक्षा के लिए ये व्यवस्थाएं देते रहे हैं। उनके लिए फर्जी इतिहास लिखते रहे हैं। इसी फर्जी इतिहास के विरोध में दलित साहित्य का जन्म हुआ है। जिसने अपना स्थान साहित्य में बना लिया है। सामंतवादियों द्वारा जिन्हें छोड़ा गया। उन्होंने अपने पीड़ा को कविता के रूप व्यक्त किया। यह डॉ अम्बेडकर की देन है की दलित कविता अपनी गति में तेजी ला सकी है। जिनकी चर्चा आजादी के पूर्व न के बराबर थी। वह आजादी के बाद डॉ आंबेडकर के संघर्षो के चलते दलित चेतना से लैस हो रही थी। बीसवीं शताब्दी में डॉ अम्बेडकर ऐसा मसीहा बनकर आये, जिन्होंने उन्हें मनुष्यता की पहचान कराई। मानवीय अधिकार शासन प्रसाशन में भगीदारी दिलाई। जिसका परिणाम यह हुआ कि दलित कवितायें अपने तेवर के साथ आने लगी। कँवल भारती लिखते हैं कि "ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताओं का संग्रह 'सदियों का संताप' पूर्ण रूप से दलित चेतना की कविताओं का संग्रह है, जिसने मुख्य धारा की साहित्य में सबसे ज्यादा हलचल मचायी।

ये कवितायें भावुकता से मुक्त है। उसमें गंभीर दलित चिंतन और विमर्श है। भाषा और शिल्प के स्तर पर हथौड़ा बजा दिये। संकलन की पहली कविता 'ठाकुर का कुआँ' में ओम प्रकाश वाल्मीकि ने यह सवाल उठाकर सवर्ण चेतना को झकझोर दिया

चूल्हा मिट्टी का

मिट्टी तालाब की

तालाब ठाकुर का

\- - -

फिर अपना क्या ?

गाँव ? शहर ? देश ? "12

सत्ता से लेकर संस्कृति तक,खेत से लेकर खलियान तक, हर जगह सामंतवादी का कब्ज़ा है। तो फिर अपना क्या है ? यह बहुत महत्वपूर्ण सवाल है जिसे ओमप्रकाश वाल्मीकि ने उठाया है। इस प्रकार का सवाल 1989 में जब देश आजाद हो चुका था। तब यही कहा जा सकता है कि समाज में उन्हें अपना अधिकार नहीं मिला। तब यह आजादी बेमानी ही है। लेकिन अब दलित साहित्य ने अपनी पहचान बना लिया है। यह एक विमर्श के रूप में बहुत चर्चित हो चुका है। यह साहित्य स्वतंत्रता, समानता, बंधुता, के लिए लड़ने की ठान चुका है। इसीलिए वह यथास्थितिवादी बुद्धिवादियों को फटकारता है। अभिजनवादी कला सौन्दर्य त्यागकर पसीनें से लथपथ श्रमिक, मजदूर को केंद्र में रखता है। दलित रचनाकार क्रांति का वास्तविक योद्धा उसे मानता है जो दिन-रात खेतों खलियानों में खपता है। इस सन्दर्भ में मोहनदास नैमिशराय की यह कविता उल्लेखनीय है –

"क्रांति का हथौड़ा

महलों की पुख्ता दीवारों को

भले ही न तोड़ पाए

पर क्रांति की गूंज अभी जिन्दा है

यह सब सुनने के लिए ही

क्रांति का हथौड़ा रूकने न पाए

क्रान्ति मरघटों से नहीं आती

क्रांति मजदूर के बदन के पसीने से फूटती है।"13

मजदूर जो दिन-रात बैलों की तरह काम में जुटा रहता है। वह वास्तव में सबसे बड़ा क्रांतिकारी है। लेकिन पेट भरे लोगों को उनके पसीनें से भी बु आती है। क्योंकि उन्हें मुक्त में हमेशा भरपेट भोजन मिलता रहा है। परन्तु अब उस गंध में साथ चलने की चुनौती ये कवि दे रहे हैं। मलखान सिंह की यह कविता चुनौती पेश कर रही है कि एक बार चलकर देख लो-

"सुनों ब्राहमण

हमारे पसीने से

बू आती है तुम्हें

फिर एक दिन अपनी जनानी को

हमारी जनानी के साथ

मैला कमाने भेजो"14

इतना ही नहीं दलित लेखक अब समझ चुके हैं कि गुलामी से मुक्ति और समाज में समानता तभी आयेगी। जब ब्राह्मणवाद और पूंजीवाद पूरी तरह से मिट जायेगा। मलखान सिंह की 'सुनो ब्राहमण' कविता यही सन्देश से रहीं है-

"हमारी दासता का सफर

तुम्हारे जन्म से शुरू होता है

और इसका अंत भी

तुम्हारे अंत के साथ होगा।"15

सन्दीप कुमार
शोधार्थी
हिन्दी विभाग
हैदराबाद विश्वविद्यालय हैदराबाद
सम्पर्क
9369485212,8074425417

वर्तमान में कई दलित कवि हैं जिन्होंने दलित चेतना को जागृत करने का काम किया। जिनमें से कुछ प्रमुख कवि ओम प्रकाश वाल्मीकि,मलखानसिंह,जयप्रकाश कर्दम,श्यौराज सिंह वेचैन,कँवल भारती, मोहनदास नैमीशराय,आदि दलित कवियों ने दलित कविता के माध्यम से अनेंको समस्याओं को उठाया है। अब तक स्त्रियों को जिस समाज ने अधिकार नहीं दिया था। उन्होंने अवसर पाकर बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया है। इन्होंने अपनी भागीदारी सुनिश्चित कराई है। जिनमें से प्रमुख दलित कवयित्री सुशीला टाक भौरे, रजनी तिलक, रजत रानी मीनू, कावेरी, नरेश कुमारी आदि का दलित महिला लेखन में नाम लिया जाता है। अब यह कहा जा सकता है कि दलित कविता अपने निश्चित मुकाम पर पहुँच चुकी है। जिसने हिंदी साहित्य को पुनर्जीवित किया है और साथ ही नए क्षेत्र की ओर लेखकों का ध्यान आकर्षित कर हिंदी साहित्य का विकास किया।

सन्दर्भ ग्रन्थ-

1 डॉ लाल चन्द्रराम, डॉ सर्वेश कुमार मौर्य, दलित साहित्य चिंतन, भारतीय दलित काव्य की वास्तविकताएं , संदीप जायसवाल : 31
2 हरपालसिंह'अरुष' दलित कविता कर्म ,प्रो कालीचरण सनेही
3कँवल भारती दलित कि भूमिका, काली चरण सनेही :
4 लाल चन्द्रराम, डॉ सर्वेश कुमार मौर्य, दलित साहित्य चिंतन, दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, सी. वी भारती : 240

5 अपेक्षा, दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, प्रो. टी कट्टीमनी, जुलाई 2009, पृ. सं : 10

6 लाल चन्द्रराम, डॉ सर्वेश कुमार मौर्य, दलित साहित्य चिंतन, दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, सी. वी भारती : 28

7 कँवलभारती, दलित कविता कि भूमिका, कालीचरण: 40
8 अपेक्षा, दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, प्रो. टी कट्टीमनी, जुलाई 2009, पृ. सं : 10
9 विमल थोराट-सूरज बडत्या, भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर : xix
10 कँवल भारती, दलित कविता की भूमिका, कालीचरण: 13
11 रमणिकागुप्ता, दलित चेतना की कविता:।।।
12 ओम प्रकाश वाल्मीकि, सदियों के संताप
13 दलित साहित्य वार्षिकी, जयप्रकाश कर्दम : 123
14 मलखान सिंह, सुनो ब्राह्मण :45
15 मलखान सिंह, सुनो ब्राह्मण :45

अपनी माटी(ISSN 2322-0724 Apni Maati) **वर्ष-4,अंक-26 (अक्टूबर 2017-मार्च,2018)** **चित्रांकन: दिलीप डामोर**

Tags # 26 # अपनी माटी ई-पत्रिका # आलेख # दलित विमर्श # UGC Care Listed Issue

शोध-प्रपत्र

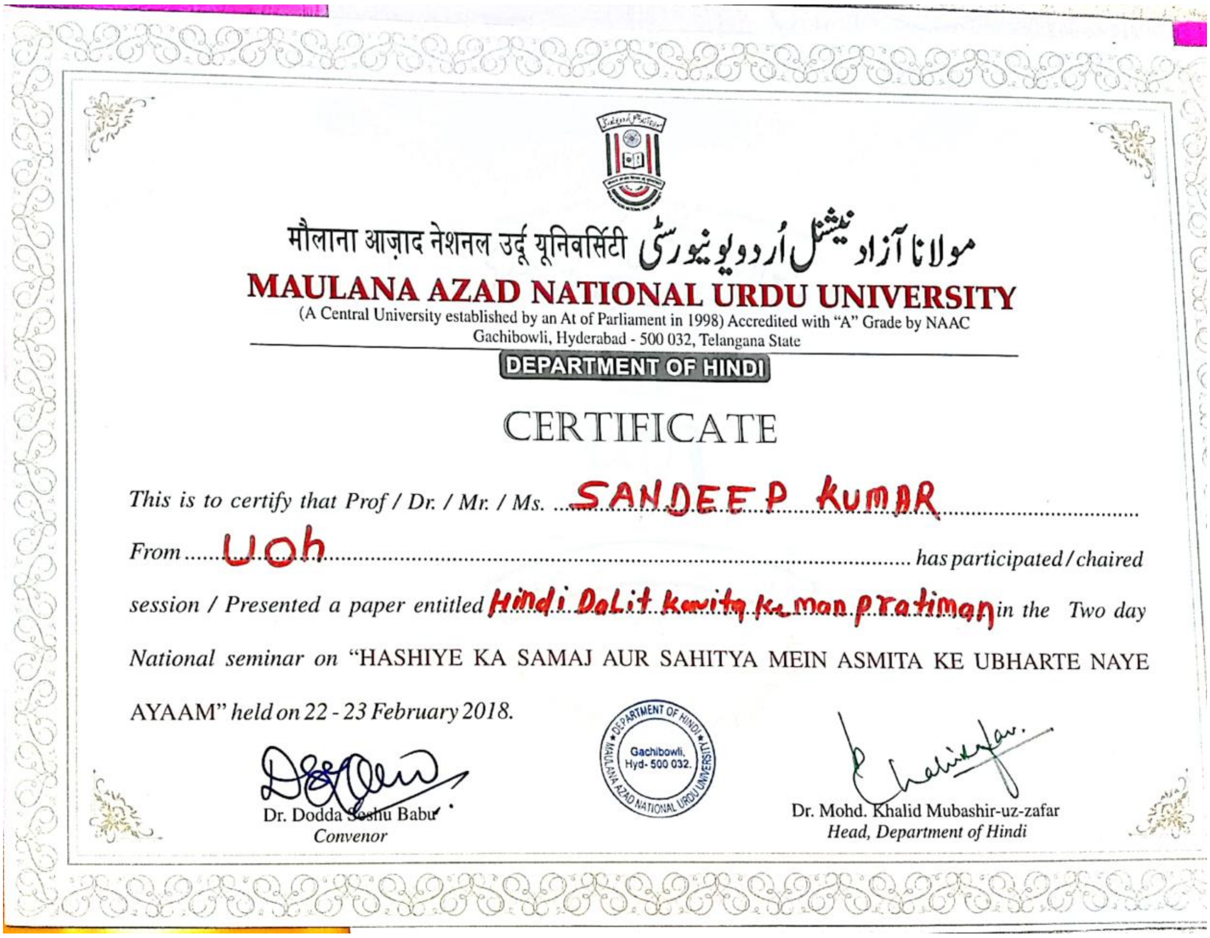

मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी مولانا آزاد نیشنل اردو یونیورسٹی

MAULANA AZAD NATIONAL URDU UNIVERSITY

(A Central University established by an At of Parliament in 1998) Accredited with "A" Grade by NAAC
Gachibowli, Hyderabad - 500 032, Telangana State

DEPARTMENT OF HINDI

CERTIFICATE

This is to certify that Prof / Dr. / Mr. / Ms. SANDEEP KUMAR

From UoH *has participated / chaired session / Presented a paper entitled* Hindi Dalit kavita ka man pratiman *in the Two day National seminar on* "HASHIYE KA SAMAJ AUR SAHITYA MEIN ASMITA KE UBHARTE NAYE AYAAM" *held on 22 - 23 February 2018.*

DEPARTMENT OF HINDI, Gachibowli, Hyd- 500 032. MAULANA AZAD NATIONAL URDU UNIVERSITY

Dr. Dodda Seshu Babu
Convenor

Dr. Mohd. Khalid Mubashir-uz-zafar
Head, Department of Hindi

शोध-प्रपत्र

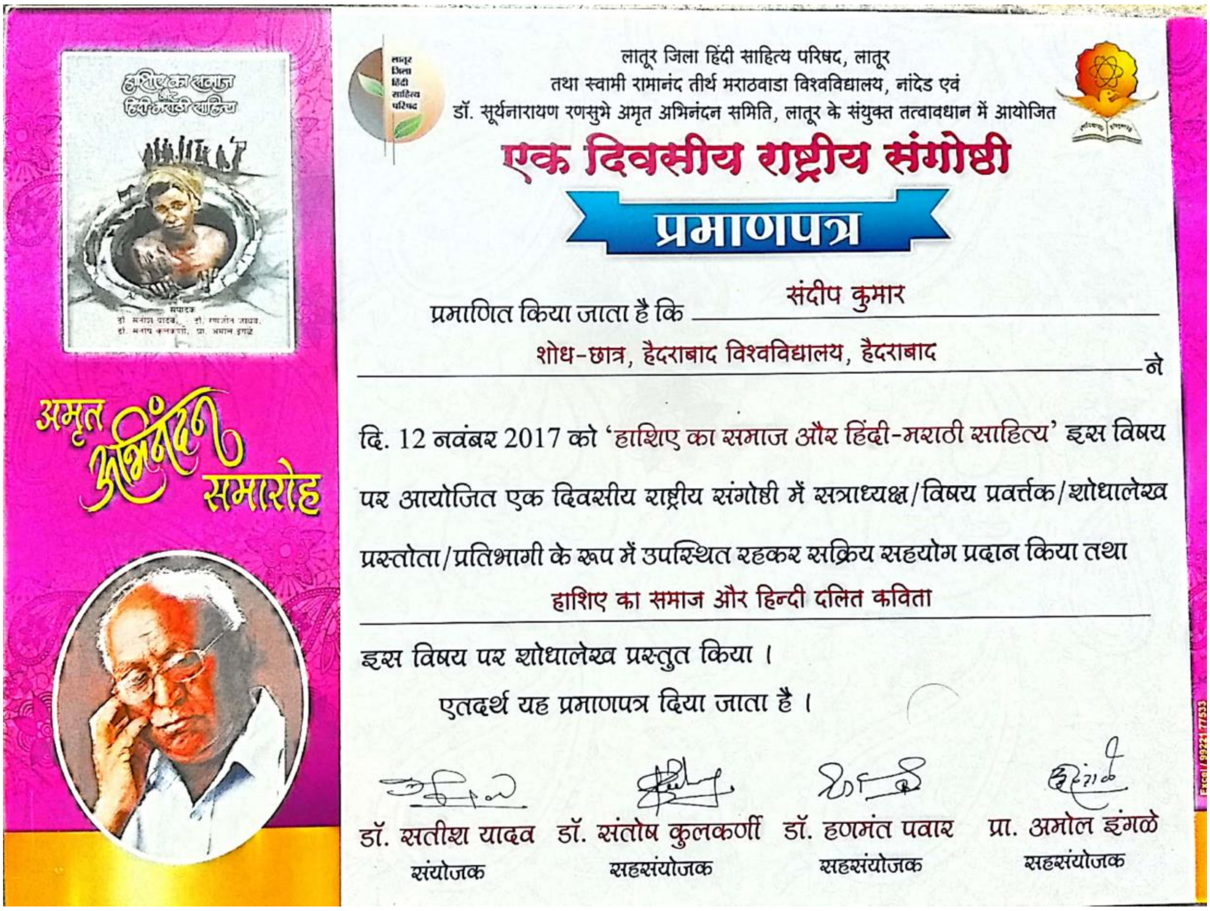

लातूर जिला हिंदी साहित्य परिषद, लातूर
तथा स्वामी रामानंद तीर्थ मराठवाडा विश्वविद्यालय, नांदेड एवं
डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे अमृत अभिनंदन समिति, लातूर के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित

एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी

प्रमाणपत्र

प्रमाणित किया जाता है कि संदीप कुमार

शोध-छात्र, हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद ने

दि. 12 नवंबर 2017 को 'हाशिए का समाज और हिंदी-मराठी साहित्य' इस विषय पर आयोजित एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में सत्राध्यक्ष/विषय प्रवर्त्तक/शोधालेख प्रस्तोता/प्रतिभागी के रूप में उपस्थित रहकर सक्रिय सहयोग प्रदान किया तथा हाशिए का समाज और हिन्दी दलित कविता इस विषय पर शोधालेख प्रस्तुत किया ।

एतदर्थ यह प्रमाणपत्र दिया जाता है ।

अमृत अभिनंदन समारोह

डॉ. सतीश यादव	डॉ. संतोष कुलकर्णी	डॉ. हणमंत पवार	प्रा. अमोल इंगळे
संयोजक	सहसंयोजक	सहसंयोजक	सहसंयोजक